आगम-अनुयोग

भाग-1

रचयिता-आचार्यश्री 108 आर्जवसागर

आचार्यश्री 108
आर्जवसागरजी महाराज का जीवन परिचय

पूर्व नाम	- पारसचंद जैन
पिता जी	- श्री शिखरचंद जैन
माता जी	- श्रीमती मायाबाई जैन
जन्मतिथि	- ११.९.१९६७, भाद्र शु. अष्टमी
जन्म स्थल	- फुटेरा कलाँ, जिला- दमोह
बचपन बीता	- पथरिया, जिला- दमोह (म.प्र.) में
शिक्षण	- बी.ए. (प्रथम वर्ष) डिग्री कॉलेज, दमोह (म.प्र.)
ब्रह्मचर्य व्रत	- १९.१२.१९८४, अतिशय क्षेत्र, पनागर(म.प्र.)
सातवीं प्रतिमा	- १९८५, सिद्धक्षेत्र, अहारजी
क्षुल्लक दीक्षा	- ८.११.८५, सिद्धक्षेत्र, अहारजी
ऐलक दीक्षा	- १०.७.१९८७, अतिशय क्षेत्र, थूवोनजी
मुनि दीक्षा	- ३१.३.१९८८, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, महावीर जयन्ती सन् १९८८
दीक्षा गुरु	- आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज
आचार्यपद	- २५.०१.२०१५ (माघ शुक्ल षष्ठी) को (समाधि पूर्व आचार्यश्री सीमंधरसागर जी द्वारा इंदौर में)
कृतियाँ व रचनाएँ	- धर्म-भावना शतक, जैनागम-संस्कार, तीर्थोदय-काव्य, परमार्थ-साधना, बचपन का संस्कार, सम्यक्-ध्यान शतक, आर्जव-वाणी, पर्यूषण-पीयूष, आर्जव-कविताएँ, जिनवर-स्तुति, साम्य-भावना, जैन शासन का हृदय, आगम-अनुयोग, लोक-कल्याण (षोडसकारण) विधान, सदाचार सूक्ति-काव्य, अध्यात्म समयोदय काव्य, गुरु गुण-महिमा काव्य, आत्मोद्धार शतक।
पद्यानुवाद	- गोमटेशथुदि, जिनागम-संग्रह (वारसाणुवेक्खा, इष्टोपदेश, समाधितन्त्र, □द्रव्य-संग्रह), तत्त्वसार एवं प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका, भक्तामर स्तोत्र।

ॐ

आगम-अनुयोग

[प्रश्नोत्तर-प्रदीप]

(भाग-1)

सम्यग्ज्ञान-भूषण एवं सिद्धांत-भूषण पदवी हेतु

भाव-विज्ञान धार्मिक परीक्षा बोर्ड, भोपाल द्वारा स्वीकृत

रचयिता

आचार्यश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज

प्रकाशक

आर्जव-तीर्थ एवं जीव संरक्षण-ट्रस्ट, भोपाल

कृति – आगम-अनुयोग भाग-1

कृतिकार – आचार्यश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज

पावन स्मृति – पावन वर्षायोग 2021 लखनादौन,
सिवनी (म.प्र.)

संस्करण – प्रथम

पुण्यार्जक – श्री इन्दरचन्द्र जैन, दीपककुमार, विजयकुमार,
यश जैन, आर्यन जैन, दिव्यम् जैन, लखनादौन,
जैन स्टोन क्रेशर एवं कन्स्ट्रक्शन
लखनादौन (म.प्र.)

प्रतियाँ – 1000

मुद्रक – पारस प्रिंटर्स, भोपाल
207/4, सांईबाबा काम्पलेक्स, जोन-1
एम.पी.नगर, भोपाल
फोन : 0755-4260034, 9826240876

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान – आर्जव-तीर्थ एवं जीव संरक्षण-ट्रस्ट
4, लार्ड्स कैम्पस, लक्ष्मी परिसर, नहर के पास
बावड़ियाकलाँ, भोपाल-462039
मो. : 7049004653, 9425011357,
9425601161, 9425601832, 7222963457

© सर्वाधिकार – प्रकाशकाधीन सुरक्षित

मूल्य – (पुनः प्रकाशन हेतु सहयोग)

आद्यमिताक्षर

वर्तमान के वर्धमान संत शिरोमणि आचार्य प्रवर श्री विद्यासागरजी महाराज से दीक्षित आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज ने "आगम-अनुयोग" की रचना कर सभी भव्यों पर परम उपकार किया है।

आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से "भाव-विज्ञान पत्रिका" का शुभारम्भ सन् २००७ में हुआ जिसमें बाल-युवा पीढ़ी के स्वाध्याय के क्षेत्र में आगे बढ़ने एवं घर-घर में धर्म संस्कार की पाठशाला चलाने के उद्देश्य से जैन धर्म प्रश्नोत्तरी भी आरम्भ की। इसी की निरंतरता में सन् 2018 से सम्यग्ज्ञान भूषण एवं सिद्धांत भूषण पदवी हेतु पोस्टल कोर्स में धार्मिक (चारों अनुयोगों से संबंधित) करीब 100-100 प्रश्नोत्तरी एवं 20 प्रश्न के प्रश्नपत्र का प्रकाशन भाव-विज्ञान त्रैमासिक पत्रिका के अंकों में आरम्भ हुआ। आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज के द्वारा भक्तजनों को स्वाध्याय हेतु आगम के चारों अनुयोगों के धार्मिक पृष्ठभूमि के विभिन्न गूढ़तम एवं जटिल विषयों का सरलतम भाषा में जानने की रुचि जगाने एवं उत्साह बढ़ाने के लिए अथक परिश्रम किया गया है। "आगम-अनुयोग" में प्रश्नोत्तर-प्रदीप में प्रथमानुयोग एवं करणानुयोग के अंतर्गत प्रकाशित किए गए 1274 प्रश्नोत्तरी को ग्यारह अध्यायों में से रेंडम प्रश्नों के उत्तर देने के लिए आगम-अनुयोग प्रश्नोत्तर प्रदीप भाग-प्रथम का प्रकाशन किया जा रहा है।

हम सभी भक्तजनों पर परम पूज्य वात्सल्यमयी गुरुवर आर्चाश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज का यह परम उपकार एवं करुणामयी आशीर्वाद हम सभी के कल्याण हेतु "आगम-अनुयोग" नामक अनूठे ग्रंथ के रूप में मिला है। हम सभी उनके कृतज्ञ हैं और चिरकाल तक ऋणी बने रहेंगे।

इस कृति के प्रकाशन में अपने द्रव्य का सदुपयोग करने वाले पुण्यार्जक श्रीमान सिंघई दीपक जैन व विजय जैन अध्यक्ष, चातुर्मास समिति 2021, लखनादौन, जिला सिवनी (म.प्र.) वालों के लिए धन्यवाद ज्ञापित करते हैं। साथ ही, अतिशीघ्र प्रिंटिंग के कार्य को करके सौंपने वाले पवन जैन, पारस प्रिंटर्स भी धन्यवाद के पात्र हैं।

परम पूज्य आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज के पावन चरणों में कोटि-कोटि नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु एवं कृतज्ञता भरा आभार।

इत्यलं।

डॉ. अजित कुमार जैन

संपादक, भाव-विज्ञान पत्रिका

भोपाल (म.प्र.)

जैन ग्रंथों का संपूर्ण सार : आगम-अनुयोग

आचार्यश्री 108 विद्यासागरजी महाराज से दीक्षित परम पूज्य आध्यात्म योगी आचार्य गुरुदेव श्री आर्जवसागरजी महाराज ने मोक्षमार्गोंपयोगी अनेक बहुमूल्य कृतियों की रचना की है; जिनमें 'आगम-अनुयोग' एक ऐसी अनूठी, अद्वितीय (Unique)कृति है, जिसमें जैन धर्म के चारों अनुयोगों (प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग) रूप ग्रंथों का सार समाहित है। यह बहुमूल्य कृति स्वाध्याय प्रेमी श्रावकों के लिये अत्यंत मूल्यवान एवं बहुउपयोगी है। इसके माध्यम से आचार्यश्री ने जैन आगम की, लोक-अलोक की विस्तृत जानकारी का समावेश इसमें किया गया है। यह कृति प्रश्नोत्तरी रूप में अत्यंत सरल शब्दों में लिखित है। इसके माध्यम से सम्यग्ज्ञान भूषण, सिद्धांत भूषण पदवी की उपाधि भी प्राप्त हो सकती है। आगम अनुयोग (प्रश्नोत्तर प्रदीप) का मुख्य उद्देश्य भव्यजीवों को स्वाध्याय के माध्यम से आगम ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त कराना है।

गुरुवर की यह अनूठी कृति संपूर्ण जैन दर्शन को बताने वाली है एवं अत्यंत सरल शब्दों में आगम ग्रन्थों का मुख्य ज्ञान कराने वाली है। हम सभी का परम सौभाग्य है कि हमें गुरुवर रचित इस 'आगम-अनुयोग' कृति को पढ़ने का, इसका स्वाध्याय करने का अवसर प्राप्त हो रहा है।

'आगम-अनुयोग' कृति में करीब 1274 प्रश्नोत्तरों के माध्यम से प्रथमानुयोग एवं करणानुयोग का विशेष वर्णन किया है।

त्रेसठ (63) शलाका पुरुषों, कुलकरों आदि महापुरुषों संबंधी पुराणों का संपूर्ण सारांश 'आगम-अनुयोग' में प्रथमानुयोग में लगभग 404 प्रश्नों में समाहित है। यह प्रथमानुयोग का ज्ञान भव्यों के लिये अत्यंत उपकारी है। इसके ज्ञान से जीवों को सम्यग्दर्शनादि रूप बोधि और धर्मध्यान, शुक्लध्यान रूप समाधि की प्राप्ति होती है। इसी अनुयोग में भोगभूमि-कर्मभूमि की व्यवस्था, पुरुषार्थ की भी विस्तृत विवेचन है।

आचार्य गुरुदेव ने 63 शलाका पुरुषों में भी सर्वप्रथम तीर्थंकर महापुरुषों का वर्णन किया है कि तीर्थंकर कौन होते हैं? किस तरह तीर्थंकर प्रकृति का संचय होता है? भरत क्षेत्र, विदेह क्षेत्र संबंधी कितने-कितने तीर्थंकर होते हैं? किस तरह सौधर्मेन्द्र-शचि इन्द्राणि प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव प्रभु का जन्मोत्सव मनाते हैं? किस कारण से उन्हें वैराग्य होता है? किस तरह अयोध्या की रचना होती है? कैसे उन्हें केवलज्ञान प्राप्त होता है? और उनका समवशरण कितना विशाल विस्तार वाला होता है? कौन से जीव उस समवशरण में उनकी दिव्यध्वनि रूप उपदेश को ग्रहण करते हैं? आदि विशेष शंकाओं का समाधान इस प्रथमानुयोग खण्ड में प्रश्नोत्तर के माध्यम से किया गया है। तीर्थंकरों के विशेष वर्णन के बाद चक्रवर्ती और उनका वैभव आदि एवं बलदेव, नारायण, प्रतिनारायण, कामदेव आदि महापुरुषों का भी उल्लेख इसमें समाहित है।

करणानुयोग का वर्णन भी प्रश्न 405 से लेकर 1274 प्रश्न तक किया गया है, जिसमें विशेष रूप से तीन लोक का वर्णन समाहित है। अर्थात् लोक-अलोक का विभाग, गणित, उसकी रचना एवं उसमें जीवों का

निवास, युग परिवर्तन, प्ररूपणा आदि का ज्ञान प्राप्त कराने वाला यह करणानुयोग खण्ड है। तीन लोक (ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक) के वर्णन में अधोलोक में नरकादि एवं उनके पटलों का विस्तार, वहाँ का वातावरण, नरक के दुःख वहाँ उत्पन्न होने वाले जीवों की लेश्या, नरकों की आयु एवं वहाँ कौन से जीव किस कारण से जन्म लेते हैं आदि का भी मुख्यतः से वर्णन किया गया है। मध्यलोक में भी युग परिवर्तन, कल्पकाल, उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल आदि का भी विशेष वर्णन है। एवं देवों की विस्तृत जानकारी भी इसमें समाहित है। (सर्वद्वीप और समुद्र, उनपर स्थित पर्वतों का, भोगभूमि-कर्मभूमि की व्यवस्था का, अकृत्रिम चैत्यालयों का भी विशेष वर्णन प्रश्नोत्तरों के माध्यम से किया गया है।)

यह 'आगम-अनुयोग' प्रश्नोत्तर-प्रदीप हम भव्य जीवों को कल्याणकारी रूप है यह कृति मोक्ष रूपी पद (शिवालय) को शीघ्र ही प्रदान करायेगी।

जिनके दर्शन से नयन धन्य हो जाते हैं, जिनको आहार दान देने से हाथ धन्य हो जाते हैं, जिनका सुमरण करने से मन धन्य हो जाता है, जिनका गुणगान करने से कण्ठ धन्य हो जाता है, जिनके पास जाने से जीवन धन्य हो जाता है। ऐसे आगम-अनुयोग ग्रन्थ के प्रणेता परमोपकारी, धर्म प्रभावक, षोडशकारण व्रत प्रणेता, मोक्षमार्ग उपदेशक, आध्यात्मिक संत आचार्य गुरुदेव श्री 108 आर्जवसागरजी महाराज के चरणों में बारंबार नमोस्तु.... नमोस्तु.... नमोस्तु।

इंजी. बहिन ऋषिका जैन, दमोह

अनुक्रमणिका

क्र	विषय	पृष्ठ
	प्रथमानुयोग	
1.	अध्याय-1. भोगभूमि कुलकरादि	1
2.	अध्याय-2. तीर्थंकर ऋषभदेव का वैभवादि	14
3.	अध्याय-3. तीर्थंकर ऋषभदेव का वैराग्यादि	32
4.	अध्याय-4. चक्रवर्ती का वैभवादि	48
	करणानुयोग	
5.	अध्याय-5. जैन गणित-विज्ञान	64
6.	अध्याय-6. लोक रचनादि	74
7.	अध्याय-7. द्वीप, पर्वत, काल परिवर्तनादि	87
8.	अध्याय-8. जीवों का अवगाहनादि	103
9.	अध्याय-9. ज्योतिषि, विमानवासी व गुणस्थानादि	117
10.	अध्याय-10. जीव समास व मार्गणादि	136
11.	अध्याय-11. ज्ञान और सम्यक्त्वादि	157

आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित

आगम-अनुयोग

[प्रश्नोत्तर-प्रदीप]

-मंगलाचरण-

प्रथम तीर्थ के कर्त्ता प्रभुवर, आदिनाथ को करूँ नमन।
चौबीसी के अन्तिम जिनवर, महावीर हैं परम शरण॥
तीर्थंकर से उदित तीर्थ में, है आगम-अनुयोग प्रधान।
जिसे कहूँ मैं भविकजनों को, मिले मोक्ष-पद शीघ्र महान॥

प्रथमानुयोग

अध्याय -1. भोगभूमि कुलकरादि

प्र.1 आगम किसे कहते हैं?

उत्तर जिनेन्द्र भगवान कथित सर्व पदार्थ प्रकाशक वचन आगम कहलाता है।

प्र. 2 आगम के छह विशेषण कौन-से हैं?

उत्तर आगम के 1. अर्हंत कथित, 2. अखण्डित, 3. अविरोधी, 4. धर्मोपदेशी, 5. हितकर्त्ता और 6. मिथ्यात्व खण्डक ऐसे छह विशेषण होते हैं।

प्र. 3 आगम कथन में पंच ध्यातव्य रूप मन्तव्य कौन-से हैं?

उत्तर आगम कथन में शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और भावार्थ रूप पांच ध्यान रखने योग्य मन्तव्य (बातें) हैं।

प्र. 4 आगम के व्याख्यान में शब्दार्थ का तात्पर्य क्या है?

उत्तर आगम के व्याख्यान में शब्दार्थ का तात्पर्य शब्द का सम्यक् अर्थ बतलाना है।

प्र. 5 आगम के उपदेश में नयार्थ का अर्थ क्या है?

उत्तर आगम के उपदेश में नयार्थ का अर्थ व्यवहार व निश्चय आदि नयों का अवलम्बन लेकर कथन शैली अपनाना है।

प्र. 6 आगम में मतार्थ से क्या तात्पर्य है?

उत्तर आगम में मतार्थ से तात्पर्य सांख्य, बौद्ध आदि विभिन्न मतों के संदर्भ में विचार विमर्श करना है।

प्र. 7 जैनदर्शन में आगमार्थ किसे कहते हैं?

उ. जैन दर्शन में परमागम और आचार्य परम्परा से अविरोध कथन-शैली का होना आगमार्थ कहलाता है।

प्र. 8 आगम-कथन-शैली में भावार्थ किसे कहते हैं?

उत्तर आगम-कथन-शैली में जिनागम के ज्ञान से गुण-दोषों के सम्बन्ध में ग्रहण व त्याग के व्याख्यान को

भावार्थ कहते हैं।

प्र. 9. आगम पद्धति किसे कहा जाता है?

उत्तर वीतराग सर्वज्ञ प्रणीत सप्त तत्त्वों, छह द्रव्यों आदि के सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान और आचरण रूप प्रतिपादन को आगम पद्धति कहा जाता है।

प्र. 10 आगम ग्रन्थ (शास्त्र) अध्ययन करने की या वीतराग की देशना प्राप्त करने की योग्यता किस आचरणवान मानव के पास होती है?

उत्तर आगम अध्ययन या वीतराग-देशना की योग्यता अष्टमूलगुण धारक अर्थात् मद्यत्याग, मधुत्याग, मांस त्याग, रात्रिभोजन त्याग, पंच उदुम्बर फल त्याग, जिनेन्द्र देव दर्शन, जीवदया पालन और छना-जलपान ऐसे अष्ट नियम-संकल्प धारक के पास होती है।

प्र. 11 वक्ता किसे कहते हैं?

उत्तर धर्म के उपदेष्टा को वक्ता कहते हैं।

प्र. 12 धर्मोपदेष्टा कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर धर्मोपदेष्टा तीन प्रकार के होते हैं- 1. सर्वज्ञ तीर्थंकर या सामान्य केवली, 2. श्रुतकेवली मुनीश्वर और 3. आरातीय अर्थात् शुद्ध परम्परा से ज्ञान प्राप्त आचार्य।

प्र.13. धर्मोपदेष्टा किन गुणों से सम्पन्न होता है?

उत्तर जो प्राज्ञ है अर्थात् समस्त शास्त्रों के रहस्य (मर्म) को जानता है, लोक व्यवहार से परिचित है, कुशील या धनादि समस्त आशाओं से रहित है, प्रतिभाशाली है, शान्त है, प्रश्न होने के पूर्व ही उत्तर देने में सक्षम है, श्रोताओं के प्रश्नों को सहन करने में समर्थ है (अर्थात् प्रश्न सुनकर न तो घबराता है और उत्तेजित होता है), दूसरों के मनोगत भावों को जानने वाला है, शीलाचारादि अनेक गुणों से सम्पन्न है और जो दूसरों की निंदा न करता हुआ स्पष्ट और मधुर शब्दों में उपदेश को करने वाला है उसे सुयोग्य गुणवान धर्मोपदेष्टा कहते हैं।

प्र. 14 श्रोता कौन कहलाता है?

उत्तर जो सम्यग्दृष्टि आत्मा शास्त्र के ग्रहण व धारण करने में समर्थ तथा विनय गुण से अलंकृत और संयमित होता है वह श्रोता कहलाता है।

प्र. 15 उत्तम श्रोता में हंस सदृश श्रोता से क्या तात्पर्य है?

उत्तर जिस तरह मिले हुए दुग्ध और जल को भिन्न करते हुए हंस जल को छोड़ दुग्ध मात्र का पान कर लेता है उसी तरह उत्तम श्रोता अन्य अनावश्यक विषयों को छोड़ स्वात्म प्रयोजनीय धार्मिक, आध्यात्मिक विषय मात्र को ग्रहण करने वाला होता है।

प्र. 16 अनुयोग किसे कहते हैं?

उत्तर जिनवाणी के उपदेश की आगम पद्धति को अनुयोग कहते हैं।

प्र. 17 आगम में अनुयोग के प्रकार कौन-से हैं?

उत्तर आगम में अनुयोग के प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग रूप से चार प्रकार होते हैं।

प्र. 18 प्रथमानुयोग किसे कहा जाता है?

उत्तर एक पुरुष सम्बन्धी चरित या त्रेसठ शलाका महापुरुष सम्बन्धी कथा रूप पुराण को प्रथमानुयोग कहा जाता है।

प्र. 19 प्रथमानुयोग के ज्ञान का फल क्या है?

उत्तर प्रथमानुयोग भव्यों के लिए अत्यन्त उपकारी है, इसके ज्ञान करने से जीवों को सम्यग्दर्शनादि रूप बोधि और धर्मध्यान, शुक्लध्यान रूप समाधि की प्राप्ति होती है।

प्र. 20 त्रेशठ शलाका पुरुष कब उत्पन्न होते हैं?

उत्तर अवसर्पिणी काल से संबन्धित त्रेशठ शलाका पुरुष भोग भूमि के अनन्तर उत्पन्न होते हैं।

प्र. 21 भोग-भूमि किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ उत्कृष्ट ज्योतिर्मय दस प्रकार के कल्पवृक्ष होते हैं और उन कल्पवृक्षों से ही मनुष्यों की उपजीविका रूप जीवनशैली चलती है ऐसे स्थान को मनुष्यों से संबधित भोग-भूमि कहते हैं। जहाँ खेती आदि षट्कर्म एवं वर्णादिक की व्यवस्था नहीं होती।

प्र. 22 भोग-भूमि में पाये जाने वाले कल्पवृक्षों का लक्षण क्या है?

उत्तर जो भोग-भूमि में मनुष्यों को अपने-अपने मन की कल्पित वस्तुओं को दिया करते हैं वे कल्पवृक्ष कहलाते हैं।

प्र. 23 ये कल्पवृक्ष वनस्पतिकायिक या देवोपनीत वृक्ष होते हैं क्या?

उत्तर सभी कल्पवृक्ष न तो वनस्पतिकायिक रूप हैं और न कोई व्यन्तरादि देव रूप ही हैं, किन्तु इनकी विशेषता यह है कि ये सभी पृथ्वी रूप होते हुए भी जीवों को उनके पुण्यकर्म का फल देते हैं।

प्र. 24 भोग-भूमि-गत मनुष्यों के मनोरथों को पूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष कौन-से हैं?

उत्तर भोग-भूमि में पानांग, तूर्यांग, भूषणांग, वस्त्रांग, भोजनांग, आलयांग, दीपांग, भाजनांग, मालांग और तेजांग नामक कल्पवृक्ष अपने नाम के अनुरूप मनवांछित वस्तुओं को देने में सक्षम होते हैं।

प्र. 25 भोग-भूमि सम्बन्धित पानांग कल्पवृक्ष मनुष्यों के लिए कौन-से पेय प्रदान करते हैं?

उत्तर पानांग नामक कल्पवृक्ष भोगभूमिजों को मधुर, सुस्वादु, षट्रसों से युक्त, प्रशस्त, अतिशीत और तुष्टि एवं पुष्टि को करने वाले ऐसे बत्तीस प्रकार के पेय द्रव्यों को दिया करते हैं।

प्र. 26 भोग-भूमि में तूर्यांग नामक कल्पवृक्षजीवों को क्या-क्या प्रदत्त करते हैं?

उत्तर तूर्यांग जाति के कल्पवृक्ष उत्तमवीणा, पटु, पटह, मृदंग, झालर, शंख, दुंदुभि, भंभा, भेरी और काहल इत्यादि भिन्न-भिन्न प्रकार के वाद्यों को देते हैं।

प्र. 27 भोग-भूमि में भूषणांग जातिज कल्पवृक्ष मनुष्यों को कौन-कौन से आभूषण प्रदान करते हैं?

उत्तर भोग-भूमि में भूषणांग जातिज कल्पवृक्ष कंकण, कटिसूत्र, हार, केयूर, मंजीर, कटक, कुण्डल, किरीट और मुकुट इत्यादिक आभूषण प्रदान करते हैं।

प्र. 28 भोग भूमिज वस्त्रांग नामक कल्पवृक्ष कैसे-कैसे वस्त्रों को फलते हैं?

उत्तर भोग भूमिज वस्त्रांग नामक कल्पवृक्ष नित्य ही उत्तम क्षौमादि वस्त्र तथा अन्य मन और नयनों को आनन्दित करने वाले नाना प्रकार के वस्त्रादि फलते हैं।

प्र. 29 भोग-भूमिज भोजनांग नामक कल्पवृक्ष मनुष्यों के लिए कौन-कौन से स्वादिष्ट मधुर भोज्य फलते हैं?

उत्तर भोग-भूमि में भोजनांग कल्पवृक्ष सोलह प्रकार का आहार, सोलह प्रकार के व्यंजन, चौदह प्रकार के सूप (दालादिक), एक सौ आठ प्रकार के खाद्य पदार्थ, तीन सौ त्रेसठ प्रकार के स्वाद्य-पदार्थ और त्रेसठ प्रकार के स्वादिष्ट रस दिया करते हैं।

प्र. 30 भोग-भूमि में आलयांग नामक कल्पवृक्ष जीवों को क्या फल देते हैं?

उत्तर भोग-भूमि में आलयांग कल्पवृक्ष स्वस्तिक और नन्द्यावर्त नामक सोलह प्रकार के रमणीय दिव्य भवन दिया करते हैं।

प्र. 31 भोग-भूमि में दीपांग नामक कल्पवृक्ष जीवों को क्या फल देते हैं?

उत्तर भोग-भूमि में दीपांग नामक कल्पवृक्ष प्रासादों (भवनों) में शाखा, प्रवाल (नवजात पत्र) फल, फूल और अंकुरादि के द्वारा जलते हुए दीपकों के समान दिव्य ज्योतिर्मय प्रकाश देते हैं।

प्र. 32 भोग-भूमिज भाजनांग जाति के कल्पवृक्ष मनुष्यों को क्या-क्या प्रदान करते हैं?

उत्तर भोगभूमिज भाजनांग जाति के कल्पवृक्ष मनुष्यों के लिए सुवर्ण एवं बहुत-से रत्नों से निर्मित धवल झारी, कलश, गागर, चामर और आसनादिक प्रदान करते हैं।

प्र. 33 भोग-भूमिज मालांग जाति के कल्पवृक्ष जीवों को क्या-क्या अर्पण करते हैं?

उत्तर भोग-भूमिज मालांग जाति के कल्पवृक्ष जीवों को बल्ली, तरु, गुच्छ और लताओं से उत्पन्न हुए सोलह हजार भेद रूप पुष्पों की विविध मालाओं को अर्पण करते हैं।

प्र. 34 भोग-भूमि में तेजांग नामक कल्पवृक्ष मनुष्यों के किस तरह उपकारक बनते हैं?

उत्तर भोग-भूमि में तेजांग नामक कल्पवृक्ष मनुष्यों को मध्यदिन के करोड़ों सूर्यों की किरणों के समान होते हुए नक्षत्र, चन्द्र और सूर्यादिक की कान्ति को हरते (संहरण करते) हैं।

प्र. 35 भोगभूमिज जीवों की जन्म और मरण सम्बन्धी क्या विशेषता है?

उत्तर भोगभूमि में जीव जुड़वा रूप जन्म लेते हैं, संतति को जन्मने वाले जन्म दाता पुरुष का छींक आते ही और स्त्री का जंभाई आते ही बिना किसी कष्ट हुए मरण हो जाता है और उन माता-पिता का शरीर शरद ऋतु के बादलों की तरह शुभ्र आकाश में विलय को प्राप्त हो जाता है।

प्र. 36 जन्म प्राप्त भोगभूमिज जुड़वा मनुष्यों का शरीर किस तरह वृद्धिंगत होता है?

उत्तर जन्म प्राप्त जघन्य भोगभूमिज जुड़वा मनुष्य शय्या पर सोते-जागते हुये सात दिनों तक सानन्दित

अमृतमय अपना अंगूठा चूसते हैं, फिर सात दिनों तक घुटने के बल चलते हैं, फिर तीसरे सप्ताह में मीठी-मीठी तोतली-सम भाषा बोलते हैं, फिर चौथे सप्ताह में पैरों को जमाकर स्वत: चलने लग जाते हैं, फिर पाँचवे सप्ताह में वे कला और रूप आदि गुणों से सम्पन्न हो जाते हैं, फिर छठे सप्ताह में वे नवयौवन से सहित हो जाते हैं और सातवें सप्ताह में वे सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता भी पा लेते हैं।

प्र.37 भोगभूमिज जुड़वा पुरुष और स्त्री कैसा जीवन जीते हैं?

उत्तर भोगभूमिज जुड़वा पुरुष और स्त्री दम्पत्ति (पति-पत्नी) रूप बनकर विषय सुखमय जीवन जीते हैं।

प्र.38 भोग-भूमि का सुख किससे भी अधिक होता है?

उत्तर भोग-भूमि का सुख चक्रवर्ती के सुख से भी अधिक होता है।

प्र.39 भोग-भूमि में कौन-सी बाधाएँ नहीं होती?

उत्तर भोग-भूमि में विकलत्रय जीव, सर्प, बिच्छू आदि विषैले जन्तु, विषम ऋतु, बुढ़ापा, रोग, विशेष निद्रा और चिन्तादि बाधाएँ नहीं होती।

प्र.40 भोग-भूमि में कौन-कौन से विशेष पाप नहीं होते?

उत्तर भोगभूमि में लड़ाई-झगड़े, युद्ध, असत्य, चोरी, अन्याय, परस्त्रीसेवन और परिग्रह संग्रह आदि रूप पाप कदापि नहीं होते। [शेष वर्णन करणानुयोग में देखें]

प्र.41 शलाका पुरुष किन्हें कहते हैं?

उत्तर लोक प्रसिद्ध भव्य पुरुष जो तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदिक पद के धारक होते हैं उन्हें शलाका पुरुष कहते हैं।

प्र.42 शलाका पुरुष कब कौन-कौन-से कितने-कितने होते हैं?

उत्तर शलाका पुरुष प्रत्येक कल्पकाल में 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलभद्र (बलदेव), 9 नारायण और 9 प्रतिनारायण रूप 63 होते हैं।

प्र.43 शलाका पुरुषों का अन्य तरह से महापुरुषों के रूप में कथन आगम में किस तरह से वर्णित किया गया है?

उत्तर शलाका पुरुषों का अन्य तरह से महापुरुषों के रूप में 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 नारायण, 9 प्रतिनारायण, 9 नारद, 11 रुद्र, 24 कामदेव, तीर्थंकरों के जन्म गुरु रूप 24 पिता, 24 माता, और 14 कुलकर इस तरह 169 महापुरुषों के रूप में शलाका पुरुष वर्णित किये गये हैं।

प्र.44 कुलकर अथवा मनु या आदिपुरुष किन्हें कहते हैं?

उत्तर पुरुषों को कुल की भांति इकट्ठे रहने का उपदेश देने से भव्यपुरुष कुलकर कहलाते हैं अथवा वे अवधिज्ञान व जाति स्मरण द्वारा प्रजा के जीवन-जीने का उपाय जानने से वे मनु कहलाते हैं और वे युग के आदि में उत्पन्न होने से आदि पुरुष भी कहलाते हैं।

प्र.45 शलाका पुरुषों का मोक्ष-प्राप्ति सम्बन्धी आगमिक नियम क्या है?

उत्तर तीर्थंकर, उनके गुरु (पिता-माता), चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, रुद्र, नारद, कामदेव और कुलकर ये सब (प्रतिनारायण को छोड़कर 160 दिव्य पुरुष) भव्य होते हुए नियम से (उसी भव में या अगले 1, 2 भवों में) सिद्ध होते हैं- मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

प्र. 46 शलाका पुरुषों का परस्पर मिलाप सम्बन्धी आगम में क्या कथन है?

उत्तर त्रिलोक में कभी चक्रवर्ती-चक्रवर्तियों का, तीर्थंकर-तीर्थंकरों का, बलभद्र-बलभद्रों का, नारायण-नारायणों का और प्रतिनारायण-प्रतिनारायणों का परस्पर मिलाप नहीं होता। नारायण-नारायण के निकट पहुँचेगा तो परस्पर दूरस्थ चिह्न- जैसे शंख के शब्द सुनने, रथों की ध्वजाओं के देखने मात्र से साक्षात्कार हो सकेगा।

प्र. 47 शलाका पुरुषों के शरीर सम्बन्धी क्या-क्या विशेषताएँ होती हैं?

उत्तर सभी शलाका पुरुष वज्रवृषभनाराच संहनन से सहित, सुवर्ण के समान वर्ण वाले (तिलोयपणण्त्ती में यह विशेष कथन है), उत्तमशरीर के धारक, सम्पूर्ण सुलक्षणों से युक्त और समचतुरस्र रूप संस्थान युक्त शरीर वाले होते हैं।

प्र. 48 तीनों लोकों के जीवों के शरीर में मूँछ-दाढ़ी के केशों सम्बन्धी क्या विशेषता होती है?

उत्तर सर्व देव, नारकी, बलदेव, चक्रवर्ती, तीर्थंकर, नारायण और कामदेव मूँछ-दाढ़ी के केश रहित होते हैं। (यही विशेषता भोगभूमि के मनुष्य एवं कुलकरों के शरीर में भी होना चाहिए।)

प्र. 49 शलाका पुरुषों में वर्णित कुलकरों के नाम कौन-से हैं?

उत्तर 1. प्रतिश्रुति, 2. सन्मति, 3. क्षेमंकर, 4. क्षेमंधर, 5. सीमंकर, 6. सीमंधर, 7. विमलवाहन, 8. चक्षुष्मान्, 9. यशस्वी, 10. अभिचन्द्र, 11. चन्द्राभ, 12. मरुद्देव, 13. प्रसेनजित और 14. नाभिराय।

प्र. 50 तीर्थंकर ऋषभदेव और चक्रवर्ती भरत भी कुलकरों में सम्मिलित किये जाते हैं क्या?

उत्तर हाँ! महापुराण में तीर्थंकर ऋषभदेव और चक्रवर्ती भरत के लिए कुलकरों में सम्मिलित कर कुलकरों की सोलह संख्या बतलायी है।

प्र. 51 इस कर्म भूमि (चतुर्थकाल) आने के कितने वर्ष शेष रहने पर इन कुलकरों की उत्पत्ति प्रारम्भ हो जाती है?

उत्तर इस कर्मभूमि रूपी चतुर्थ काल आने के एक हजार वर्ष शेष रहने पर इन कुलकरों की उत्पत्ति प्रारम्भ हो जाती है।

प्र. 52 प्रतिश्रुति नामक प्रथम कुलकर ने तात्कालिक किस परिस्थिति को देखकर भोगभूमि के मनुष्यों को क्या उपदेश दिया?

उत्तर प्रतिश्रुति नामक प्रथम कुलकर ने चन्द्र सूर्य के दिखने लग जाने से भयभीत मनुष्यों को यह उपदेश दिया कि अब तेजांग जाति के कल्पवृक्षों की कमी आ चुकी है अतः पूर्व से ही अस्तित्व में रहने वाले सूर्य चन्द्र अब दिखने में आने लगे हैं इस प्रकार परिचय देकर उनका भय दूर किया और हठाग्रह रूप अपराध करने वाले मनुष्यों के लिए 'हा' रूप दण्ड का विधान निश्चित किया।

प्र. 53 सन्मति नामक द्वितीय कुलकर ने तात्कालिक कौन-सी परिस्थिति को देखकर वहाँ रहने वाले

मनुष्यों के लिए क्या उपदेश दिया?

उत्तर सन्मति नामक द्वितीय कुलकर ने तेजांगजाति के कल्पवृक्षों के लोप हो जाने पर अंधकार और तारागण के दिखने पर उन्हें अंधकार और ताराओं का परिचय देकर भय दूर किया।

प्र. 54 क्षेमंकर नामक तृतीय कुलकर ने भोग-भूमि की परिस्थिति बदलने पर लोगों को क्या शिक्षा दी?

उत्तर क्षेमंकर नामक तृतीय कुलकर ने भोगभूमि में व्याघ्रादि तिर्यंचों में क्रूरता नजर आने पर भयभीत हुए लोगों के लिए यह उपदेश दिया कि इन क्रूर तिर्यंचों से अपना बचाव करना चाहिए, और बताया कि कल्पवृक्षों का अंत होने वाला है और दुषमा-सुषमा काल निकट आने के कारण तिर्यंचों में क्रूरता दिखने लगी है, इनसे अपनी रक्षा का उपाय करना चाहिए, गृहादिक की विशेष सुरक्षा रखना चाहिए एवं गाय आदि पशु पालन व रक्षा की शिक्षा दी।

प्र. 55 क्षेमंधर नामक चतुर्थ कुलकर ने मनुष्यों को जीवन रक्षणार्थ कौन-से उपाय बतलाये?

उत्तर क्षेमंधर नामक चतुर्थ कुलकर ने व्याघ्रादि द्वारा मनुष्यों का भक्षण किये जाने पर अपने जीवन के रक्षणार्थ दण्ड (डण्डा) आदिक की प्रयोग विधि के उपाय बतलाये।

प्र. 56 सीमंकर नामक पंचम कुलकर ने विवादों से बचने का क्या उपाय बतलाया?

उत्तर सीमंकर नामक पंचम कुलकर ने कल्पवृक्षों की कमी के कारण उनके स्वामित्व पर परस्पर में झगड़ा देखकर मनुष्यों के लिए कल्पवृक्षों की सीमा का विभाजन किया।

प्र. 57 सीमंधर नामक छठे कुलकर ने मनुष्यों में होने वाले परस्पर कलह की स्थिति में किस तरह की व्यवस्था स्थापित की?

उत्तर सीमंधर शुभनाम वाले छठे कुलकर ने कल्पवृक्षों की अत्यन्त हानि के कारण मनुष्यों में परस्पर होने वाली कलह की वृद्धि को देखकर 'हा' (आश्चर्यकारक शब्द), 'मा' (निषेध कारक शब्द) रूप दण्ड विधान को निश्चित कर वृक्षों को चिह्नित करके उनके स्वामित्व का विभाजन किया।

प्र. 58 विमलवाहन नामक सातवें कुलकर ने मनुष्यों को होने वाली बाधाओं को देखकर कौन-सी शिक्षा दी?

उत्तर विमलवाहन नामक सातवें कुलकर ने मनुष्यों के गमनागमन में बाधक कारणों को जानकर अश्वारोहण व गजारोहण की शिक्षा तथा वाहनों के प्रयोग की शिक्षा दी।

प्र. 59 चक्षुष्मान् नामक आठवें कुलकर ने संतान के दर्शन से भयभीत लोगों के लिए क्या उपदेश दिया?

उत्तर चक्षुष्मान नामक आठवें कुलकर ने संतान के दर्शन से भयभीत लोगों के लिए यह उपदेश दिया कि अभी तक संतान का मुख देखने से पूर्व ही माता-पिता का देहान्त हो जाता था लेकिन अब सन्तानों के जन्मोपरान्त उनका मुख देखकर उनका मरण होगा।

प्र. 60 यशस्वी नामक नौवें कुलकर ने संतानों के लक्षणों से सम्बन्धित क्या शिक्षा प्रदान की?

उत्तर यशस्वी नामक नौवें कुलकर ने संतानों के लक्षणों को देखकर उनका नामकरण करके ही अब माता-पिता का देहान्त होगा अत: उनके नामकरण के विधि-विधान की शिक्षा दी।

प्र.61 अभिचन्द्र नामक दसवें कुलकर ने बालकों के समय उन्होंने बालकों को कौन-सी कला सिखलाने का उपदेश दिया?

उत्तर अभिचन्द्र नामक दसवें कुलकर ने बालकों के लिए माता-पिता के द्वारा बोलने और क्रीड़ा करने की शिक्षा-कला सिखलाने का उपदेश दिया।

प्र.62 चन्द्राभ नामक ग्यारहवें कुलकर ने पुत्र-कलत्र के साथ दीर्घ काल तक जीवित रहने लगने वाले मनुष्यों के लिए विशेष कलह और शीतवायु के प्रकोप से बचने हेतु क्या शिक्षा रूप उपाय बतलाए?

उत्तर चन्द्राभ नामक ग्यारहवें कुलकर ने पारिवारिक दीर्घजीवन में होने वाले विशेष कलह की स्थिति में 'हा', 'मा', 'धिक्' (धिक्कार हो) शब्दोच्चारण रूप दण्ड-विधान निश्चित किया तथा सूर्य की किरणों से शीत निवारण की शिक्षा दी।

प्र.63 मरुद्देव नामक बारहवें कुलकर ने भोगभूमि के अवसान काल में प्राकृतिक वातावरण के परिवर्तन के समय लोगों को कौन-सी शिक्षा दी?

उत्तर मरुद्देव नामक बारहवें कुलकर ने तात्कालिक प्रकृति में बदलाव रूप मेघ, वर्षा, बिजली, नदी व पर्वत आदि के दर्शन होने पर जन संतुष्टि हेतु नौका व छातों की प्रयोग-विधि तथा पर्वत पर सीढ़ियाँ बनाने की शिक्षा दी।

प्र.64 प्रसेनजित नामक तेरहवें कुलकर ने सन्तानों सम्बन्धी क्या शिक्षा दी?

उत्तर प्रसेनजित नामक तेरहवें कुलकर ने सन्तानों के जन्म पर जरायु की उत्पत्ति देखकर जरायु के दूर करने के उपाय की शिक्षा दी।

प्र.65 नाभिराय नामक चौदहवें कुलकर ने नाभि से सम्बन्धित एवं कल्पवृक्षों के अभाव में औषधादि के प्रयोग सम्बन्धी क्या शिक्षा दी?

उत्तर नाभिराय नामक चौदहवें कुलकर ने सन्तानों की नाभिनाल को अत्यन्त लम्बा होते देखकर नाभिनाल को काटने के उपाय की शिक्षा दी और औषधियों व धान्य आदि की पहचान का ज्ञान कराया तथा उनके दूध आदि के प्रयोग करने की शिक्षा दी।

प्र.66 ऋषभदेव नामक पंद्रहवें कुलकर ने स्व जात धान्यादि में हानि देखकर मनुष्यों को कौन-कौन-सी शिक्षायें प्रदान कीं?

उत्तर ऋषभदेव नामक पंद्रहवें कुलकर (प्रथम तीर्थंकर) ने एक ही प्रकार के स्वजात धान्यादि में हानि देखने पर कृषि, असि, मसि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या रूपी षट् कर्मों या षट् विद्याओं की मनुष्यों के लिए शिक्षाएँ प्रदान कीं।

प्र.67 भरत नामक सोलहवें कुलकर ने कुछ मनुष्यों में अविवेक की उत्पत्ति होने पर किस व्यवस्था

की स्थापना की?

उत्तर भरत नामक सोलहवें कुलकर (प्रथम चक्रवर्ती) ने कुछ मनुष्यों में अविवेक की उत्पत्ति होने पर वर्ण व्यवस्था की स्थापना की।

प्र.68 प्रतिश्रुति नामक प्रथम कुलकर से लेकर नाभिराय पर्यंत चौदह कुलकरों का पूर्व-भव कौन-सा था?

उत्तर प्रतिश्रुति से लेकर नाभिराय पर्यंत वे चौदह कुलकर पूर्व-भव में विदेह क्षेत्र के भीतर महाकुल में राजकुमार थे।

प्र.69 भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले कुलकरों का पूर्व-भव में संयम, तप आदि सम्बन्धी नियम क्या है?

उत्तर वे सभी चौदह कुलकर संयम, तप और ज्ञान से युक्त पात्रों के लिए दानादिक देने में कुशल, अपने योग्य अनुष्ठान से युक्त और आर्जव, मार्दव गुणों से सहित होते हुए पूर्व में मिथ्यात्व काल मेंभोगभूमि की आयु को बाँधकर पश्चात् जिनेन्द्र भगवान के चरणों के समीप क्षायिक-सम्यक्त्व को ग्रहण करते हैं।

प्र.70 मनुष्य-भव से आकर कुलकर होने का नियम ऋषभ देव एवं भरत के जीवन पर लागू नहीं होता क्योंकि वे विमानवासी देव पर्याय से आकर मनुष्य रूप में जन्में थे फिर भी उन्हें कुलकर क्यों माना?

उत्तर ऐसा नियम है कि चौदह कुलकर पूर्वजन्म में मिथ्यात्व के साथ ही मनुष्य आयु का बंध कर फिर सम्यक्त्व ग्रहण कर भोगभूमि में कुलकर के रूप में उत्पन्न होते हैं, लेकिन ऋषभदेव और भरत विमानवासी देवों के सर्वार्थसिद्धि विमान से सम्यक्त्व के साथ मनुष्य आयु का बंध कर कर्मभूमि में जन्म लेने अवतरित हुए थे और तृतीयकाल के अंत में कर्मभूमि का वातावरण प्रारम्भ हो गया था फिर भी उन्हें कृषि आदि षट् कर्मों और वर्णादिक की व्यवस्था स्थापित करने वाले कहे जाने से कुलकर औपचारिक रूप कहा जाता है।

प्र.71 प्रतिश्रुति से लेकर नाभिराय तक चौदह कुलकर स्वीकार करने पर क्या विशिष्टता और अधिक रूप से सोलह कुलकर स्वीकार करने पर क्या बाधा उत्पन्न होगी?

उत्तर प्रतिश्रुति से लेकर नाभिराय तक चौदह कुलकर स्वीकार करने पर 169 महापुरुषों की संख्या सुरक्षित रहेगी अन्यथा तीर्थंकर ऋषभदेव और चक्रवर्ती भरत को कुलकर मानने पर महापुरुषों की संख्या 171 मानना पड़ेगी तथा मनुष्य गति से मनुष्य आयु का बंध करके कुलकर बनते हैं यह नियम बाधक बनेगा।

प्र.72 भोगभूमि के जीव मरणोपरान्त कौन-सी गति को प्राप्त करते हैं?

उत्तर भोगभूमि के जीव अगर मिथ्यात्व के साथ मरण को प्राप्त होते हैं तो भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिष्क देव रूप किसी एक पर्याय में भवनत्रिक नामक देवगति को प्राप्त करते हैं तथा भोगभूमि के जीव अगर सम्यक्त्व के साथ मरण को प्राप्त होते हैं तो सौधर्म-ऐशान कल्प में जाकर विमानवासी रूप देवगति को प्राप्त करते हैं।

प्र.73 भोगभूमि के अंत में क्षायिक-सम्यक्त्व के साथ जन्म लेने वाले चौदह कुलकर मरण को प्राप्तकर कहाँ जन्म-धारण करते हैं?

उत्तर भोगभूमि के अंत में क्षायिक-सम्यक्त्व के साथ जन्म लेने वाले चौदह कुलकर मरण को प्राप्त कर विमानवासी देवों में ऋद्धि आदिक से सम्पन्न विशिष्ट देव पद धारण करते हैं और वहाँ से चयकर सुयोग्य मनुष्य-भव पाकर संयम धारण कर निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

प्र. 74 तीर्थंकर ऋषभदेव और चक्रवर्ती भरत ये कर्मभूमि के मनुष्य थे इसके लिए आगमिक सटीक तर्क कौन-सा है?

उत्तर निश्चित रूप से देवगति को प्राप्त करने वाले भोगभूमि के जीव उस ही भव में अर्थात् भोगभूमि में संयम धारण एवं मोक्ष पद पाने की योग्यता धारक नहीं होते जबकि तृतीयकाल के अन्त में जन्म लेने वाले प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव एवं प्रथम चक्रवर्ती भरत संख्यात वर्ष की आयु वाले होते हुए षट्कर्मों की व्यवस्था बतलाने वाले तथा चार पुरुषार्थों के उपदेशक होते हुए तद्भव मोक्षगामी थे अतः उन्हें कर्मभूमिज मानव कहा जाता है।

प्र. 75 पुरुषार्थ का वास्तविक शाब्दिक अर्थ क्या है?

उत्तर पुरुषार्थ का वास्तविक शब्दिक अर्थ "पुरुष" के द्वारा किया जाने वाला 'अर्थ' अर्थात् प्रयोजनीय कार्य है।

प्र. 76 पुरुषार्थ के वे प्रयोजनीय रूप कार्य कौन-से हैं?

उत्तर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चार तरह के पुरुषार्थ ही प्रयोजनीय कार्य कहलाते हैं।

प्र. 77 धर्म-पुरुषार्थ में कौन-कौन-से प्रमुख कार्य समाहित किये जाते हैं?

उत्तर 1. समीचीन जिनधर्म के आयतनों का निर्माण व उनका संरक्षण, संवर्द्धन।

2. समीचीन धर्मक्षेत्रों हेतु यात्राएँ व उनका प्रबन्धन।

3. पञ्चकल्याणकों व जिनबिम्बों की प्रतिष्ठा का समायोजन।

4. कल्पद्रुम जैसे- महामण्डल आराधना रूप विधानों का आयोजन।

5. जिनागम का संरक्षण व संवर्द्धन। और

6. मुनि, आर्यिकादि रूप आचार्य संघों की आहार, विहार और निहार आदिक की व्यवस्था के साथ उनको होने वाली बाधाओं का निवारण आदिक विशेष कार्य विशिष्ट पुरुषार्थी पुरुषों द्वारा किये जाने के कारण धर्म-पुरुषार्थ कहे जाते हैं।

प्र. 78 अर्थ-पुरुषार्थ को पुरुष किस रूप सम्पन्न करता है?

उत्तर अर्थ-पुरुषार्थ में संलग्न पुरुष गृहणी सम भयभीत व सलज्ज न होता हुआ, न ही राज्य के नियमों का उल्लंघन करता हुआ, दिन रात प्रयत्नशील रहता हुआ देश-विदेश, देश प्रमुखों के समक्ष चोर व जंगली पशुओं (सिंहादिक) के आगे शूरवीर बनता हुआ भूख, प्यास और मानापमानादि की बाधाओं को सहता हुआ अर्थ या धन-अर्जन के कार्य को सम्पन्न करता है।

प्र. 79 काम-पुरुषार्थ को पुरुष कैसे सार्थक बनाता है?

उत्तर जो अपने धार्मिक कुल के संस्कार की परम्परा की वृद्धि करने के निमित्त स्वयं के पूर्वज, माता-पिता और अग्रज आदिक की आज्ञा व अनुमति तथा उनकी संतुष्टि के बल पर अपने कुल आदिक की

परम्परा, राज्य तथा स्वगुणों के अनुरूप, विनीत, गुणवान, सुयोग्य कन्या को स्वीकार कर जीवन पर्यन्त विवाह के संकल्पों से संकल्पित होता हुआ सन्तान उत्पत्ति का पुरुषार्थ करता है वह पुरुष काम-पुरुषार्थ की सार्थकता को प्राप्त करता है।

प्र. 80 मोक्ष-पुरुषार्थ को सार्थक बनाने वाला पुरुष कैसा होता है?

उत्तर मोक्ष-पुरुषार्थ को सार्थक बनाने हेतु जो पुरुष एकत्व (अकेलेपन), अन्यत्व (स्वात्मा से सर्व पदार्थ भिन्न हैं) की भावना को प्रमुख बनाता हुआ गृह के मोह-जाल को छोड़ मुनि बन व मुनि संघ में समर्पित होकर निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण कर मुनियों के मूलगुणों के साथ द्वादश तपादिक आचारों का पालन करता हुआ सिंह के सदृश निर्भय, निर्द्वन्द होकर जंगल, उपवन नगर व ग्रामादिक में सम्यक्-ध्यान के द्वारा कर्मों की निर्जरा करता है वह पुरुष मोक्ष-पुरुषार्थ को सार्थक बनाने वाला होता है।

प्र. 81 पुरुषार्थों को करने में केवल पुरुष के लिए ही सुयोग्य माना है ऐसा क्यों?

उत्तर केवल पुरुष अत्यन्त निर्भीक, निर्द्वन्द, निर्लज्य, अकायर होते हुए एकलपन के साथ बुलंदतापूर्वक बेझिझक विशिष्ट शक्तिवान उद्यमी कहलाता हुआ त्याग और वैराग्य से उत्कृष्ट ध्यान में भी अपनी आत्मा को उन्नति की सर्वोच्चता तक पहुँचाता है न कि कोई गृहणी इस पुरुषार्थ की सिद्धि को पाती है, अत: उसे पुरुष के अर्थ अर्थात् प्रयोजनीय कार्य के करने वाले पुरुष को ही चारों पुरुषार्थों के करने हेतु सुयोग्य माना गया है।

प्र. 82 धर्म-पुरुषार्थ करने का फल क्या है?

उत्तर धर्म-पुरुषार्थ करने का फल पुण्य की प्राप्ति है, जिस पुण्य के फलस्वरूप सांसारिक वैभव रूप सुगति, उत्तम जाति, उत्तम कुल, सांगोपांग शरीर, सुन्दर भोग, धन-धान्य, पुत्र पौत्रादि सम्पदा की प्राप्ति तथाहि वीतराग आयतन, उत्तम संहननादि की उपलब्धि से परम्परा से मोक्ष रूप फल की प्राप्ति माना गया है।

प्र. 83 अर्थ-पुरुषार्थ और काम पुरुषार्थ का फल क्या है?

उत्तर अर्थ तथा काम-पुरुषार्थ का फल संसार वृद्धि या चतुर्गति भ्रमण है।

प्र. 84 मोक्ष-पुरुषार्थ का फल क्या है?

उत्तर मोक्ष-पुरुषार्थ का फल सर्वकर्म का क्षय, भव भ्रमण का अंत और मोक्ष या सिद्ध-पद की प्राप्ति माना गया है।

प्र. 85 तीर्थंकर किन्हें कहते हैं जिन्होंने कि हमें पुरुषार्थों का उपदेश दिया था?

उत्तर कल्याणकों की पूजा से लोक पूज्यता को प्राप्त जिन विशिष्ट आत्माओं से तीर्थ का उदय होता है उन्हें तीर्थंकर कहते हैं।

प्र. 86 तीर्थ किसे कहते हैं?

उत्तर जो भव्य जीवों को संसार रूपी समुद्र से पार लगावे उसे तीर्थ कहते हैं।

प्र. 87 संसार रूपी भव-समुद्र से पार लगाने वाली वस्तु कौन-सी है?

उत्तर संसार रूपी भव-समुद्र से पार लगाने वाली वस्तु तीर्थंकरों से प्राप्त कल्याण करने वाली वाणी है जिसे जिनवाणी, आगम या दिव्यध्वनि भी कहते हैं।

प्र. 88 तीर्थंकर कहाँ, कब कितनी संख्या में होते हैं?

उत्तर पंच भरत, पंच ऐरावत संबन्धी अवसर्पिणी के दुषमा-सुषमा नामक चतुर्थ काल में और उत्सर्पिणी के दुषमा-सुषमा नामक तृतीय काल में चौबीस-चौबीस तीर्थंकर उत्पन्न होते हैं।

प्र. 89 विदेह क्षेत्रों में कब और कितने तीर्थंकर होते हैं?

उत्तर पंच महा विदेहों अथवा उनके अंदर स्थित एक सौ साठ उपविदेह क्षेत्रों में जहाँ सदा दुषमा-सुषमा नामक चतुर्थकाल जैसा वातावरण रहता है, वहाँ हमेशा अधिक से अधिक एक सौ साठ और कम-से-कम बीस तीर्थंकर विद्यमान रहते हैं।

प्र. 90 तीर्थंकर कौन और कैसे बनते हैं?

उत्तर जो भव्य जीव सम्यक्त्व पूर्वक केवली-भगवान अथवा श्रुत-केवली मुनीश्वर के पाद-मूल में लोक-कल्याण की भावना के साथ षोडसकारण भावनाओं को भाते हैं। वे विशिष्ट विशुद्धि प्राप्त जीव तीर्थंकर प्रकृति का संचय कर तीर्थंकर बनते हैं।

प्र. 91 अवसर्पिणी काल संबंधी सुषमा-दुषमा नामक तृतीय काल के अन्त में तीर्थंकर की उत्पत्ति का कारण बतलाइये?

उत्तर सुषमा-दुषमा नामक तृतीय काल के अन्त में प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ और प्रथम चक्रवर्ती भरत की उत्पत्ति होना यह हुण्डा-अवसर्पिणी काल का दोष माना गया है।

प्र. 92 भरत और ऐरावत क्षेत्रों में तीर्थंकरों के कल्याणक कितने होते हैं और कौन-कौन-से?

उत्तर भरत और ऐरावत क्षेत्रों में तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, दीक्षा (तप या अभिनिष्क्रमण), केवलज्ञान और निर्वाण (मोक्ष) रूप पंच कल्याणक हुआ करते हैं।

प्र. 93 विदेह क्षेत्रों में कल्याणकों के होने का क्या विशेष नियम है?

उत्तर विदेह क्षेत्रों में पञ्च कल्याणकों वाले तीर्थंकरों के अलावा दो या तीन कल्याणकों वाले तीर्थंकर भी हुआ करते हैं।

प्र. 94 विदेह क्षेत्रों में दो अथवा तीन कल्याणक कौन-कौन-से होते हैं?

उत्तर विदेह क्षेत्रों में कोई गृहस्थश्रावक सोलह भावन-भाकर तीर्थंकर-प्रकृति का बंध कर निर्ग्रन्थ-दीक्षा-धारण करते समय तीर्थंकर-प्रकृति का उदय हो जाने से उनके दीक्षा-कल्याणक और आगे उसी जीवन में ज्ञान और मोक्ष-कल्याणक भी अवश्य सम्पन्न होते हैं। तथा जो गृहस्थ मुनि बनने के उपरान्त तीर्थंकर-प्रकृति का बंध करते हैं, उनके ज्ञान एवं मोक्ष-कल्याणक रूप दो कल्याणक सम्पन्न होते हैं। यह नियम केवल विदेह क्षेत्रों का है न कि भरत और ऐरावत क्षेत्रों का।

प्र. 95 विदेह क्षेत्र में एक या चार कल्याणक वाले तीर्थंकर क्यों नहीं होते?

उत्तर इसका समाधान यह है कि जो जीव पूर्वभव से तीर्थंकर-प्रकृति का बंध करके आया है उस जीव के पांचों कल्याणक सम्पन्न होंगे और जो जीव पूर्व भव से तीर्थंकर-प्रकृति का बंध करके नहीं आया है उसे गर्भावस्था में तो तीर्थंकर-प्रकृति बंध तो होगा नहीं अतः गर्भ कल्याणक को छोड़कर चार

कल्याणक होना संभव नहीं। इसी तीर्थंकर-प्रकृति का बंध किसी योग्य पुरुष के गृहस्थावस्था से मुनि अवस्था तक ही होना संभव है केवली होने के बाद नहीं; कि जिस कारण उसके ज्ञान-कल्याणक भी छोड़कर मात्र मोक्ष-कल्याणक सम्पन्न हो सके। (विशेष विषय करणानुयोग में देखें)।

प्र.96 भरतक्षेत्र में तीर्थंकरों का जन्म किस विशिष्ट स्थल पर होता है?

उत्तर भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में तीर्थंकरों का जन्म; जिस स्थल की चित्रा भूमि पर ओम् (ॐ) शाश्वत रूप से बना हुआ है ऐसे स्थल पर रची जाने वाली अयोध्या नगरी में होता है।

प्र.97 भरतक्षेत्र में तीर्थंकरों को निर्वाण (मोक्ष) की प्राप्ति किस पवित्र स्थल से होती है?

उत्तर भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में तीर्थंकरों को निर्वाण (मोक्ष) की प्राप्ति; जिस स्थल की चित्राभूमि पर शाश्वत रूप से स्वस्तिक (') बना हुआ है ऐसे स्थल पर रचे जाने वाले सम्मेदशिखर-पर्वत से होती है। (प्रलयोपरान्त रचना रूप विशेष वर्णन करणानुयोग में देखें)।

प्र.98 आर्यखण्ड किसे कहते हैं?

उत्तर भरत-क्षेत्र में विजयार्ध पर्वत की दक्षिण दिशा की ओर गंगा और सिन्धु नदियों से विभाजित मध्य वाले भाग को जहाँ धार्मिक-क्रिया करने वाले गुणवान मनुष्य निवास करते हैं उसे आर्यखण्ड कहते हैं।

प्र.99 म्लेच्छखण्ड किसे कहते हैं?

उत्तर भरत क्षेत्र में विजयार्ध पर्वत की उत्तर दिशा की ओर गंगा और सिन्धु नदियों से विभाजित तीन भागों को तथा दक्षिण दिशा के दो भागों को अर्थात् षट्खण्डों में से पांच खण्डों को जहाँ कि धार्मिक क्रियाओं से रहित मनुष्य निवास करते हैं उसे म्लेच्छ खण्ड कहते हैं।

प्र.100 भरत क्षेत्र में तीर्थंकरों का अयोध्या नगर को छोड़कर अन्य स्थलों पर जन्म होने में और सम्मेद-शिखर क्षेत्र के अलावा अन्य स्थल से मोक्ष होने में मुख्य कारण कौन-सा है?

उत्तर तीर्थंकरों का अयोध्या नगर छोड़कर अन्य स्थलों पर जन्म और सम्मेदशिखर क्षेत्र छोड़कर अन्य स्थल से मोक्ष होने में मुख्य कारण असंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के अनन्तर आने वाला हुण्डा-अवसर्पिणी काल है जिस काल में ऐसी ही कुछ विचित्र घटनाएँ घटा करती हैं। (अतिरिक्त विषय देखें जैनागम संस्कार अ.2.)।

अध्याय - 2. तीर्थंकर ऋषभदेव का वैभवादि

प्र. 101 निर्मल सम्यग्दृष्टि जीव किस तरह की लोककल्याण या विश्वकल्याण की प्रबल भावना से तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता है?

उत्तर तीर्थंकर जिनेन्द्र देव की दिव्य-वाणी के प्रसाद से देव, मनुष्य और पशु इन सभी जीवों को धर्म का अपूर्व लाभ होता है। यह देखकर किसी महाभाग के हृदय में ऐसे अत्यन्त पवित्र भाव उत्पन्न होते हैं कि हे प्रभो ! आपके समान क्षमता, शक्ति तथा सामर्थ्य मेरी आत्मा में भी उत्पन्न हो, जिससे मैं भी सम्पूर्ण जीवों को आत्म-ज्ञान का अमृत पिलाकर उनको सच्चे सुख का मार्ग बता सकूँ। इस प्रकार की विश्वकल्याण की प्रबल भावना के द्वारा सम्यग्दृष्टि जीव तीर्थंकर-प्रकृत्ति का बंध करता है।

प्र. 102 दर्शन विशुद्धि भावना मात्र से भी क्या तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकता है?

उत्तर सम्यक्त्व यदि सांगोपांग (अष्टअंगसह) हो तथा उसके साथ सर्व जीवों को सम्यक् ज्ञानामृत पिलाने की भावना या मंगल कामना प्रबल रूप से हो जाये तो तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकता है। दर्शन की विशेष विशुद्धि रूप दर्शन विशुद्धि भावना की परिपूर्णता होने पर अनेक शेष वे विनयसम्पन्नता आदिक भावनाएँ अप्रत्यक्ष रूप से या अस्पष्ट रूप से सहचर बनकर धर्म-मार्ग की विशुद्धि में और तीर्थंकर प्रकृतिबंध में कारण बनती हैं।

प्र.103 सम्यग्दर्शन से भी दर्शन विशुद्धि भावना में क्या विशिष्टता है?

उत्तर सम्यग्दर्शन आत्मा का श्रद्धा विशेष परिणाम है। वही मात्र तीर्थंकर प्रकृति बंध का कारण नहीं हो सकता; उसके सद्भाव में जब एक लोक कल्याण की विशिष्ट भावना उत्पन्न होती है तब उसे दर्शन विशुद्धि भावना कहा जाता है। यदि दोनों में अन्तर न हो तो चल-मल-अगाढ़ आदिक विकारी दोषों से पूर्णत: उन्मुख सभी क्षायिक सम्यक्त्वी जीव तीर्थंकर प्रकृति के बंधक हो जाते हैं, किन्तु ऐसा नहीं होता, अत: यह स्वीकरना तर्क सङ्गत है कि सम्यक्त्व के साथ में और भी सर्वजीव-उद्धारक रूप विशेष पुण्य भावना का सद्भाव आवश्यक है।

प्र. 104 परम-उत्कृष्ट रूप क्षायिक सम्यग्दर्शन मात्र के हो जाने से तीर्थंकर प्रकृति बंध की अनिवार्यता मान लेने पर क्या विरोध आता है?

उत्तर क्षायिक सम्यक्त्व मात्र यदि तीर्थंकर प्रकृति बंध का कारण होता तो सिद्ध-पद की प्राप्ति के पूर्व सर्व केवली तीर्थंकर होते, क्योंकि केवलज्ञानी बनने से पूर्व क्षपकश्रेणी आरोहण करते समय क्षायिक सम्यक्त्व को पाना यह अनिवार्य नियम है। भरत क्षेत्र में एक अवसर्पिणी में वर्तमान कालिक चौबीस ही तीर्थंकर होने रूप अल्प संख्या ही तीर्थंकर प्रकृति की लोकोत्तरता को स्पष्ट करती है। क्षायिक सम्यग्दृष्टि होने मात्र से यदि तीर्थंकरत्व प्राप्त होता तो तीर्थंकर महावीर भगवान के समवसरण में विद्यमान सात सौ केवली सामान्य केवली न होकर तीर्थंकर हो जाते; किन्तु नहीं हुआ। कदापि एक तीर्थंकर के समक्ष दूसरे तीर्थंकर का सद्भाव भी नहीं होता।

प्र. 105 भरतक्षेत्र सम्बन्धी भूतकालीन (उत्सर्पिणी के दुषमा-सुषमा नामक तृतीय काल में हुए) चौबीस तीर्थंकर कौन-से शुभ नामो से जाने जाते थे?

उत्तर भरतक्षेत्र सम्बन्धी भूतकालीन चौबीस तीर्थंकर-1. निर्वाण, 2. सागर, 3. महासाधु, 4. विमलप्रभ, 5. श्रीधर, 6. सुदत्त, 7. अमल प्रभ, 8. उद्धर, 9. अंगिर, 10. सन्मति, 11. सिन्धु, 12. कुसुमांजलि, 13. शिवगण, 14. उत्साह, 15. ज्ञानेश्वर, 16. परमेश्वर, 17. विमलेश्वर, 18. यशोधर, 19. कृष्णमति, 20. ज्ञानमति, 21 शुद्धमति, 22. श्रीभद्र, 23. अतिक्रान्त और 24. शांतदेव; ऐसे शुभनामों से जाने जाते थे।

प्र. 106.भरतक्षेत्र सम्बन्धी वर्तमान कालीन (अवसर्पिणी के दुषमा-सुषमा नामक चतुर्थकाल में हुए) चौबीस तीर्थंकर किन शुभ नामों से पुकारे जाते हैं?

उत्तर भरतक्षेत्र सम्बन्धी वर्तमान कालीन चौबीस तीर्थंकर- 1. ऋषभनाथ, 2. अजितनाथ, 3. संभवनाथ, 4. अभिनन्दन, 5. सुमतिनाथ, 6. पद्मप्रभ, 7. सुपार्श्वनाथ, 8. चन्द्रप्रभ, 9. पुष्पदंत, 10. शीतलनाथ, 11. श्रेयांसनाथ, 12. वासुपूज्य, 13 विमलनाथ, 14. अनन्तनाथ, 15. धर्मनाथ, 16. शांतिनाथ, 17. कुन्थुनाथ, 18. अरहनाथ, 19. मल्लिनाथ, 20. मुनिसुव्रत, 21. नमिनाथ, 22. नेमिनाथ, 23. पार्श्वनाथ और 24. महावीर; ऐसे शुभ नामों से पुकारे जाते हैं।

प्र. 107 भरतक्षेत्र सम्बन्धी भविष्यत् कालीन (उत्सर्पिणी के दुषमा-सुषमा नामक तृतीय काल में होने वाले) चौबीस तीर्थंकर किन शुभ नामों से पुकारे जावेंगे?

उत्तर भरतक्षेत्र सम्बन्धी भविष्यत् कालीन चौबीस तीर्थंकर-1. महापद्म, 2. सुरदेव, 3. सुपार्श्व, 4. स्वयंप्रभ, 5. सर्वात्मभूत, 6. देवपुत्र, 7. कुलपुत्र, 8. उदंकदेव, 9. प्रोष्ठिलदेव, 10. जयकीर्ति, 11. मुनिसुव्रत, 12. अरदेव (अप्तम), 13. निष्पाप, 14. निष्कषाय, 15. विपुलदेव, 16. निर्मलदेव, 17. चित्रगुप्त, 18. समाधिगुप्त, 19. स्वयंभूदेव, 20. अनिवृत्तदेव, 21. जयदेव, 22. विमलदेव, 23. देवपाल और 24. अनन्तवीर्य; ऐसे शुभ नामों से पुकारे जावेंगे।

प्र. 108 विदेहक्षेत्र में विराजमान विद्यमान बीस तीर्थंकर किन शुभ नामों सह आराधित (उपासित) किये जाते हैं?

उत्तर विदेहक्षेत्र में विराजमान विद्यमान बीस तीर्थंकर- 1. सीमंधर, 2. युगमन्धर, 3. बाहु, 4. सुबाहु, 5. सुजात, 6. स्वयंप्रभु, 7. वृषभानन, 8. अनन्तवीर्य, 9. सुरप्रभ, 10. विशालकीर्ति, 11. वज्रधर, 12. चंद्रानन, 13. भद्रबाहु, 14. भुजंगम, 15. ईश्वर, 16. नेमप्रभ, 17. वीरसेन, 18. महाभद्र, 19. देवयश और 20. अजितवीर्य ऐसे शुभ नामों सह आराधित किये जाते हैं।

प्र. 109 ढाई-द्वीप में युगपत् कितने तीर्थंकर तक हो सकते हैं?

उत्तर जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्करार्ध नामक ढाई-द्वीप में युगपत् पंच भरत, पंच ऐरावत और एक सौ साठ उप विदेहों की अपेक्षा एक सौ सत्तर तीर्थंकर तक हो सकते हैं। कहते हैं कि अजितनाथ तीर्थंकर के काल में एक सौ सत्तर तीर्थंकर विद्यमान थे। लेकिन जन्मकल्याणक आदि सन्दर्भों में कुछ समय का

अन्तर मानना पड़ेगा क्योंकि पंचमेरु सम्बन्धी जन्माभिषेक हेतु निश्चित पाण्डुक शिलाएँ केवल बीस ही होती हैं।

प्र. 110 प्रथम तीर्थंकर के समय सौधर्मेन्द्र अयोध्या की रचना किस तरह से करता है?

उत्तर प्रथम तीर्थंकर भगवान् वृषभदेव की माता मरुदेवी के गर्भ में आने के छह माह पूर्व ही इन्द्र की आज्ञानुसार देवों ने स्वर्गपुरी के समान अयोध्या नगरी की रचना की। देवों ने उस नगरी को विशेष मनोहर बनाया। इसका कारण यह प्रतीत होता कि देवताओं की यह इच्छा थी कि मध्यलोक में स्वर्ग की एक प्रतिकृति रही आवे। (म.पु.12-17)

प्र. 111 अयोध्या नगरी के लिए और किन-किन नामों से पुकारा जाता था?

उत्तर अयोध्या नगरी के लिए साकेता, विनीता तथा सुकोशला आदि शुभ नामों से पुकारा जाता था।

प्र. 112 अयोध्या नगरी में महाराजा नाभिराय के निवासार्थ कौन-से भवन की रचना की गई थी?

उत्तर अयोध्या नगरी के मध्य में स्वर्गीय सुरेन्द्र भवन से स्पर्धा करने वाले नरेन्द्र भवन की रचना की गई थी जो महाराजा नाभिराय के निवासार्थ था।

प्र. 113 महाराजा तीर्थंकर वृषभदेव अयोध्यानगरी के जिस भवन में निवास करते थे; रत्नों से सुसज्जित उस स्वर्णिम भवन का नाम क्या था?

उत्तर महाराजा वृषभदेव के उस सुन्दर भवन का नाम सर्वतोभद्र था।

प्र. 114 सर्वतोभद्र भवन कितना ऊँचा एवं किस तरह का था?

उत्तर सर्वतोभद्र भवन इक्यासी मंजिला एवं परकोटे, वापिका उद्यान और चतुर्मुख द्वारों से शोभायमान तथा देवगणों द्वारा रक्षित था।

प्र. 115 तीर्थंकरों के जन्म वाले विशिष्ट भवन एवं भवन के परिसर में स्वर्गिक देवगण कितने करोड़ रत्नों की वर्षा कब; कब तक किया करते हैं?

उत्तर तीर्थंकर भगवान के जन्म के पन्द्रह माह पूर्व से अर्थात् गर्भ में आने के छह माह पूर्व से जन्म के नौ माह बाद तक जन्म नगरी में प्रभात, मध्याह्न, सायंकाल तथा मध्यरात्रि में चार बार साढ़े तीन-साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षा देव गण किया करते हैं। इस तरह चौदह करोड़ दिव्य-वेशकीमती रत्नों की वर्षात् नित्यप्रति हुआ करती है।

प्र. 116 तीर्थंकरों के अवतार की खुशी में रत्नों की वर्षा करने, कराने वाले देव किस नाम से पुकारे जाते हैं?

उत्तर तीर्थंकरों के अवतार की खुशी में रत्न वर्षाने वाले देव तिर्यग्विजृंभक नामक सार्थक नाम से पुकारे जाते हैं जो कुबेरेन्द्र की आज्ञा से रत्न वर्षाते हैं।

प्र. 117 तीर्थंकर तो रत्न भण्डारयुत राजभवन में जन्म धारण करते हैं उन्हें रत्नों की वर्षात् से क्या प्रयोजन है?

उत्तर तीर्थंकरों का भवन रत्नों से सम्पन्न होते हुए भी वहाँ रत्नों की वर्षात् देवों द्वारा किया जाना यह स्वर्गिक

देवों की विशेष भक्ति का प्रदर्शन है तथाहि नगर में रहने वाले लोग उन रत्नों को ले जाकर सम्पन्नता का अनुभव करते हुए फूले नहीं समाते और तीर्थंकर की महिमा गाते हुए उनका उपकार जन्म जन्मान्तरों तक नहीं भूलते।

प्र. 118 तीर्थंकर को जन्म देने वाली जननी माँ की सेवार्थ कितनी देवियाँ सातिशय पुण्य की भागनी होती हैं?

उत्तर तीर्थंकर को जन्म देने वाली जननी माँ की सेवार्थ कल्पवासी देवों के देवेन्द्रों की बारह इन्द्राणियाँ, भवनवासी देवों के देवेन्द्रों की बीस इन्द्राणियाँ, व्यन्तरवासी देवों के देवेन्द्रों की सोलह इन्द्राणियाँ, ज्योतिष्क देवों के देवेन्द्रों की दो इन्द्राणियाँ और कुलाचल (पर्वत) वासिनी श्री, ह्री आदि छह देवियाँ इस तरह कुल मिलाकर छप्पन देवांगनायें सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से नियुक्त होकर तीर्थंकर की माता की सेवाकर सातिशय पुण्य की भागनी होती हैं।

प्र. 119 देवांगनाओं ने किस तरह से तीर्थंकर को जनने वाली गुणवान माता की सेवा सम्पन्न की थी?

उत्तर कुण्डल पर्वत के महलों पर निवास करने वाली चूलावती, मालनिका, नवमालिका, त्रिशिरा, पुण्यचूला, कनकचित्रा, कनकादेवी तथा वरुणी देवी नामक अष्टदिक् कन्याएँ इन्द्र की आज्ञा से तीर्थंकर की जननी माँ की सेवा को नियुक्त हुईं थीं। कुलाचल वासिनी श्री देवी, ह्री देवी, कीर्ति देवी, धृति देवी, बुद्धि देवी एवं लक्ष्मी देवी नामक छह देवियाँ भगवान की माता का गर्भशोधन का कार्य करती हैं। नवमा माह निकट आने पर सेवा संलग्न देवियों ने अत्यन्त गूढ़, तत्त्व से सम्बन्धित तथा मनोरञ्जक प्रश्न जिनमाता से पूछे और उन तीर्थंकर माता से सुन्दर समाधान पाकर सुन्दर, मधुर मंगल गीत गाये।

प्र. 120 तीर्थंकर को जनने वाली माता को सोलह स्वप्न देखने की भूमिका किस तरह तैयार होती है और माता किस तरह के सोलह स्वप्न देखती हैं?

उत्तर वृषभदेव के गर्भ में आने के छह माह पूर्व से जैसे-जैसे दिन न्यून होते जा रहे थे वैसे-वैसे यहाँ अयोध्यापुरी की सर्वांगीणश्री, वैभव, सुख आदि की वृद्धि हो रही थी। शीघ्र ही वह समय आ गया, कि देवायु समाप्त हुई और तीर्थंकर की मनुष्य आयु का उदय आते ही वह स्वर्ग की विभूति मानव लोक में आ गई और उसने माता मरुदेवी को सोलह स्वप्न-दर्शन द्वारा उक्त बात की सूचना देने के साथ अपने मङ्गल जीवन की महत्ता को पहले से ही प्रकट कर दिया। तीर्थंकर भगवान की माता ने 1. गर्जना करते हुए सफेद हाथी देखा 2. शुभ्ररंग वाला बैल देखा 3. बालों युत सिंह को देखा, 4. दोनों बाजू से दो हाथी कलशाभिषेक कर रहे हैं जिसके ऐसी लक्ष्मी को देखा, 5. लटकती हुईं दो पुष्पमालाएँ देखीं, 6. चाँदनी युक्त पूर्ण चन्द्रमा को देखा, 7. उदय होते हुए सूर्य को देखा 8. सरोवर में क्रीड़ा करने वाले मीन युगल को देखा, 9. कमलों से घिरे सुवर्णमय दो पूर्ण कलश देखे, 10. पद्मों से भरे सरोवर को देखा, 11. उन्मत्त लहरयुक्त समुद्र देखा, 12. रत्न जड़ित सिंहासन देखा, 13. रत्नजड़ित देव विमान देखा, 14. नागेन्द्र के भवन को देखा 15. प्रकाशमान रत्न राशि देखी और अंत में 16. धूम्र रहित प्रखर अग्नि देखी

इस तरह क्रमश: सोलह स्वप्न देखे।

प्र. 121 तीर्थंकर की प्रत्येक माताएँ किस तरह अपने पति से स्वप्नों का फल पूछती हैं और स्वप्नों के फलों को सुनकर आनन्दित भी होती हैं?

उत्तर प्रत्येक तीर्थंकरों की माताएँ रात्रि के अंतिम प्रहर में दर्शित होने वाले सोलह स्वप्नों के फलों को अपने पति से पूछने पर उनके द्वारा बतलाये सोलह स्वप्नों के फलों को इस तरह सुनकर कि हे प्रिये! गजेन्द्र दर्शन से अपना पुत्र उच्च चारित्र वाला होगा। वृषभ दर्शन से धर्मात्मा होगा। लक्ष्मी अवलोकन से अधिकश्री सम्पन्न होगा। मालाएँ दिखने से सबके द्वारा शिरोधार्य होगा। चन्द्रमा दिखने से संसार के संताप को दूर करने वाला होगा। सूर्य दिखने से अधिक तेजस्वी होगा। मीन दिखने से सर्वाधिकरूप से सम्पन्न होगा। कलश दर्शन से कल्याण को प्राप्त होगा। सरोवर दिखने से वात्सल्य भाव युक्त होगा। समुद्र दर्शन से गम्भीर बुद्धि वाला होगा। सिंहासन दिखने से सिंहासन का स्वामी होगा। देव विमान दिखने से देवों का आगमन होगा। नागेन्द्रभवन दिखने से नागकुमार देवों का भी आगमन होगा। रत्न राशि दिखने से विशिष्ट गुणों का स्वामी होगा। तथा अग्नि दर्शित होने से अपना पुत्र कर्मों का दहन कर मोक्ष का भागी होगा अतीव आनन्द को प्राप्त होती हैं।

प्र. 122 तीर्थंकरों की माता और तीर्थंकरों की प्रारंभिक काल से ही परिचर्या करने से कौन आत्मा देव गति से अतिशीघ्र मनुष्य भव पाकर मोक्ष पद को प्राप्त करती है?

उत्तर तीर्थंकरों की माता और तीर्थंकरों की गर्भादिक कल्याणकों की प्रारंभिक अवस्था से ही परिचर्या (सेवा) करने व करवाने से सौधर्मेन्द्र की पट्ट (प्रमुख) देवी शची इन्द्राणी सौधर्मादिक देव-गणों की सागरोपमादिक आयु के सामने मात्र कुछ पल्योपम जैसी आयु का अनुभव कर और मनुष्य भव को प्राप्त कर एक भव अवतारी सौधर्मेन्द्रादि देवों से भी पहले ही संयम-धारण कर (मुनि बन) कर्म क्षपणकर, अतिशीघ्र मोक्ष पद को प्राप्त कर लेती है।

प्र. 123 सौधर्मेन्द्र की पट्ट देवी शची देवी तीर्थंकरों से सम्बन्धित ऐसे कौन-कौन-से सातिशय पुण्यकारी कार्यों को सम्पन्न करती है जिस कारण उसे शीघ्र ही इतने उत्कृष्ट फल रूप मोक्ष की प्राप्ति होती है?

उत्तर स्वर्ग से आकर के वह शची देवी तीर्थंकर की माता की सेवा में गर्भ के समय से स्वत: सेवा में तत्पर रहती हुई अन्य देवियों को भी सेवा में तत्पर कराती है अन्य देवियाँ शची देवी के निर्देशन में गर्भशोधन, मंगलगीत गायन, प्रश्न पूछनादि कार्यों को करते हुए शारीरिक सेवा-सुश्रुषा का भी कार्य किया करती हैं। शची इन्द्राणी स्वत: माता की सेवा के साथ जन्मोत्सव पर इन्द्राज्ञा से प्रसूति ग्रह से जिनबालक को लाते समय माता को मायामयी निद्रा में सुलाना, मायामयी बालक को माता की शय्या पर लिटाना, तीर्थंकर बालक का रूप देखकर अतिशय चकित व पुलकित होना और विशेष आग्रह पर इन्द्र को सौंपना, इन्द्रों द्वारा जन्माभिषेक के सम्पन्न हो जाने पर जिनबालक का प्रक्षालन करना, उनको स्वर्गिक अलंकार आभूषण, वस्त्रादिक से सजाना तथाहि तीर्थंकर बालक के गृहस्थ जीवन में जिनमाता से

छुपाते हुए स्वर्गिक वस्त्राभूषण आदि उपभोग की सामग्रियाँ तथा अपनी माया से तरह-तरह के स्वादिष्ट भोज्य उपस्थित करना इत्यादिक सेवा कार्यों से विशिष्ट पुण्यार्जन कर और जिसके फलस्वरूप मोक्ष प्राप्ति की अनुकूलताओं को प्राप्त कर शीघ्र मोक्ष पा लेती है।

प्र. 124 तीर्थंकर प्रभु के जन्म लेते ही चारों निकायों के देवों को किन संकेतों से प्रभु जन्म का संदेश प्राप्त होता है?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु के जन्म होते ही भवनवासी देवों के यहाँ शंख ध्वनि होने लगती है, व्यन्तर देवों के यहाँ भेरी नाद होने लगता है, ज्योतिषी देवों के यहाँ सिंहनाद होने लगता है तथा कल्पवासी देवों के यहाँ स्वयमेव घण्टे बजने लग जाते हैं।

प्र. 125 सौधर्मेन्द्र किस विशिष्ट रूप संकेत द्वारा तीर्थंकर के जन्म का संदेश पाकर प्रभु के लिए किस तरह आदर पूर्वक नमन प्रस्तुत करता है?

उत्तर तीर्थंकर वृषभदेव के जन्म होते ही सौधर्मेन्द्र का आसन कंपित हुआ तथा वह सोचने लगा कि यह किस निर्भय, शंका रहित, अत्यन्तबाल स्वभाव, मुग्ध प्रकृति, स्वच्छंद भाव वाले तथा शीघ्र कार्य करने वाले व्यक्ति का कार्य है। अपने पराक्रम से शोभायमान भी देव-दानव समुदाय के किञ्चित् प्रतिकूल होने पर जो उनके दमन करने की सामर्थ्य धारण करता है, ऐसे शक्र पुरन्दर और इन्द्र नामधारी मेरे अकंपित सिंहासन को कंपित करते हुए उसने मेरी कुछ भी गणना नहीं की।

ऐसा विचारते हुए सौधर्मेन्द्र के चित्त में एक बात उत्पन्न हुई कि तीनों लोकों में ऐसा प्रभाव तीर्थंकर भगवान के सिवाय अन्य किसी व्यक्तित्व में संभावनीय नहीं है। पश्चात् अवधिज्ञान द्वारा ज्ञात हो गया कि भरत क्षेत्र में महाराज नाभिराज के यहाँ ऋषभनाथ तीर्थंकर का जन्म हुआ है। तत्काल ही वह विस्मय महा आनंद रस में परिणत हो गया। बड़े भावविभोर होकर सौधर्मेन्द्र ने तीर्थंकर प्रभु जयवन्त हों ऐसा पुकारते हुए सात पग आगे जाकर हाथ जोड़कर तीर्थंकर जिनबालक को बड़ी श्रद्धा से प्रणाम किया। जन्म तो अयोध्या में हुआ लेकिन स्वर्ग लोक आदि में देवों के मुकुट झुक गये।

प्र. 126 जगत् त्रय के स्वामी तीर्थंकर के जन्मोत्सव को मनाने स्वर्ग लोक से सौधर्मेन्द्र की किस तरह की सेना अयोध्या नगरी में अवतरित हुई?

उत्तर त्रिलोक के स्वामी तीर्थंकर का जन्म जानकर स्वर्गिक देवों के हाथी, घोड़े, रथ, गंधर्व, पदाति, बैल तथा नृत्यकारिणी रूपधारी सात तरह की सेना सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से अयोध्या नगरी की ओर रवाना हुई। ज्ञातव्य रहे कि स्वर्गों के आभियोग्य जाति के देव ही तिर्यंचों का रूप धारण करते हैं। स्वर्गों में कोई तिर्यंच नहीं पाये जाते। ऐसे मंगलमय अवसर पर शोक, विषाद आदि विकारों का सर्वत्र अभाव हो गया था। सर्वजगत् आनंद के सिंधु में निमग्न था। शांति का सागर दिग्-दिगंत में लहरा रहा था। इन्द्र की सात प्रकार की देव-सेना तीर्थंकर आदि का गुणानुवाद तथा नृत्य गायन करती हुई अयोध्या नगरी पहुँचती है।

प्र. 127 सौधर्मेन्द्र ने किस तरह के अद्‌भुत ऐरावत हाथी पर सवार होकर अयोध्या नगरी की ओर

प्रस्थान किया था?

उत्तर सौधर्मेन्द्र ने एक लाख योजन के ऐरावत हाथी पर शची इन्द्राणी व अपने परिकर के साथ बैठकर अनेक देवों से समलंकृत हो अयोध्या नगरी की ओर प्रस्थान किया था। ऐरावत गज अद्‌भुत था, वह दैविक चमत्कार रूप अत्यन्त मनोज्ञ था, देवों की कल्पनातीत विक्रिया शक्ति एक उदाहरण था, वैक्रियिक शरीर का स्थूल रूप का दर्शन ऐरावत हाथी में हो रहा था, वह गज लौकिक गजों से भिन्न था और देव सामर्थ्य का सुमधुर प्रदर्शन था। उस गज के बत्तीस मुख थे, प्रत्येक मुख में आठ-आठ दांत थे, प्रत्येक दांत पर एक-एक सरोवर था, प्रत्येक सरोवर में एक-एक कमलिनी थी, एक-एक कमलिनी में बत्तीस-बत्तीस कमल पत्र थे और कमल के प्रत्येक पत्ते पर बत्तीस-बत्तीस देवांगनाएँ मधुर नृत्य कर रही थीं, जो दृश्य सौधर्मेन्द्र के वैभव का परिचायक होते हुए तीर्थंकर की सेवा की महिमा को सर्व जगत् में विस्तृत करने वाला था।

प्र. 128 तीर्थंकर की जन्म नगरी में सेवार्थ आते हुए देवों का समूह किस तरह प्रतीत होता था?

उत्तर सोलह स्वर्ग तक के समस्त देव, देवांगनाएँ तथा भवनत्रिक के देवताओं का समुदाय महान पुण्यात्मा सौधर्मेन्द्र के नेतृत्व में आकाश मार्ग से श्रेष्ठ वैभव, आनन्द, प्रसन्नता तथा अमर्यादित उल्लास के साथ अयोध्या की ओर बढ़ रहा था, उन आते हुए देवों के विमान और वाहनों से व्याप्त हुआ आकाश ऐसा प्रतीत होता था मानों त्रेसठ पटल वाले स्वर्ग को छोड़कर अन्य स्वर्ग का निर्माण हुआ हो। महाराज नाभिराज के राजभवन का प्रांगण सुरेन्द्रों के समुदाय से भर गया था और देवों की सेनाएँ अयोध्या पुरी को घेर कर चहुँ ओर अवस्थित हो गयी थीं तथाहि ऐसा प्रतीत होता था कि जन्मे हुए तीर्थंकर बालक को देख उनमें समूचे संसार का सुख पाने के लिए आतुर हों वे पुण्यशाली देवगण।

प्र. 129 तीर्थंकर के जन्मोत्सव में अष्ट दिक्कुमारियों ने कौन से अष्ट मंगल करों में धारण कर प्रभु की शोभाश्री में वृद्धि की थी?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु को प्रसव मंदिर से बाहर लाते ही जन्मोत्सव के समय प्रभु के आगे छत्र, चँवर, ध्वजा, कलश, सुप्रतिष्टक (ठोना), झारी, दर्पण तथा पंखा उन अष्ट कुमारियों ने अपने करों में धारण कर प्रभु की शोभाश्री में अतिशय वृद्धि की थी।

प्र. 130 तीर्थंकर प्रभु के प्रथम दर्शन पर सौधर्मेन्द्र ने किस तरह आनंद का अनुभव किया?

उत्तर सौधर्मेन्द्र तीर्थंकर प्रभु की प्रथम बार पूर्ण जगत् में अनुपम सौन्दर्यपूर्ण मनोज्ञ छबि का दर्शन कर, सहस्र नेत्र बनाकर आश्चर्य चकित हो आनंद के सिंधु में आकण्ठ निमग्न हो गया और जयकारों से दशों दिशायें गूंज उठीं।

प्र. 131 तीर्थंकर के जन्म के समय सौधर्मेन्द्र ने उन प्रभु की स्तुति करते समय तीर्थंकर प्रभु को किन उत्तम शब्दों में पुकार कर उनका गुणाभिनन्दन किया?

उत्तर तीर्थंकर के जन्म के समय हे भगवन्! आप विश्वज्योति स्वरूप हो। आप जगत् गुरु हो। आप त्रिभुवन को मोक्षमार्ग प्रदर्शित करने वाले विधाता हो। हे देव! आप समस्त जगत् के नाथ हो इस तरह उत्तम

शब्दों में सौधर्मेन्द्र ने उन तीर्थंकर प्रभु का गुणाभिनन्दन किया।

प्र. 132 जन्माभिषेक के निमित्त ऐरावत हाथी पर विराजित कर जब तीर्थंकर बालक के लिए मेरु पर्वत पर ले जाया जा रहा था तब इन्द्रगण उन प्रभु की किस तरह सेवा कर रहे थे?

उत्तर जन्माभिषेक के निमित्त मेरु पर्वत पर ले जाते हुए सौधर्मेन्द्र ने ऐरावत हाथी पर उन प्रभु को अपनी गोद में विराजित कर रखा था, ईशानेन्द्र ने धवल छत्र लगा रखा था और सनत्कुमार तथा महेन्द्र ऐसे इन्द्रयुगल देवाधिदेव तीर्थंकर प्रभु पर चँवर ढुरा रहे थे।

प्र. 133 तीर्थंकर प्रभु का जिस मेरु पर जन्माभिषेक होता है उस मेरु की सीढ़ियाँ किस तरह सुशोभित होती हैं?

उत्तर तीर्थंकर के लिए सुमेरु पर्वत पर ले जाते समय सुमेरु पर्वत पर्यंत नील मणि से निर्मित सोपान पंक्तियाँ ऐसी शोभायमान हो रहीं थीं, मानो नील वर्ण में दिखने वाले नभोमण्डल ने भक्तिवश सीढ़ियों रूप नील वर्ण में परिणमन कर लिया हो।(म.पु.)

प्र. 134 सुदर्शन (सुमेरु) पर्वत कहाँ और क्या विशेषता वाला है?

उत्तर मध्यलोक में असंख्यात द्वीप, समुद्रों के अत्यन्त मध्यभाग में रहने वाले जम्बूद्वीप के मध्य भाग में पद्म कर्णिका अथवा नाभि के सदृश एक लाख चालीस योजन की ऊँचाई को लिए हुये मेखलालंकृत, अकृत्रिम जिनालयों सहित तथा तीर्थंकरों के जन्माभिषेक की पीठिका के रूप में प्रसिद्ध सुदर्शन मेरु या सुमेरु पर्वत है।

प्र. 135 ढाईद्वीप सम्बन्धी मनुष्यलोक में कितने मेरु पर्वत हैं?

उत्तर ढाई द्वीप सम्बन्धी मनुष्यलोक में पाँच मेरु पर्वत हैं।

प्र. 136 वे मेरु पर्वत कौन-कौन से द्वीप में कितने-कितने हैं?

उत्तर जम्बूद्वीप में सुदर्शन नामक एक मेरु पर्वत है। धातकीखण्ड नामक द्वीप में विजय और अचल नामक दो मेरु पर्वत हैं तथा पुष्करार्ध नामक द्वीप में मंदर और विद्युन्माली नामक दो मेरु पर्वत हैं।

प्र. 137 मेरु पर्वतों पर कितने और कौन-कौन से वन होते हैं?

उत्तर मेरु पर्वतों पर चार-चार वन; भद्रशाल वन, नन्दन वन, सौमनस वन, और पाण्डुक वन नामक ऐसे शुभ नाम वाले होते हैं।

प्र. 138 सुदर्शन नामक प्रथम मेरु पर्वत पर चारों वन कहाँ, कितनी ऊँचाई पर शोभित होते हैं?

उत्तर सुदर्शन मेरु में सबसे नीचे भद्रशाल वन है, उससे पाँच सौ योजन ऊँचाई पर नन्दन वन है, उससे साढ़े बासठ हजार योजन ऊँचाई पर सौमनस वन है और उससे भी छत्तीस हजार योजन ऊँचाई पर अन्तिम पाण्डुक वन शोभित होता है।

प्र. 139 सुदर्शन आदिक चारों मेरुओं सम्बन्धी चार-चार वनों पर कितने-कितने अकृत्रिम चैत्यालय (जिनालय) स्थित हैं?

उत्तर सुदर्शन आदिक चारों मेरुओं सम्बन्धी चार-चार वनों की चार-चार दिशाओं में एक-एक अकृत्रिम

चैत्यालय स्थित हैं। इस तरह एक-एक वन में चार-चार तो एक मेरु सम्बन्धी सोलह चैत्यालय कहे जाते हैं।

प्र. 140 पाँचों मेरुओं सम्बन्धी वनों के सम्पूर्ण चैत्यालयों की कुल संख्या कितनी रहती है?

उत्तर पाँचों मेरुओं सम्बन्धी वनों के सम्पूर्ण चैत्यालयों की कुल संख्या मात्र अस्सी रहती है।

प्र. 141 पंच मेरु सम्बन्धी अस्सी अकृत्रिम चैत्यालयों के एक-एक चैत्यालय में कितनी-कितनी संख्या में अकृत्रिम जिन प्रतिमाएँ विराजित रहती हैं?

उत्तर पंच मेरु सम्बन्धी अस्सी अकृत्रिम चैत्यालयों के प्रत्येक चैत्यालय में एक सौ आठ-एक सौ आठ अकृत्रिम जिन प्रतिमाएँ विराजित रहती हैं।

प्र. 142 अकृत्रिम चैत्यालयों में विराजित जिन प्रतिमाओं का आकार, रूप, रंग आदिक किस तरह का रहता है?

उत्तर अकृत्रिम चैत्यालयों में विराजित जिन प्रतिमायें तीर्थंकर सदृश आकार रूप और विभिन्न वर्णों के नाना रत्नों वाली तथा कहीं-कहीं पाँच सौ धनुष ऊँचाई वाली रहती हैं।

प्र. 143 अकृत्रिम जिनालयों की प्रतिमायें कब से व किन से प्रतिष्ठित रहती हैं?

उत्तर अकृत्रिम जिनालयों की प्रतिमायें अनादिकाल से स्वप्रतिष्ठित रहती हैं।

प्र. 144 अकृत्रिम प्रतिमायें किस हेतु से किन परमेष्ठी की रहती हैं?

उत्तर अरिहंत प्रतिमा की पहचान रूप सिंहासन, अशोकवृक्ष, छत्रत्रय, प्रभामण्डल (भामण्डल), दिव्यध्वनि, सुर पुष्पवृष्टि, चँवर और देवदुन्दुभि ये अष्ट प्रातिहार्य जिन प्रतिमाओं के समक्ष दर्शित नहीं होते इस हेतु से वे अकृत्रिम प्रतिमायें सिद्ध प्रतिमायें कही जाती हैं।

प्र. 145 सर्व (भवनवासी देव भवनों के इन देवों से पूजित) अकृत्रिम जिनालयों की आकृतियाँ-छवि कैसी रहा करती है?

उत्तर ऐसे सर्व अकृत्रिम जिनालयों में चार-चार गोपुर द्वारों से युक्त तीन कोट, प्रत्येक (चारों) वीथी (मार्ग) में एक-एक मानस्तम्भ व नौ स्तूप तथा कोटों के अन्तराल में क्रम से वनभूमि, ध्वजभूमि और चैत्यभूमि रहती है, वन भूमि में चैत्यवृक्ष है। ध्वज भूमि में हाथी आदि चिन्हों से युक्त महाध्वजाएँ हैं और एक महाध्वजा के आश्रित एक सौ आठ लघुध्वजाएँ हैं। ऐसे अकृत्रिम जिनालयों के जिनेन्द्र भवनों में सिंहासनादि से युक्त और चँवर लिए हुए यक्ष युगल से सेवित एवं नाना तरह के रत्नों से युक्त जिनेन्द्र देव की प्रतिमाएँ विराजमान हैं, ऐसी उन अकृत्रिम जिनालयों की छवि रहा करती है।

प्र. 146 सुमेरु पर्वत कितनी ऊँचाई तक किस वर्ण का रहता है?

उत्तर सुमेरु पर्वत नीचे इकसठ योजन पर्यंत नाना रत्नयुक्त है। उसके ऊपर यह सुवर्ण वर्ण संयुक्त है। (त्रि.सा.)

प्र. 147 मेरु पर्वत से भव्यों को क्या लाभ होता है?

उत्तर मेरु सम्बन्धी जिनालयों की देव, विद्याधर तथा चारण ऋद्धिधारी मुनीश्वर वंदना करके आत्म निर्मलता

प्राप्त करते हैं।

प्र. 148 सुमेरु (सुदर्शन मेरु) पर्वत का कहाँ, कितनी ऊँचाई पर कितना विस्तार है?

उत्तर यह सुमेरु पर्वत इस चित्रा भूमि के अन्दर नीचे की ओर एक हजार योजन नीव या जड़ रूप में फैला हुआ है जहाँ इसका मूलरूप विस्तार दस हजार नब्बे योजन है। इस चित्रा भूमि पर अर्थात् जड़ से एक हजार योजन ऊँचाई पर इस सुमेरु पर्वत का विस्तार दस हजार योजन है और इसी जगह भद्रसाल नामक वन दो सौ पचास योजन तक चारों दिशाओं की ओर फैला हुआ है। भद्रसाल वन से पाँच सौ योजन ऊँचाई पर पाँच सौ योजन विस्तार वाला नन्दन नामक वन है। नन्दन वन से ग्यारह हजार योजन तक पर्वत की ऊँचाई खड़ी रूप होते हुए आगे साढ़े इक्यावन हजार योजन ऊँचाई ढाल रूप में है। अनन्तर अर्थात् नन्दन वन से साढ़े बासठ हजार योजन ऊँचाई पर सौमनस नामक वन पाँच सौ योजन विस्तार को लेकर फैला हुआ है। सौमनस वन से ग्यारह हजार योजन तक पर्वत की ऊँचाई खड़ी रूप में होते हुए आगे ढाई हजार योजन ढाल रूप में ऊँचाई है। अनन्तर अर्थात् सौमनस वन से छत्तीस हजार योजन ऊँचाई पर चार सौ चौरानवे योजन विस्तार वाला अन्तिम पाण्डुक वन है। यह पाण्डुक वन मेरु स्थल मेरु का अग्र भाग होते हुए एक हजार योजन चौड़ाई वाला है। पाण्डुक वन के बीचों -बीच चालीस योजन ऊँचाई, मूल में बारह हजार योजन चौड़ाई, मध्य में आठ योजन तथा अग्रभाग में चार योजन चौड़ाई वाली सुमेरु पर्वत की चूलिका है।

प्र. 149 सुमेरु पर्वत की चूलिका कौन-से मणि-रत्न से सुशोभित है?

उत्तर सुमेरु पर्वत की चूलिका वैडूर्यमणि रत्न से सुशोभित है।

प्र. 150 सुमेरु पर्वत पर किस वन में किस निमित्त, कहाँ, कितनी भव्य शिलाएँ स्थित हैं?

उत्तर सुमेरु पर्वत के पाण्डुक नामक वन में तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के निमित्त चारों विदिशाओं में चार भव्य शिलायें स्थित हैं।

प्र. 151 तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के निमित्त रूप वे भव्य शिलाएँ कितनी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई को लिए हुए किस आकार वाली हैं?

उत्तर तीर्थंकरों के जन्माभिषेक वाली वे भव्य शिलाएँ सौ योजन लम्बी पचास योजन चौड़ी और आठ योजन ऊँची होते हुए अर्द्धचन्द्रमा के समान आकार वाली हैं।

प्र. 152 प्रथम शिला किस दिशा में, कौन-से वर्ण वाली और कौन-से शुभ नाम वाली होते हुए कौन-से तीर्थंकरों के निमित्त होती है?

उत्तर प्रथम शिला मेरुपर्वत के पाण्डुक वन सम्बन्धी ईशान दिशा में सुवर्ण वर्ण वाली पाण्डुक नामक शिला है जो भरत क्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के निमित्त होती है।

प्र. 153 द्वितीय शिला किस दिशा में कौन-से वर्ण वाली और कौन-से शुभ नाम वाली होते हुए कौन-से तीर्थंकरों के निमित्त होती है?

उत्तर द्वितीय शिला आग्नेय दिशा में रजतवर्ण वाली पाण्डुकम्बला नामक शिला है जो पश्चिम विदेह

क्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के निमित्त होती है।

प्र. 154 तृतीय शिला किस दिशा में कौन-से वर्ण वाली और कौन-से शुभ नाम वाली होते हुए कौन-से तीर्थंकरों के निमित्त होती है?

उत्तर तृतीय शिला नैऋत्य दिशा में तप्त सुवर्ण वर्ण वाली रक्त नामक शिला है जो ऐरावत क्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के निमित्त होती है।

प्र. 155 चतुर्थ शिला किस दिशा में कौन-से वर्ण वाली और कौन-से शुभ नाम वाली होते हुए कौन-से तीर्थंकरों के निमित्त होती है।

उत्तर चतुर्थ शिला वायव्य दिशा में रक्तवर्ण वाली रक्तकम्बला नामक शिला है जो पूर्व विदेह क्षेत्रोत्पन्न तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के निमित्त होती है।

प्र. 156 पाण्डुक शिला पर कौन-से और किस तरह के आसन हैं तथा उन आसनों पर कौन विराजमान और कौन अवस्थित होते हैं?

उत्तर पाण्डुक शिला पर सूर्य के समान प्रकाशमान उन्नत सिंहासन है। सिंहासन के दोनों पार्श्वभाग में दिव्य रत्नों से खचित भद्रासन विद्यमान हैं। तीर्थंकर भगवान को मध्य सिंहासन पर विराजमान करते हैं तथा सौधर्मेन्द्र दक्षिण भद्रासन और ईशानेन्द्र उत्तर भद्रासन पर अवस्थित होते हैं।

प्र. 157 पाण्डुक शिला पर तीर्थंकर का अभिषेक कौन करते हैं?

उत्तर पाण्डुक शिला पर तीर्थंकर का जन्माभिषेक सौधर्मेन्द और ईशानेन्द्र करते हैं।

प्र. 158 तीर्थंकर के जन्माभिषेक के काल में शची व अप्सरायें (देवियाँ) क्या कार्य करती हैं?

उत्तर तीर्थंकर के जन्माभिषेक के काल में शची व अप्सरायें अष्ट मंगल द्रव्यों को धारण कर मंगल नृत्य-गान में निमग्न रहती हैं।

प्र. 159 जन्माभिषेक के सुअवसर पर इन्द्रद्वय से अतिरिक्त देव-गण किस कार्य में तत्पर रहते हैं?

उत्तर जन्माभिषेक के सुअवसर पर बहुत से देव-गण क्षीरसागर का जल लाने के लिए कमर बाँधकर सुवर्णमय कलशों को लेकर श्रेणीबद्ध होकर खड़े रहते हैं।

प्र. 160 क्षीरोदधि समुद्र का जल ही तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के योग्य क्यों माना गया है?

उत्तर क्योंकि क्षीरोदधि का जल जघन्य भोगभूमि वाले समुद्र का जल होने से वह विकलेन्द्रिय और जलचर जीवों से रहित होता है। उसे छानने (गालने) की आवश्यकता नहीं पड़ती तथाहि पंचम समुद्र के जल से किया गया जन्माभिषेक देवों की पञ्चमगति (मोक्ष) प्राप्ति की भावना को सुदृढ़ बनाने में साक्षात् निमित्त कारण है।

प्र. 161 क्षीरोदधि समुद्र का जल क्या क्षीर (दुग्ध) वत् या धवल होता है या अन्य तरह का होता है?

उत्तर पंचम समुद्र के साथ 'क्षीर' शब्द केवल नाम निक्षेप रूप प्रसिद्ध है, न कि ऐसे समुद्र में किसी तरह का दुग्ध भरा हुआ है और क्षीरोदधि समुद्र का जल दुग्ध जैसे स्वाद वाला मधुर है, न कि उस समुद्र का जल दुग्ध जैसा धवल (सफेद) है।

प्र. 162 क्षीरोदधि समुद्र से जन्माभिषेक हेतु लाया गया जल तो अप्रासुक-सचित्त होता है ऐसे जल से साक्षात् तीर्थंकर भगवान का अभिषेक करना कैसे उचित होगा?

उत्तर दीक्षा लेकर महाव्रती या परमेष्ठी बन जाने से उन्हें या उन परमेष्ठी की प्रतिमा के निमित्त सचित्त-अप्रासुक जलादि वस्तु का प्रयोग अहिंसा की दृष्टि से अनुचित होता है, लेकिन तीर्थंकर; बालक अवस्था में व्रती नहीं होते अत: जन्माभिषेक के समय क्षीरोदधि समुद्र के जल से अभिषेक करना अनुचित नहीं है।

प्र. 163 तीर्थंकर प्रभु का जन्माभिषेक कितने कलशों से सम्पन्न होता है?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु का जन्माभिषेक एक हजार आठ कलशों से सम्पन्न होता है।

प्र. 164 बड़े-बड़े घट रूपी कलशों से होने वाली जन्माभिषेक की धाराओं को तीर्थंकर प्रभु उस बाल्यावस्था में किस तरह सहन करते हैं?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु जन्मकाल से ही अनन्त बल के स्वामी होते हैं अत: उन्हें जन्माभिषेक की धाराओं को सहन करना कोई संदेह की बात नहीं। जन्माभिषेक के समय सौधर्मेन्द्र ने वर्द्धमान स्वामी की सहन शीलता पर जब सन्देह व्यक्त किया था तब तीर्थंकर वर्द्धमान प्रभु ने अवधिज्ञान से जानकर अपने पैर का अंगूठा दबा कर सुमेरु पर्वत को कंपित कर दिया था तभी तो इन्द्र ने उनका सार्थक नाम 'वीर' रखा था।

प्र. 165 तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के समय देव गणों द्वारा कैसा मनोरम वातावरण निर्मित किया जाता है?

उत्तर तीर्थंकरों के जन्माभिषेक के समय; अत्यन्त प्रशान्त, भव्य तथा प्रमोद परिपूर्ण वातावरण में स्वर्गिक देववृन्द देव दुन्दुभि बजाकर मधुर स्वरों द्वारा सभी को मंत्र मुग्ध कर लेते हैं और देव-देवियाँ नृत्यगान करते हुए फूले नहीं समाते। रत्नमय पुष्पवृष्टि और दिशाओं की निर्मलता के साथ मन्द-मन्द सुगन्धित वायुमय वातावरण अत्यन्त मनोरम प्रतीत होता है।

प्र. 166 तीर्थंकरों के जन्माभिषेक सानंद सम्पन्न होने के उपरान्त उन तीर्थंकर प्रभु के लिए कौन वस्त्राभूषणों से अलंकृत करने का परम सौभाग्य प्राप्त करता है?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु के जन्माभिषेक जन्मकल्याणक के रूप में सौधर्मेन्द्रादिक देव गणों के द्वारा सानन्द सम्पन्न होने के उपरान्त शची इन्द्राणी तीर्थंकर बालक को दिव्य वस्त्राभूषणों से समलंकृत करने का परम सौभाग्य प्राप्त करती है।

प्र. 167 त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर प्रभु के अलंकार के योग्य सर्वश्रेष्ठ रत्नाभूषण तीन लोक में कहाँ से उपलब्ध होते होंगे?

उत्तर भरत और ऐरावत क्षेत्रों के तीर्थंकरों के सुयोग्य रत्नमयी आभूषण सौधर्म तथा ऐशान स्वर्ग सम्बन्धी; पूर्व और अपर विदेह क्षेत्र के तीर्थंकरों के सुयोग्य रत्नमयी आभूषण सानत्कुमार तथा माहेन्द्र स्वर्ग सम्बन्धी द्वादश धारायुक्त मानस्तम्भों के रत्नमयी सींकों में लटकते हुए उत्तम रत्नमय करण्डकों (पिटारों) में विद्यमान रहते हैं, देवेन्द्रगण बड़ी भक्तिसह उन पिटारों से रत्नाभूषण प्रभु-चरणों में लाते हैं।

प्र. 168 तीर्थंकरों के साथ-साथ और कौन-कौन-से विशिष्ट जीव हैं, जिनके जीवन में आहार तो होता है परन्तु नीहार नहीं होता?

उत्तर छद्मस्थ तीर्थंकर, तीर्थंकरों के माता-पिता, बलदेव, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण तथा समस्त भोगभूमियों के जीवों के जीवन में आहार तो होता है लेकिन नीहार नहीं होता। विशेष यह है कि तीर्थंकरों के पिता, बलदेव, चक्रवर्ती व किसी पुरुष का भी केवली बनने पर आहार नहीं होता।

प्र. 169 छद्मस्थ तीर्थंकरादिक का आहार होते हुए भी नीहार क्यों नहीं होता?

उत्तर तीर्थंकर आदिक विशिष्ट आत्माओं की जठराग्नि इस प्रकार की होती है, कि उसमें पड़ने वाली वस्तु रस, रुधिर आदि रूप परिणत हो जाती है, ऐसा कोई तत्त्व नहीं बचता, जो व्यर्थ चला जाय और नीहार की आवश्यकता पड़े।

प्र. 170 तीर्थंकरों के शरीर में धवल रुधिर होने का रहस्य क्या है?

उत्तर तीर्थंकर भगवान के रोम-रोम में समूचे विश्व के प्राणियों के प्रति सच्ची करुणा, दया तथा प्रेम के बीज परिपूर्ण हैं। तीर्थंकर प्रकृति बंध करते समय उनके द्वारा निर्मल सम्यग्दर्शन के साथ लोक कल्याण की भावना भी भाई गयी थी।अन्य शब्दों में कहा जाय तो भगवान ने विश्व मैत्री के वृक्ष का बीज बोया था, जो उनके धवल रुधिर के रूप में वृद्धि को प्राप्त हुआ है। शरीर सम्बन्धी विद्या में प्रवीण लोगों का मन्तव्य है, कि महान बुद्धिमान, सदाचारी, कुलीनतादि गुण सम्पन्न व्यक्तियों के रुधिर में रक्तवर्णीय परमाणु पुञ्ज के स्थान में धवलवर्णीय परमाणु पुञ्ज विशेष पाये जाते हैं। इसमें एक कारण स्वरूप तीर्थंकरों का परमौदारिक शरीर भी कहा जाता है। अन्य सरागियों के शरीर में ऐसे दुर्लभ शरीर की कल्पना व्यर्थ है।

प्र. 171 तीर्थंकर भगवान के जीवन में कब से देश संयम का आचरण प्रारम्भ हो जाता है?

उत्तर सर्व तीर्थंकर भगवन्तों की अपनी आयु के आरम्भ से आठ वर्ष के उपरान्त देशसंयम का आचरण प्रारम्भ हो जाता है। (आ.पु.6-35)

प्र. 172 तीर्थंकरों का आकर्षक और विशिष्ट शरीर किस तरह का होता है?

उत्तर तीर्थंकरों का आकर्षक और विशिष्ट शरीर अन्त: बाह्य में अपूर्व सौन्दर्य का केन्द्र होता है। सामुद्रिक शास्त्र की दृष्टि से भी तीर्थंकर भगवान का पौद्गलिक शरीर सुलक्षणों से समलंकृत होने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है।

प्र. 173 तीर्थंकर भगवान के शरीर में किस तरह के कितने सुलक्षण विद्यमान होते हैं?

उत्तर तीर्थंकर भगवान के शरीर में वृक्ष, शंख, कमल, स्वस्तिक, ध्वज, चक्र, हस्ती, सिंह, मेरु, ग्रह, नक्षत्र, कल्पवृक्ष, समुद्र, सरोवर, देवविमान, अष्ट मंगल, अष्ट-प्रतिहार्य आदि एक सौ आठ मुख्य सुलक्षण और मसूरिकादि नौ सौ व्यंजन रूप सामान्य सुलक्षण इस तरह सब मिलाकर एक हजार आठ सुलक्षण विद्यमान रहते हैं। (महा.पु.पर्व 15, श्लोक 37 से 44)

प्र. 174 तीर्थंकरों के लिए वैराग्य-भाव प्रकट होने में कौन-से निमित्त-कारण होते हैं?

उत्तर जातिस्मरण (पूर्वभव-स्मृति), प्राणि पीड़ा, विद्युत प्रकाश (बिजली चमकना), मेघपटल नाश (मेघाकार नाश), उल्कापात (तारा जैसा टूटना), वन लक्ष्मीनाश (जंगल सूखना), सौन्दर्य नाश और अकस्मात् मृत्यु आदि सन्दर्भ संसार की क्षणभंगुरता, स्वार्थपरता एवं नश्वरता का स्वयं बोध कराते हुए तीर्थंकरों के लिए वैराग्य-भाव के प्रकट होने में निमित्त-कारण बनते हैं।

प्र. 175 तीर्थंकरों के लिए स्वयंभू क्यों कहा जाता है?

उत्तर सभी तीर्थंकर किसी एक निमित्त के द्वारा संसार की असारता का चिंतन स्वयं अपनी आत्मा के द्वारा किया करते हैं, न कि किसी अन्य मुनि आदिक का उपदेश सुनकर वे बोध को प्राप्त करते हैं, अर्थात् जो 'स्वयं'-अपने द्वारा ही 'भू'-बोध को या वैराग्य को प्राप्त हो जावे उसे स्वयंभू कहा जाता है। जिसे स्वयंबुद्ध भी कहते हैं।

प्र. 176 प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ भगवान ने किस तरह से वैराग्य को प्राप्त किया था?

उत्तर प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव (आदिनाथ प्रभु) एक स्वर्गिक अप्सरा नीलाञ्जना नामक नृत्यकारिणी की अकस्मात् मृत्यु से जग की क्षणभंगुरता का चिंतवन कर वैराग्य को प्राप्त हो गये। वे संसार की मोह-निद्रा से भली प्रकार जाग गये। उन्हें कर्म चोर अब नहीं लूट सके। अयोध्या की जनता को प्रजापति होने के नाते आप आत्मीय-भाव से देखते थे, अब उनकी दृष्टि बदल गई। एक चैतन्य निजात्मा सिवाय अन्य सर्वपदार्थ पर रूप प्रतिभासमान होने लगे। जिनके अंदर अपने और पराये पदार्थों के ज्ञानरूप भेद-विज्ञान का मानो भानु उदित हो गया और क्षायिक सम्यक्त्व रूपी चिन्तामणि रत्न का मानो प्रकाश ही दैदीप्यमान हो गया।

प्र. 177 तीर्थंकर प्रभु के वैराग्य-भाव को लौकान्तिक देवों ने किस तरह जानकर क्या मंगलमय प्रतिक्रिया की?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु के वैराग्य-भाव को अपने अवधिज्ञान से जानकर धवल वस्त्रधारी देवर्षि कहलाने वाले लौकान्तिक देवों ने अपने ही स्थान से वैराग्य सम्पन्न तीर्थंकर प्रभु के लिए बड़ी श्रद्धा पूर्वक प्रणाम किया। वे देवर्षि वैराग्य के प्रेमी; कोकिल सदृश थे, जिन्हें अपना मधुर गीत प्रस्तुत करने हेतु वैराग्य पूर्ण बसंतऋतु चाहिए थी, जिससे सर्व कष्टों का सदा के लिए हरण हो जाता है। सुयोग्य बेला में वे देवर्षि तीर्थंकर प्रभु के निकट आ ही गये।

प्रभु को भक्ति से प्रणाम कर संस्तुति में संलग्न हो कहने लगे, भगवन्! आपने जो मोह जाल से छूटने का पवित्र निश्चय किया है वह आप जैसी उत्तम आत्मा की प्रतिष्ठा के पूर्णतया अनुरूप है। अब तो धर्मतीर्थ प्रवर्तन के योग्य समय आ गया है, धन्य-धन्य।

हे नाथ! चारों गति रूप महाअटवी में दिशाओं का परिज्ञान न होने से भटकते हुए संसारी जीवों को मुक्तिपुरी में पहुँचने का समीचीन मार्ग बतलाइये। प्रभो! अब आपके द्वारा बतलाये गये मार्ग पर चलकर सत्पुरुष जन्म-मरण के श्रम से शून्य होकर त्रिलोक के शिखर पर जहाँ अविनाशी आनन्द है, पहुँचकर विश्रान्ति लेंगे।

प्र. 178 वैराग्य से सम्पन्न तीर्थंकर प्रभु ने सर्वप्रथम क्या दृढ़ निश्चय किया?

उत्तर परम वैराग्य से सम्पन्न तीर्थंकर प्रभु भेदविज्ञान भास्कर के उदित प्रकाश में इस शरीर से भिन्न चैतन्य ज्योति देखकर उसे विशुद्ध बनाने के पवित्र विचारों में निमग्न हुए और आत्म प्रकाश से सुशोभित प्रभु ने अपनी मंगलवाणी से सर्व जनों को संतुष्ट कर स्वत: अन्त: -बाह्य नग्न मुद्रा धारण करने का दृढ़ निश्चय किया।

प्र. 179 देव-लोक से देवगण क्यों, कौन-सी दीक्षा-पालकी लाकर उपस्थित हुए?

उत्तर ऋषभदेव तीर्थंकर की दीक्षा हेतु उन्हें वन तक गमन कराने के लिए देवगण 'सुदर्शना' नामक सुरत्न-जड़ित पालकी लाकर उपस्थित हुए।

प्र. 180 तीर्थंकर प्रभु विराजित पालकी के लिए सर्वप्रथम अपने कंधों पर उठाने का परम सौभाग्य किन्होंने प्राप्त किया?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु विराजित पालकी के लिए सर्वप्रथम अपने कंधों पर उठाने का परम सौभाग्य भूमिगोचरी मनुष्यों के राजाओं ने प्राप्त किया।

प्र. 181 तीर्थंकर प्रभु की दीक्षा-पालकी उठाने का द्वितीय सौभाग्य किसने पाया?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु की दीक्षा-पालकी उठाने का द्वितीय सौभाग्य विद्याधर मनुष्यों ने पाया।

प्र. 182 भूमिगोचरी राजाओं और विद्याधर मनुष्यों ने कितने-कितने कदमों तक दीक्षा-पालकी को उठाने का सौभाग्य पाया?

उत्तर भूमिगोचरी मनुष्य-राजाओं और विद्याधर मनुष्यों ने दीक्षा-पालकी को सात-सात कदम उठाने का सौभाग्य प्राप्त किया।

प्र. 183 तीर्थंकर प्रभु की दीक्षा-पालकी को अंतिम तृतीय सौभाग्य के रूप में उठाकर किसने किस तरह उसे वन तक पहुँचाया था?

उत्तर देवगति के देवताओं ने तीर्थंकर प्रभु की दीक्षा-पालकी को अंतिम तृतीय सौभाग्य के रूप में उठाकर अपने कंधों पर रखकर आकाश-मार्ग द्वारा शीघ्र ही दीक्षा वन तक पहुँचाया था।

प्र. 184 प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की दीक्षा के वन का नाम क्या था?

उत्तर प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव की दीक्षा के वन नाम 'सिद्धार्थ वन' था।

प्र. 185 दीक्षा-पालकी तो स्वर्गिक देवता-गण लाये थे लेकिन दीक्षा-पालकी के लिए प्रथम रूप से उठाने का सौभाग्य मनुष्यों को क्यों मिला?

उत्तर मनुष्यों को प्रथम रूप से दीक्षा-पालकी उठाने के सौभाग्य का कारण उनके लिए प्राप्त संयमधारण की योग्यता है।

प्र. 186 देवगति के देव विशेष वैभव सम्पन्न होते हैं, वे स्वर्गों में भी रहते हैं, तथा पंच कल्याणकों में तीर्थंकरों व उनके परिवार की सेवा करने उपस्थित होते हैं फिर भी उन्हें मनुष्यों द्वारा उपासना करने योग्य क्यों नहीं बतलाया गया, अन्यथा उन्हें ही सर्वप्रथम तीर्थंकरों की दीक्षापालकी

उठाकर वन तक ले जाने का परम सौभाग्य प्राप्त होता?

उत्तर सर्व प्रथम वे देवगति के देव असंयमी होने के कारण अष्टपाहुड़ ग्रंथ के आगमिक कथन से मनुष्यों द्वारा वंदनीय नहीं हैं। रत्नकरण्डक श्रावकाचार के कथन से देव गति के देव राग-द्वेष से मलिन होने के कारण उनकी उपासना (पूजा, अभिषेक, वंदनादि क्रिया) करना देवमूढ़ता मानी गयी है।

प्र. 187 मनुष्यों के जीवन में ऐसी कौन-सी विशेषताएँ होती हैं जिस कारण वे देवगति के देवों से भी उत्तम माने जाते हैं तथा देवगणों से भी आदर पाते हैं?

उत्तर उपर्युक्त प्रश्न का समाधान जैनागम-संस्कार प्रश्नोत्तर रत्नमालिका कृति के अध्याय नौ प्रश्न क्र. चौतीस में हम बतला ही चुके हैं, पुन: संक्षिप्त में कहें तो- 1. मनुष्य अहिंसादि अणुव्रतों को धारण कर सकते हैं। 2. मनुष्य साक्षात् शरीर से जिनाभिषेक, पूजा, दानादिक क्रियायें सम्पन्न करते हैं। 3. मनुष्य मुनियों के महाव्रतों को भी धारण कर सकते हैं। 4. मनुष्य चतुर्थ काल हो तो तीर्थंकर भी बन सकते हैं और 5. मनुष्य चतुर्थकाल में (अर्थात् दुषमा-सुषमा काल में) मोक्ष भी प्राप्त कर सकते हैं इत्यादिक इन कारणों से मनुष्य देवगति के देवों से उत्तम तथा आदरणीय माने जाते हैं।

प्र. 188 तीर्थंकर प्रभु ऋषभ देव का दीक्षा-धारण करने के पीछे क्या सार्थक-प्रयोजन था?

उत्तर जिस तरह मलिन दर्पण जब तक मल रहित नहीं बनता, तब तक वह पदार्थों का प्रतिबिम्ब ग्रहण करने में असमर्थ रहता है, इसी तरह मोह-मलिन मानव का मन त्रिभुवन के पदार्थों को अपने अन्तस् में प्रतिबिम्बित करने में अक्षम रहता है। तीर्थंकर प्रभु ने यह तत्त्व हृदयंगम किया, कि आत्मा की कालिमा को धोकर उसे निर्मल बनाने के लिए समाधि अर्थात् आत्मलीनता रूप सम्यक्ध्यान की आवश्यकता है। अत: एक चित्त वृत्ति द्वारा स्थिर होकर मोहादि कर्म शत्रुओं को ध्वंस करने के लिए प्रभु वैराग्यपूर्ण मन से दीक्षा धारण के उन्मुख हुये।

प्र. 189 जिस शिला पर ऋषभदेव दीक्षा हेतु विराजित हुए वह शिला कौन-सी थी?

उत्तर ऋषभदेव तीर्थंकर भगवान की दीक्षा-शिला चन्द्रकान्तमणि शिला थी।

प्र. 190 तीर्थंकर प्रभु की दीक्षा की मंगलबेला में शची आदिक इन्द्राणियों ने कौन-सी मांगलिक क्रिया सम्पन्न की थी?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु की दीक्षा की मंगलबेला में शची इन्द्राणी ने अपने हाथों से रत्नों को चूर्णकर उस दीक्षा-शिला पर चौक बनाया था, उस पर चन्दन के मांगलिक छींटे दिये थे और उस शिला के समीप ही अनेक (कलशादि) मंगल द्रव्य रखे थे तत्पश्चात् प्रभु उस शिला पर विराजमान हुए थे।

प्र. 191 तीर्थंकर प्रभु की दीक्षा किनकी साक्षी में किस तरह सम्पन्न हुई थी?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु ने स्वात्मा, देवतागण और सिद्ध-भगवान की साक्षी में सांसारिक सुख की अपेक्षा रहित होकर वस्त्राभूषणादि समस्त परिग्रह का त्याग कर पञ्चमुष्ठि केशलोंच कर नग्न-दिगम्बरी मुनि दीक्षा धारण की थी।

प्र. 192 दीक्षाबेला में तीर्थंकर प्रभु ने किस दिशा में और किस आसन में बैठकर दीक्षा-धारण सम्बंधी

केशलोंच की विधि सम्पन्न की थी?

उत्तर दीक्षाबेला में तीर्थंकर प्रभु ने पूर्व दिशा की ओर मुख करके पद्मासन में बैठकर दीक्षा-धारण सम्बन्धी केशलोंच की विधि सम्पन्न की थी।

प्र. 193 पंच मुष्टि केशलोंच करते समय तीर्थंकर प्रभु किस तरह प्रतीत होते थे?

उत्तर पंच मुष्टि केशलोंच करते समय तीर्थंकर प्रभु इस तरह प्रतीत होते थे मानो वे पञ्चमगति को प्रस्थान करने को उद्यत परम पुरुष द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव रूप पञ्च परावर्तन रूप संसार का मूलोच्छेद कर रहे हों।

प्र. 194 तीर्थंकर ऋषभ देव की दीक्षा किस वृक्ष के नीचे सम्पन्न हुई और वह दीक्षा वृक्ष किस नाम से प्रसिद्ध हुआ था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव की निर्ग्रन्थ दीक्षा वटवृक्ष के नीचे सम्पन्न हुई थी और वह दीक्षा वृक्ष अक्षय वट वृक्ष के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त हो गया था।

प्र. 195 सौधर्मेन्द्र; सम्पन्न हुए तीर्थंकरों के केशलोंच के केशों को किस पवित्र जगह पर विसर्जित करता है?

उत्तर सम्पन्न हुए तीर्थंकरों के केशलोंच के केशों को रत्न-पिटारे में रखकर सौधर्मेन्द्र देवगणों के साथ जाकर क्षीरसमुद्र में विसर्जित-क्षेपण करता है।

प्र. 196 आगम में वर्णित है कि मानुषोत्तर पर्वत से आगे मनुष्य एवं मनुष्य के शरीर का एक छोटा-सा भाग भी नहीं जा सकता, फिर तीर्थंकरों के केशों को क्षीरसागर में इन्द्रों द्वारा कैसे ले जाया जा सकता है?

उत्तर यह आगम कथन सत्य ही है। तीर्थंकरों के केश मानुषोत्तर पर्वत पर ही गिर जाया करते हैं लेकिन भक्तिवश देव विक्रिया से बनावटी केश बनाकर उन्हें क्षीरसागर में क्षेपण किया करते हैं।

प्र. 197 दिगम्बरी मुनि दीक्षा लेते ही तीर्थंकर कब तक के लिए क्यों मौन धारण कर लेते हैं; इसके रहस्य को बतलाइये?

उत्तर तीर्थंकर प्रभु का मौन अलौकिक होता है, वे छद्मस्थ अर्थात् केवलज्ञान अवस्था के पूर्व तक मौन रहते हैं। उनकी दृष्टि बहिर्जगत् से अन्तर्जगत् की ओर पहुँच जाती है अत: राग उत्पत्ति की असाधारण परिस्थिति भी उनकी वीतराग वृत्ति के लिए निष्कलंक बनाये रखती है।

प्र. 198 तीर्थंकरों द्वारा छद्मस्थ-श्रामण्य अवस्था में मौन-धारण नहीं करने से क्या बाधा उत्पन्न हो सकती है?

उत्तर तीर्थंकरों द्वारा छद्मस्थ-श्रामण्य अवस्था में मौन नहीं धारण करने से लोक-जनसम्पर्क होने पर वचन प्रवृत्ति होगी, उससे मानसिक विकल्प उत्पन्न होंगे और क्षायोपशमिक ज्ञान होने के कारण कदाचित् अन्यथा वचन प्रवृत्ति होने पर वर्द्धमान चारित्र छूटकर छेदोपस्थापना चारित्र-धारण का प्रसंग प्राप्त हो जावेगा।

प्र. 199 छेदोपस्थापना और वर्द्धमान-चारित्र किसे कहते हैं?

उत्तर मुनियों के जिस चारित्र में शिथिलतावश कोई दोष उत्पन्न हों और उन दोषों के निराकरण हेतु प्रतिक्रमणादि कर चारित्र को शुद्ध बनाया जावे तो उसे छेदोपस्थापना चारित्र कहते हैं तथा जिस चारित्र में उत्कृष्ट संहनन, ध्यान कान्तार (जंगल) चर्या, योग व मौनादिक धारण रूप चतुर्थकालीन निर्दोष श्रमणचर्या के साथ जो नियम-साधना उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली जावे उसे वर्द्धमान चारित्र कहते हैं।

प्र. 200 तीर्थंकर मुनि पिच्छिका व कमण्डलु साथ रखते हैं या नहीं? अन्यथा उनकी शोभा कैसे रहेगी?

उत्तर तीर्थंकर मुनि अवस्था से ही चारण आदिक ऋद्धियों के स्वामी होते हैं उनका शरीर भूमि से ऊपर होता है और उन्हें जीवों की उत्पत्ति आदिक का पूर्ण ज्ञान होता है अत: उन्हें पिच्छिका की आवश्यकता नहीं होती। तीर्थंकरों को नीहार भी न होने से तथा धूलादिक का स्पर्शन न होने से उनके जीवन में कमण्डलु की भी आवश्यकता नहीं होती। उनकी तो यथाजात मुद्रा ही मात्र बाल्यावस्थावत् निर्विकार भगवान सदृश सुशोभित और पूज्य होती है।

अध्याय - 3. तीर्थंकर ऋषभदेव का वैराग्यादि

प्र. 201 तीर्थंकर ऋषभदेव राजन् ने दीक्षा पूर्व किन पारिवारिक लोगों से मोह का बंधन तोड़कर नग्न-दिगम्बरी-दीक्षा धारण की थी?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव राजन् ने प्रथम रानी नंदा (यशस्वती) तदोत्पन्न भरत आदिक शत पुत्र एवं ब्राह्मी पुत्री से तथा द्वितीय रानी सुनंदा तदोत्पन्न पुत्र बाहुबली और पुत्री सुन्दरी इन प्रमुख पारिवारिक लोगों से मोह का बंधन तोड़कर दिगम्बरी दीक्षा धारण की थी।

प्र. 202 तीर्थंकर ऋषभदेव की दीक्षा के समय उनका साथ न छोड़ते हुए कितने राजाओं ने दिगम्बरी-दीक्षा धारण की थी?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के साथ उनके राज्य में रहने वाले चार हजार राजाओं ने दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली थी।

प्र. 203 तीर्थंकर ऋषभदेव ने दीक्षा-धारण के समय कितने दिनों तक लिए योग-धारण कर लिया था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव ने दीक्षा-धारण करते ही छह माह तक का योग धारण कर लिया था।

प्र. 204 तीर्थंकर ऋषभदेव छह माह के योग-धारण के समय कौन-से कार्य में लीन हो गये थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव छह माह के योग-धारण के समय छह माह के ही उपवास का नियम ग्रहण कर एक ही पद्मासन में बैठकर प्रतिमायोग-धारण कर निजात्मतत्त्व के गुण चिन्तवन रूप प्रशस्त-शुभध्यान में लवलीन हो गये थे।

प्र. 205 तीर्थंकर ऋषभदेव के साथ दीक्षा-धारण करने वाले चार हजार मुनीश्वरों ने तीर्थंकर के मौनधारण पर किस तरह मुनि-क्रिया का अनुपालन किया?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के साथ दीक्षा-धारण करने वाले चार हजार मुनीश्वर तीर्थंकर के मौन-धारण पर उनके उपदेश के अभाव में मुनिचर्या का ज्ञान न हो सकने से तीर्थंकर के उपदेश की प्रतीक्षा करते हुए मन की शिथिलता के कारण भूख-प्यास की बाधा होने पर पेड़-पौधों के फलादिक एवं झरने का पानी सेवन कर और शीतादिक की बाधाओं में पेड़ों के पत्ते व छालादिक से तन को ढककर मनमानी चेष्टा के द्वारा सच्चे मार्ग से विमुख हो गये थे।

प्र. 206 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर सर्व प्रथम आहार चर्या को कब निकले एवं उन्हें किस तरह आहार का अलाभ हुआ?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर छह माह सम्बधी योग-धारण के उपवास के उपरान्त आहार-चर्या को नगर की ओर निकले लेकिन किसी ने उनकी नवधाभक्ति नहीं की, दातागण मात्र आहार इत्यादिक सम्बन्धी भोगोपभोग की सामग्री ग्रहण करने का आग्रह करते रहे, इस तरह विधिवत् भक्ति के अभाव में अलाभ रूप अंतराय मानकर वे तीर्थंकर मुनीश्वर वन की ओर लौट आये और ध्यान योग में लीन हो गये।

प्र. 207 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के लिए विधिवत्-नवधाभक्ति पूर्वक आहार का लाभ कितने दिनों के उपरान्त कब प्राप्त हुआ?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के लिए विधिवत् नवधाभक्ति पूर्वक आहार एक वर्ष एक माह और नौ दिनों के बाद वैशाख शुक्ला तृतीया के दिन प्राप्त हुआ।

प्र. 208 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के लिए आहारचर्या को जाने में एक वर्ष एक माह और नौ दिनों का समय क्यों लगा था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव ने दीक्षा धारण करते ही सर्वप्रथम छह माह का उपवास-धारण किया तदुपरान्त उन्हें आहार अलाभ रूप अंतराय हुआ एवं उन्होंने प्रतिदिन आहार चर्या को न जाते हुए सात माह और नौ दिनों के लिए पुनः योग-धारण के साथ उपवास ग्रहण का नियम धारण कर लिया था।

प्र. 209 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर प्रथम छह माह के योग धारण व उपवास के उपरान्त प्रतिदिन आहार-चर्या को क्यों नहीं निकले?

उत्तर इसमें महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि सभी तीर्थंकर वर्द्धमान-चारित्र के धारक हुआ करते हैं, वे जो साधना पूर्व में कर चुकते हैं उससे आगे बढ़कर ही साधना या तपस्या किया करते हैं; कम नहीं। अतः तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर ने छह माह के उपवास के उपरान्त एक दिन की चर्या के समय नवधा भक्ति के ज्ञान के अभाव को देखकर अलाभ-अन्तराय मानकर हीयमान चारित्र रूप प्रतिदिन आहार-चर्या को न जाते हुए वर्द्धमान चारित्र के रूप में पुनः सात माह और नौ दिनों का योग धारण कर लिया था। यदि तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर छह माह के उपवास के बाद प्रतिदिन आहार को जाते तो वे वर्द्धमान-चारित्र वाले न कहलाकर हीयमान-चारित्र वाले कहलाते।

प्र. 210 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के लिए प्रथम पारणा के रूप से आहार-दान किस श्रावक द्वारा अपने राजमहल में दिया गया था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के लिए प्रथम पारणा के रूप से आहार-दान राजा श्रेयांस द्वारा अपने परिवार के साथ अपने राजमहल में दिया गया था।

प्र. 211 किस नगर में राजा श्रेयांस द्वारा प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव (आदिनाथ) मुनीश्वर के लिए आहार दान दिया गया था?

उत्तर हस्तिनापुर नगरी में राजा श्रेयांस द्वारा प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव (आदिनाथ) मुनीश्वर के लिए आहार दान दिया गया था।

प्र. 212 राजा श्रेयांस ने अपने परिवार सहित कौन-सी वस्तु का आहार-दान तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के कर कमलों में देने का परम सौभाग्य प्राप्त किया था?

उत्तर राजा श्रेयांस ने अपने परिवार सहित इक्षु रस का आहार-दान तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के कर कमलों में प्रदान करने का परम सौभाग्य प्राप्त किया था।

प्र. 213 राजा श्रेयांस ने सहपरिवार किस तरह की नवधाभक्ति करके तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के

समक्ष आहार-दान विधि सानंद सम्पन्न की थी?

उत्तर राजा श्रेयांस ने सहपरिवार 1. प्रतिग्रहण (पड़िगाहन), 2. उच्चासन 3. पाद प्रक्षालन 4. पूजन, 5. मनशुद्धि, 6. वचनशुद्धि, 7. कायशुद्धि 8. आहार-जल शुद्धि और 9. नमोस्तु इस तरह की नवधाभक्ति मन-वचन-काय पूर्वक करते हुए तीर्थंकर ऋषभदेव के समक्ष आहार दान-विधि सानन्द सम्पन्न की थी।

प्र. 214 तीर्थंकर ऋषभदेव जब प्रथम बार आहार-चर्या को निकले थे तब राजा श्रेयांस ने नवधाभक्ति रूप आहार की विधि सम्पन्न क्यों नहीं की थी?

उत्तर क्योंकि तब तक राजा श्रेयांस के लिए किन्हीं तीर्थंकर के तीर्थ अर्थात् दिव्यध्वनि रूप उपदेश के अभाव में नवधा-भक्ति करने के ज्ञान का अभाव था।

प्र. 215 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के दूसरी बार आहार-चर्या के लिए निकलने पर राजा श्रेयांस को कैसे नवधा-भक्ति का ज्ञान जागृत हुआ?

उत्तर राजा श्रेयांस ने अपने पूर्व के आठवे भव में चक्रवर्ती वज्रजंघ (वर्तमान भव-ऋषभदेव) की पत्नी श्रीमती (वर्तमान भव राजा श्रेयांस) की पर्याय में दो मुनियों के लिए नवधाभक्ति पूर्वक आहार दिया था इस बात का स्मरण उन राजा श्रेयांस के जातिस्मरण (पूर्व भव की स्मृति) द्वारा हो गया था। अत: उन्होंने नवधा-भक्तिपूर्वक तीर्थंकर ऋषभदेव की आहार विधि सम्पन्न की थी।

प्र. 216 राजा श्रेयांस के लिए ऐसे जातिस्मरण के होने में इतने अधिक दिन क्यों व्यतीत हुए; कुछ काल पूर्व ऐसा जातिस्मरण क्यों नहीं हुआ?

उत्तर क्योंकि इतने काल के पूर्व राजा श्रेयांस के दानान्तराय कर्म का एवं ऋषभदेव मुनीश्वर के लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम नहीं हुआ था।

प्र. 217 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के प्रथम आहार की सानन्द सम्पन्नता पर किस तरह देव-गणों ने उत्सव मनाया?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के प्रथमाहार की सानन्द सम्पन्नता पर बड़ी भक्ति-भाव पूर्वक पञ्चाश्चर्य करते हुए महा उत्सव मनाया।

प्र. 218 महामुनीश्वरों के आहार-दान के उपरान्त देवों द्वारा किये जाने वाले पञ्चाश्चर्य किस तरह सम्पन्न किये जाते हैं?

उत्तर जिस तरह तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के लिए दिये आहार दानोपरान्त देवों ने आकाश से रत्नों की धारा पृथ्वी पर बरसाई थी, मंद-मंद सुगन्धित वायु बहाई थी, दिव्य पुष्पों की वृष्टि की थी, जय-जयकार रूप शब्दों द्वारा उच्च स्वरों में उद्घोष किया था और देव दुन्दुभि-वाद्यों से मधुर ध्वनि कर भव्यों को परमानन्द में अवगाहित कर पञ्चाश्चर्यों को सम्पन्न किया था। उसी तरह सर्व ऋद्धि आदिक से विशिष्ट महामुनीश्वरों के आहारोपरान्त देवगण पञ्चाश्चर्य किया करते हैं।

प्र. 219 ऋद्धिधारक महामुनीश्वरों के लिए अर्पित किये गये आहारोपरान्त कम-से-कम और अधिक-

से-अधिक कितने दिव्य (वेशकीमती) रत्नों की वर्षा देवों द्वारा की जाती है?

उत्तर ऋद्धिधारक महामुनीश्वरों के आहारोपरान्त देवों द्वारा कम-से-कम एक लाख पच्चीस हजार और अधिक-से अधिक साढ़े बारह करोड़ दिव्य रत्नों की वर्षा की जाती है। (त्रि.महा.)

प्र. 220 राजा श्रेयांस द्वारा दिये गये तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर को प्रथमाहार द्वारा चक्रवर्ती भरतेश्वर ने राजा श्रेयांस के लिए कौन-से तीन विशेषणों के साथ पुकारा था?

उत्तर चक्रवर्ती भरतेश्वर ने राजा श्रेयांस के लिए प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव महामुनीश्वर के लिए प्रदान किये गये प्रथमाहार के महानन्दोत्सव पर तुम महादानपति हो, तुम दानतीर्थकृत हो और तुम महापुण्यभाग हो ऐसे इन तीन विशेषणों के साथ पुकारा था। (म.पु.)

प्र. 221 प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव महामुनीश्वर के प्रथम आहार दान के शुभ दिन का नाम जगत् के भव्य बन्धुओं ने क्या घोषित किया था?

उत्तर ऐसे महान प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव महामुनीश्वर के प्रथमाहारदान के शुभ दिन का शुभ नाम जगत् के भव्य जनों ने अक्षय तृतीया उद्घोषित किया था।

प्र. 222 तीर्थंकरों के लिए दीक्षा-धारण करते ही कौन-कौन-सी ऋद्धियाँ प्रकट हो जाती हैं?

उत्तर तीर्थंकरों के लिए दीक्षा-धारण करते ही 1. बुद्धि-ऋद्धि, 2. विक्रिया-ऋद्धि, 3. चारण-ऋद्धि, 4. तप-ऋद्धि, 5. बल-ऋद्धि, 6. औषध-ऋद्धि, 7. रस-ऋद्धि और 8. अक्षीण-ऋद्धि इस तरह मूल रूप से अष्ट ऋद्धियाँ प्रकट हो जाती हैं।

प्र. 223 बुद्धि आदिक मूल अष्ट ऋद्धियों के उत्तर भेद कितने होते हैं?

उत्तर बुद्धि आदिक मूल अष्टऋद्धियों के उत्तर भेद आगम में चौंसठ बतलाये गये हैं। (विशेष देखिये जै.सि.कोश)

प्र. 224 बुद्धि-ऋद्धि के अठारह भेदों में एक भेद केवलज्ञान भी आता है तो क्या वे तीर्थंकर मुनि-पद धारण करते ही केवलज्ञान रूप ऋद्धि के भी स्वामी बन जाते हैं?

उत्तर नहीं; ऐसा नहीं होता। इस जिज्ञासा का समाधान ऐसा है कि- तीर्थंकर जब मुनि-दीक्षा धारण करते हैं तब तत्काल ही उन्हें त्रेसठ ऋद्धियाँ अवश्य प्रकट हो जाती हैं लेकिन बुद्धि-ऋद्धि के अठारह भेदों में से एक केवलज्ञान ऋद्धि रूप भेद तब प्रकट होता है जब वे चार घातियाँ कर्मों का क्षयकर अरहंत-पद रूप अवस्था को प्राप्त करते हैं।

प्र. 225 ऋद्धि और विद्याओं को क्या परिग्रह नहीं कहा जा सकता? और इनके माध्यम से मुनिपद बाधित नहीं होता क्या?

उत्तर ऋद्धियों से मुनिपद बाधित नहीं होता और न ही वे परिग्रह रूप होती हैं क्योंकि वे तपस्या से प्राप्त आत्मिक शक्तियाँ हैं न कि कोई सेविकाएँ। विद्याओं से मुनिपद बाधित अवश्य होता है और उन्हें अपनाने से परिग्रह रूप पाप भी होता है क्योंकि वे सेविका (दासी) रूप हुआ करती हैं।

प्र. 226 बुद्धि-ऋद्धि के तेरहवें भेद दशपूर्वित्व में जो विद्यानुप्रवाद नामक पूर्व होता है उसके अध्ययन

के काल में मुनियों के सम्यक्त्व व उनके निराकांक्षा रूप परिणामों के परीक्षण हेतु जो महारोहणी आदि पाँच सौ महा-विद्याएँ तथा अंगुष्ठ, प्रसेन आदि सात सौ लघु विद्याएँ उपस्थित होती हैं तब वे मुनि अपरिग्रही कैसे बने रहते हैं?

उत्तर जो वैरागी मुनि इन असंयमी देवी रूप विद्याओं की सेवा रूप प्रार्थना को अस्वीकार कर देते हैं वे सम्यक्त्व रूपी रत्न को सुरक्षित रखने वाले मुनि अभिन्न दशपूर्वित्व रूपी अवस्था को धारण करते हुए अपरिग्रही-संयमी कहलाते हैं और जो मुनि असंयमी स्त्रियों रूपी विद्याओं की सेवा स्वीकार कर लेते हैं वे वैराग्य-भाव से च्युत परिग्रही, असंयमी होते हुए अपने सम्यक्त्व रूपी रत्न को भी अथाह भवोदधि में गवाँ बैठते हैं।

प्र. 227 क्या ऐसी असंयमी देवी रूपी विद्याओं को अपनाने वाला यति ही रुद्र कहा जाता है और उसकी करनी का क्या फल होता होगा?

उत्तर हाँ! जो यति ऐसी असंयमी देवी रूप विद्याओं को स्वीकार कर व विषय-सेवन कर उनमें रमता है वह रुद्र कहलाता है, और वह निश्चित ही अपनी इस अशुभ करनी से अधो-पतन की राह द्वारा घोर दुःखों के द्वार अवश्य खोल लेता है।

प्र. 228 अंग श्रुतधारक श्री धरसेनाचार्य ने जब मुनिवर पुष्पदन्त और भूतबली के लिए जो श्रुतज्ञान देने के पूर्व परीक्षणार्थ एक-एक श्लोक शुद्ध करने दिये थे और उनका ध्यान करते हुए उन मुनियों को दो देवियाँ दिखीं तो क्या इस कार्य को यह मानना अनुचित ही होगा कि उनका यह कार्य देवी सिद्धि के लिए था?

उत्तर हाँ अनुचित ही होगा! क्योंकि गुरु-शिष्य का मन्तव्य देवी-सिद्धि का किञ्चत भी नहीं था। वे देवियाँ तो मात्र उनकी श्रुत-रक्षा रूप विशुद्धि के प्रभाव से यह संकेत दर्शाने उपस्थित हुईं थीं कि इन श्लोकों में जो विकलता है वे हमारे शरीर (एक आँख और एक दांत बाहर) रूप विकलता को देखकर, सही अर्थ ग्रहण कर अपनी बुद्धि के अनुरूप श्लोकों को शुद्ध कर लें। इस तरह न वे देवियाँ सिद्ध की गईं थीं और न वे विषय रमण या चिरकाल को स्थायी बनने आयीं थी बल्कि वे स्वतः उपस्थित होकर श्लोकों की शुद्धि होते ही वास्तविक रूप प्रकट कर तत्काल ही यथास्थान प्रस्थान कर गईं।

प्र. 229 संयमी और महान व्रतों के धारक महाव्रती मुनि जनों के प्रति असंयमी सरागी देवी-देवताओं को वश में करने के कार्य की कल्पना करना कौन-से अनर्थ का कारण है?

उत्तर जब एक सामान्य सम्यग्दृष्टि भव्यजीव सरागी देवी-देवता की उपासना को मिथ्यात्व मानता है तब इन महा सम्यग्ज्ञानी भव्य मुनीश्वरों के साथ देवादिक की सिद्धि या वश करने की कल्पना करना उन महाव्रतियों को दासी-दास का परिग्रही बनाते हुए महामिथ्यात्व-पोषक महाअज्ञान या घोर मूढ़ता रूप अनर्थ क्यों नहीं माना जावेगा? अर्थात् अवश्य ही माना जावेगा।

प्र. 230 विद्याधर गृहस्थ मनुष्य तो विद्याओं के स्वामी कहे जाते हैं; तो क्या वे सभी मिथ्यादृष्टि होते हैं या सम्यग्दृष्टि?

उत्तर सभी विद्याधर मिथ्यादृष्टि नहीं होते; जो सरागियों की उपासना कर विद्याओं की प्राप्ति करते हैं वे विद्याधर मिथ्यादृष्टि कहे जाते हैं, लेकिन जो बिना प्रयास ही जाति व कुल आदिक से विद्याओं की प्राप्ति कर वीतराग जिनेन्द्र देव, जिनवाणी और निर्ग्रन्थ गुरुओं की ही आराधना करते हुए सहज प्राप्त विद्याओं का धर्म या सदुपकार के निमित्त प्रयोग किया करते हैं वे विद्याधर सम्यग्दृष्टि कहलाते हैं।

प्र. 231 सेवा इत्यादिक कार्य करने वाली परिग्रह रूप विद्याएँ गृहस्थों के जीवन में कौन-सी अवस्था तक रह सकती हैं?

उत्तर मोक्ष में बाधक भिन्न पदार्थरूप परिग्रह पाप रूप होते हुए भी गृहस्थों के जीवन में न्याय-शीलता के साथ एक सीमा में सीमित रहते हुए पंचम गुणस्थान तक रह सकता है।

प्र. 232 इसी कारण-वश क्या कोई-कोई श्रावक क्षुल्लक जैसी अवस्था में भी विद्याओं का प्रयोग पूर्व काल में किया करते थे?

उत्तर हाँ! पूर्व प्राप्त विद्याओं को अणुव्रत-धारक पंचमगुणस्थानवर्ती क्षुल्लक कदाचित् उन विद्याओं को आज्ञा दे धर्म कार्य किया करते थे; परन्तु मुनि दीक्षा लेने के पूर्व ही उन विद्याओं का त्याग कर दिया करते थे।

प्र. 233 जिनदत्त श्रेष्ठी श्रावक के लिए विद्या की प्राप्ति किस कारण हुई थी?

उत्तर जिनदत्त श्रेष्ठी श्रावक के दृढ़तायुत ध्यान को देखकर बिना कांक्षा (चाहना) के ही देवों द्वारा आकाशगामिनी विद्या प्रदान की गई थी जिससे वे मेरुपर्वत के अकृत्रिम जिनालयों के नित्य दर्शन आदिक किया करते थे।

प्र. 234 अञ्जन चोर को विद्या की प्राप्ति का कारण क्या था और वह विद्या कब तक रही?

उत्तर जिनदत्त श्रेष्ठी श्रावक द्वारा प्रमाणित और प्रसारित किये गये अनादि व अनिधन णमोकार मंत्र पर श्रद्धा कर उसे ध्याते हुए अञ्जन चोर के लिए प्राप्त हुई आकाशगामिनी विद्या उसे मेरु पर्वत पर स्थित अकृत्रिम जिनालयों के दर्शनार्थ ले गई थी और वहाँ विराजित मुनिराज के उपदेश से दीक्षा लेते समय उसने उस परिग्रह रूप विद्या का भी त्याग कर दिया था तथा तप से प्राप्त चारण ऋद्धि द्वारा अञ्जन मुनि ने कैलाश पर्वत पर आकर वहाँ से शुक्ल-ध्यान द्वारा सर्व अष्ट-दुष्ट कर्मों का क्षय कर निर्वाण रूप मोक्ष पद को प्राप्त कर लिया था।

प्र. 235 तीर्थंकर-पदधारी मुनिवर को आत्मिक शक्ति रूप प्राप्त ऋद्धियों के माध्यम से जगजन क्या लाभ लेते होंगे?

उत्तर ऐसी तीर्थंकर जैसी आत्माएँ जब दूर-सुदूर तक अपनी चारण ऋद्धि द्वारा आकाश में ऊँचाई से गमन करते हैं तब स्वपर कल्याण करते हैं; जैसे कि अक्षीण-महानस ऋद्धि द्वारा आहार अक्षीणता (वृद्धि) हो जाना, नीरसाहार भी सरस हो जाना, अक्षीण महालय ऋद्धि से लघुस्थान भी (गुफा जैसा स्थान भी) बड़ा विशाल हो जाना, उनके शरीर से अन्य शरीर को बाधा उत्पन्न न होना, उनके शरीर के प्रभाव से अन्य जीवों के रोगादिक का पलायन होना और सम्पूर्ण लोक के पदार्थों के ज्ञान से दिव्य-ध्वनि द्वारा

सम्पूर्ण जगत् के भव्य जीवों के लिए मोक्षमार्ग का उपदेश प्राप्त होना इत्यादिक अनेकों लाभ होते हैं।

प्र. 236 विष्णुकुमार मुनि ने तप से प्राप्त ऋद्धि द्वारा क्या उपकार कर लोक प्रशंसित कार्य किया था?

उत्तर विष्णुकुमार मुनि ने तप से प्राप्त विक्रिया ऋद्धि द्वारा अपने शरीर को विस्तृत बना कर एक पग मेरु पर्वत पर व एक पग मानुषोत्तर पर्वत पर रखने वाला बनाकर बलि राजा का मान खण्डित कर अकंपनाचार्य आदि सात सौ मुनियों की रक्षा करते हुए बड़ा ही लोक प्रशंसित कार्य किया था।

प्र. 237 विद्या का एक अर्थ कोई अन्य देवी इत्यादिक न होते हुए मात्र ज्ञान रूप होता है; तो ज्ञान रूप विद्याएँ जो आत्मिक शक्तिरूप होती हैं वे मुनियों के जीवन में परिग्रह रूप न होते हुए किस रूप होती होंगी?

उत्तर वे ज्ञान रूप विद्याएँ महामुनियों के जीवन में अन्तरिक्ष, भौम, स्वर, स्वप्न, लक्षण, व्यंजन व छिन्न (चिह्न) रूप अष्ट महानिमित्त की भेदवाली अंग-ज्ञान रूप हुआ करती हैं तथा वे महाज्ञानी मुनिवर इस ज्ञान रूप विद्या का प्रयोग लौकिक कार्यों के लिए कदापि नहीं करते क्योंकि वे विशुद्ध सम्यग्दृष्टि हुआ करते हैं।

प्र. 238 तीर्थंकर ऋषभदेव ने दीक्षा से पूर्व सर्वप्रथम जिन विद्याओं द्वारा ब्राह्मी और सुन्दरी पुत्रियों के ऊपर उपकार किया था वे ज्ञान-विद्यायें कौन सी थी?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव ने दीक्षा के पूर्व प्रथम पुत्री ब्राह्मी के लिए लिपि विद्या और द्वितीय पुत्री सुन्दरी के लिए अंक विद्या सिखलाकर उनका महान उपकार किया था।

प्र. 239 तीर्थंकर ऋषभदेव ने दीक्षा पूर्व अपने गृहस्थ जीवन में जन सामान्य को षट् कर्मादिक का उपदेश देकर कितने वर्षों तक कर्मभूमि की उत्तम-व्यवस्था में अपने अमूल्य-जीवन के समय का सदुपयोग किया था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव ने दीक्षा-पूर्व अपने गृहस्थ जीवन में जनसामान्य के लिए तेरासी लाख पूर्व वर्ष तक षट्-कर्मादिक का उपदेश देकर कर्मभूमि की उत्तम-व्यवस्था में अपने अमूल्य-जीवन के समय का सदुपयोग किया था।

प्र. 240 तीर्थंकर ऋषभदेव के दीक्षोपरान्त छदमस्थ अवस्था में कितने वर्ष तपस्या में व्यतीत हुए थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के दीक्षोपारान्त छदमस्थ अवस्था में एक हजार वर्ष तपस्या में व्यतीत हुए थे।

प्र. 241 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के लिए केवलज्ञान की उत्पत्ति किस स्थल पर हुई थी?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभवदेव मुनीश्वर के लिए केवलज्ञान की उत्पत्ति पर्वतालपुर के निकट हुई थी।

प्र. 242 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के लिए केवलज्ञान किस वृक्ष के नीचे उत्पन्न हुआ था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के लिए केवलज्ञान वट वृक्ष के नीचे उत्पन्न हुआ था।

प्र. 243 केवलज्ञानोत्पत्ति होते ही तीर्थंकर अरिहंत इस धरातल से कितने हस्त ऊपर उठ जाया करते हैं और जहाँ से उनकी वाणी खिरना, व गमन-विराजमान रूप क्रिया हुआ करती है?

उत्तर केवलज्ञानोत्पत्ति होते ही तीर्थंकर अरिहंत का शरीर इस सामान्य धरातल से पाँच हजार धनुष अर्थात्

बीस हजार हस्त (हाथ) ऊपर उठ जाता है और उतनी ऊँचाई से ही उनकी वाणी खिरना व गमन-विराजित होने रूप क्रिया सम्पन्न होती है।

प्र. 244 तीर्थंकर अरिहंतों का शरीर इस सामान्य धरातल (भूमि) से पाँच हजार धनुष ऊपर की ओर क्यों उठ जाता है? क्या इसमें कोई विशेष रहस्य है?

उत्तर जगत् में विशिष्ट आत्माओं का स्थान सर्वोपरि होता है, यह अवस्था लोक शिखर तक जाने वाले भावि सिद्ध उन अरिहन्तों भगवन्तों की होती है, तीर्थंकर प्रभु कैवल्य उपलब्धि के उपरान्त परम शुद्ध एवं इतने विशिष्ट आत्मा सुनिश्चित होते हैं कि उन्हें कोई अभव्य और मिथ्यादृष्टि जैसे पुण्यहीन प्राणी देखने में बड़े अभागे होते हैं; इतदर्थ उनका शरीर स्वयमेव पाँच हजार धनुष की ऊँचाई पर चला जाता है।

प्र. 245 तीर्थंकर केवली का दर्शन कौन-से पुण्यवान व भाग्यवान जीव कर पाते हैं?

उत्तर तीर्थंकर केवली का दर्शन जो जीव भव्यत्व के साथ सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं ऐसे वे ही बड़े पुण्यवान व भाग्यवान प्राणी कर पाते हैं।

प्र. 246 साक्षात् तीर्थंकर-केवली भगवान का दर्शन कौन-कौन से प्राणी नहीं कर पाते?

उत्तर आगम-ग्रन्थों में वर्णित है कि साक्षात् तीर्थंकर-केवली भगवान का दर्शन अभव्य जीवों, मिथ्यादृष्टि जीवों, सासादन गुणस्थानवर्ती जीवों एवं मिश्रगुणस्थानवर्ती जीवों को नहीं होता। (मुनिसुव्रत का.4-130)

प्र. 247 अभव्य व मिथ्यादृष्टि आदिक जीवों को तीर्थंकर-केवली भगवान के साक्षात् दर्शनार्थ निकट जाने में कौन बाधक बन जाता है और वे दर्शन से वंचित किस तरह-से रह जाते हैं?

उत्तर अभव्यों व मिथ्यादृष्टि आदिक जीवों को साक्षात् तीर्थंकर-केवलियों के दर्शन में बाधक उनका मोहनीय व दर्शनावरणीय आदिक कर्म ही समझना चाहिए, जिस कारण अभव्य मिथ्यादृष्टि आदिक जीव प्रभु के समवसरण के निकटस्थ प्रथम परकोट धूलिसाल सम्बन्धी विजय, वैजयन्त, जयन्त और अपराजित नामक चार द्वारों के समीप पहुँचते ही उन्हें समवसरण में विराजित तीर्थंकर प्रभु तक पहुँचाने वाली वीथियों रूप मार्ग नजर ही नहीं आता तथा वे अन्धे सदृश हो जाते हैं और समवसरण के बाहरी भाग से ही वापस लौट आते हैं।

प्र. 248 भव्य, सम्यग्दृष्टि जीव किस तरह बीस हजार हाथ ऊपर जाकर साक्षात् तीर्थंकर केवली का दर्शन करते होंगे?

उत्तर स्वर्गिक सौधर्मेन्द्र की आज्ञा पाकर कुबेरेन्द्र इस भूमि पर रत्नमय एक विशाल धर्मसभा रूप भव्यों को शरण देने वाला समवसरण रूप वैभव रचाता है जिसमें तीर्थंकर प्रभु के निकट तक पहुँचने हेतु बीस हजार सीढ़िया रची जाती हैं, जिन रत्नमय सीढ़ियों को भव्य सम्यग्दृष्टि जीव बिना परिश्रम ही थोड़े-से पुरुषार्थ के माध्यम से चढ़ जाया करते हैं और उन पुण्यभागी भाग्यशालियों को सहज ही उन त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर केवली प्रभु का साक्षात् दर्शन हो जाया करता है।

प्र. 249 अरिहंत केवली भगवन्तों की गमनादिक क्रिया क्या उनकी इच्छा पूर्वक हुआ करती है या भव्यों के पुण्य के वश हुआ करती है?

उत्तर अरिहंत केवली भगवन्तों की गमन, बैठना और वाणी खिरने रूप क्रिया स्त्रियों की माया व मेघों के गमन सदृश स्वाभाविक रूप से भव्य जीवों के पुण्य के निमित्त और जग उपकारार्थ उनकी बिना इच्छा के ही हुआ करती है। (प्र.सा. 1.44)

प्र. 250 केवली भगवान की इच्छा रूप प्रवृत्ति होने में क्या बाधा है?

उत्तर इच्छा का प्रकट होना एक तरह का राग-भाव है और जो राग भाव मोहनीय कर्म में गर्भित होता है, जब तेरहवें गुणस्थानवर्ती भगवान मोहनीय कर्म का क्षय दसवें गुणस्थान में ही कर चुके होते हैं तब उनके जीवन में किसी भी तरह की इच्छा प्रकट होने की कल्पना करना व्यर्थ ही समझना चाहिए।

प्र. 251 तीर्थंकर ऋषभदेव के केवलज्ञानोत्पत्ति का हर्ष देवों ने व प्रकृति ने किस तरह प्रकट किया था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव ने जब घातिया कर्मों पर विजय प्राप्त की तब संसार भर में शान्ति छा गई। सुरलोक में शीघ्र ही जिनेन्द्रदेव के केवलज्ञान का समाचार ज्ञात हो गया। कल्पवासियों के विमानों में घंटानाद, ज्योतिषी देवों के यहाँ सिंहनाद, व्यन्तरों के यहाँ भेरीनाद तथा भवनवासियों के यहाँ भी स्वत: शंख-ध्वनि होने लगी। इन्द्रों के आसन डोलने लगे, मानों जिनेन्द्र देव द्वारा घातिया कर्मों के जीते जाने पर देवों को जो गर्व हुआ था, उसे वे सहन करने में असमर्थ हो आसन-सह दोलायित होते हुये कम्पायमान होने लगे। कल्पवृक्षों से दिव्य-पुष्पों की वर्षा हो रही थी मानों वे प्रभु को पुष्पांजलि अर्पित कर रहे हों। दिशायें धुएँ व धूलादि रहित निर्मल हो गईं थीं। आकाश मेघों से रहित हो गया था। मंद-मंद सुगंधित और शीतल वायु बह रही थी। ऐसे मनोरम वातावरण में देवगण व मनुष्य आदिक उन जिनेन्द्र प्रभु को भक्ति भाव-सह वंदन कर रहे थे।

प्र. 252 देव-गणों ने किस तरह तीर्थंकर ऋषभदेव का केवलज्ञान कल्याणक बड़े वैभव-सह मनाया था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव को कैवल्य प्राप्ति होते ही सर्व प्रथम सौधर्मेन्द्र ने स्वर्ग से ही आनंदित होकर उन जिनेन्द्र देव की परोक्ष में वंदना की। तदनन्तर सौधर्मैशानेन्द्र अपनी-अपनी शची के साथ ऐरावत गज पर आरूढ़ होकर अयोध्या नगरी की ओर प्रस्थान करते हैं। इसी तरह सभी देवगण स्व-स्व विमानों में बैठकर अयोध्या नगरी पहुँचते हैं। सौधर्मेन्द्र की आज्ञा पा कुबेरेन्द्र सूर्य मण्डल के समान गोल इन्द्रनील मणिमयी बारह योजन प्रमाण विस्तार वाली भूमि रचकर उसके ऊपर समवसरण की रचना करता है। देवों के अद्भुत् कौशल तथा तीर्थंकर प्रकृति के निमित्त से आदिनाथ ऋषभदेव प्रभु का समवसरण सौन्दर्य, वैभव तथा श्रेष्ठ कला का अद्भुत केन्द्र था। ऐसे महान समवसरण में पहुँचकर देवेन्द्र तीर्थंकर प्रभु की सविनय नमस्कार पूर्वक स्तुति करता है और अष्ट महामंगल द्रव्यों से उनकी पूजा रचाता है तथा अष्ट भूमि व बारह सभा युक्त समवसरण की शरण में अपने को धन्य मानते हुए सभी भव्य गणों-सह इन्द्र प्रभु की अमृतमय दिव्य वाणी को सुनकर केवलज्ञान कल्याणक मनाता है।

प्र. 253 सौधर्मेन्द्र ने किस देव के लिए ऐरावत गज का रूप धारण करने की आज्ञा प्रदान की थी?

उत्तर सौधर्मेन्द्र ने नागदत्त नामक आभियोग्य जाति के स्वर्गिक देव के लिए ऐरावत गज का रूप धारण करने की आज्ञा प्रदान की थी।

प्र. 254 तीर्थंकर ऋषभदेव प्रभु के विशाल समवसरण का विस्तार कितना था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के विशाल समवसरण का विस्तार बारह योजन था।

प्र. 255 क्या सर्व तीर्थंकरों के समवसरण का विस्तार एक सदृश होता है या कोई विशेषता है?

उत्तर ऋषभनाथ तीर्थंकर भगवान के बारह योजन समवसरण के विस्तार से शेष अजितनाथ से लेकर बाईसवे नेमिनाथ तक के तीर्थंकरों के समवसरण का विस्तार आधा-आधा योजन कम था। पार्श्वनाथ तीर्थंकर का समवसरण सवा योजन तथा भ. महावीर का समवसरण एक योजन विस्तार वाला था।

प्र. 256 विदेह क्षेत्रस्थ तीर्थंकरों के समवसरण का विस्तार कितना होता है?

उत्तर विदेह क्षेत्रस्थ तीर्थंकरों की शारीरिक अवगाहना पाँच सौ धनुष प्रमाण होती है, अत: वहाँ के समवसरणों का विस्तार नियम से बारह योजन प्रमाण होता है ऐसा आगम है।

प्र. 257 तीर्थंकर प्रभु के समवसरण का संक्षिप्त परिचय किस तरह का है?

उत्तर समवसरण के बाह्य भाग में सर्वप्रथम धूलिसाल परकोट जो रत्नों की धूलि से निर्मित होता है। इस धूलिसाल के बाहर चारों दिशाओं में स्वर्णमय खंभों के अग्रभाग पर अवलंबित चार तोरण द्वार शोभायमान होते हैं। धूलिसाल के भीतर जाने पर कुछ दूरी पर चारों दिशाओं में एक-एक मानस्तम्भ होते हैं। वे मानस्तम्भ बड़े ऊँचे घण्टाओं से घिरे, और चँवर तथा ध्वजाओं से शोभायमान होते हैं। ऐसे दिव्य मानस्तम्भों के मूल भाग में जिनेन्द्र भगवान् की सुवर्णमय प्रतिमाएँ विराजित होती हैं, जिनकी इन्द्रगण क्षीरसागर के जल से अभिषेक कर पूजन किया करते हैं। उन मानस्तम्भों में श्रीजिन के मस्तक पर छत्रत्रय शोभित होते हैं। प्रत्येक मानस्तम्भ की चारों दिशि में चार सरोवर निर्मल जल से पूरित होते हैं मानों वे तन के मैल सह कर्म-मैल को धोया करते हैं।

फिर निर्मल जल से पूर्ण खातिका होती है। पश्चात् पुष्पवाटिका होती है। अनन्तर प्रथम कोट होता है। पश्चात् दो-दो नाट्य शालायें होती हैं। उसके अनन्तर अशोक आदि वृक्षों का वन होता है। उसके आगे वेदिका होती है। तदनन्तर ध्वजाएँ शोभित होती हैं। इनके पश्चात् दूसरा कोट होता है। फिर वेदिका सह कल्पवृक्षों का वन होता है। तदनन्तर स्तूप होते हैं और फिर भवनों की पंक्तियाँ शोभित होती हैं।

इसके अनन्तर स्फटिक मणि से रचित तीसरा परकोटा होता है। उसके बाद मुनि, राजादि मनुष्य और देवादिकों की बारह सभाएँ हुआ करती हैं और अंत में गोल तीन कटनी रूपी पीठिका के ऊपर सहस्रदल स्वर्णिम कमल फिर रत्नजड़ित सिंहासन से अधर में स्वयंभू तीर्थंकर अरहंत-देव विराजित होते हैं। इस तरह यह समवसरण का संक्षिप्त परिचय है।

प्र. 258 एक अपेक्षा से समवसरण में ग्यारह भूमियाँ कौन-सी होती हैं?

उत्तर समवसरण में 1. चैत्यभूमि, 2. खातिकाभूमि, 3. लताभूमि, 4. उपवनभूमि, 5. ध्वजाभूमि, 6. कल्पांगभूमि, 7. गृहभूमि, 8. सद्गुणभूमि, 9. प्रथम मेखला (कटनी) भूमि, 10. द्वितीय मेखला भूमि और 11. तृतीय मेखला भूमि।

प्र. 259 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने गणधर मुनि विराजित थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में चौरासी गणधर मुनि विराजित थे।

प्र. 260 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने केवली मुनिवर विराजित थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में बीस हजार केवली मुनि विराजित थे।

प्र. 261 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने अवधिज्ञानी मुनि विराजित थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में नौ हजार अवधिज्ञानी मुनि विराजित थे।

प्र. 262 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने शिक्षक मुनि विराजित थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषदेव के समवसरण में चार हजार एक सौ पचास शिक्षक मुनि विराजित थे।

प्र. 263 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने मन:पर्ययज्ञानी मुनि विराजित थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में बीस हजार सात सौ पचास मन:पर्ययज्ञानी मुनि विराजित थे।

प्र. 264 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने विक्रिया ऋद्धिधारक मुनि विराजित थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में बीस हजार छह सौ विक्रिया ऋद्धि धारक मुनि विराजित थे।

प्र. 265 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने अनुत्तरवादी मुनि विराजित थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में बीस हजार सात सौ पचास अनुत्तरवादी मुनि विराजित थे।

प्र. 266 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने अंग-पूर्व के ज्ञाता (श्रुतकेवली) मुनिराज विराजमान थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में चार हजार सात सौ पचास अंग-पूर्व के ज्ञाता (श्रुतकेवली) मुनिराज विराजमान थे।

प्र. 267 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने सामान्य मुनिराज विराजमान थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में चौरासी हजार सामान्य मुनिराज विराजमान थे।

प्र. 268 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में आर्यिकाओं की कितनी संख्या थी?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में आर्यिकाओं की संख्या तीन लाख पचास हजार थी।

प्र. 269 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में श्रावकों एवं श्राविकाओं की कितनी संख्या थी?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में श्रावकों की संख्या तीन लाख एवं श्राविकाओं की पाँच लाख थी।

प्र. 270 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में देवगति के देव-देवियाँ कितने थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में देवगति सम्बन्धी देव और देवियाँ असंख्यात थे।

प्र. 271 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में तिर्यञ्च प्राणी कितने थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में तिर्यञ्च प्राणी संख्यात थे।

प्र. 272 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में प्रमुख श्रोता का नाम क्या था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में प्रमुख श्रोता का नाम भरत चक्रवर्ती था।

प्र. 273 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में प्रमुख गणधर मुनि कौन थे?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में प्रमुख गणधर मुनिवर वृषभसेन थे।

प्र. 274 तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में प्रमुख आर्यिका कौन थी?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में प्रमुख आर्यिका ब्राह्मी थी।

प्र. 275 तीर्थंकरों के समवसरण में प्राणियों के लिए कौन-कौन-सी बाधाएँ और क्यों उत्पन्न नहीं होती?

उत्तर तीर्थंकरों के समवसरण में आतंक, रोग, शोक, प्रसव, निद्रा, बैर, काम, भूख और प्यासादिक की बाधाएँ तीर्थंकर प्रभु के पुण्य के महाप्रताप से उत्पन्न नहीं होती।

प्र. 276 समवसरण में नवमी भूमि रूप प्रथम मेखला (कटनी) क्या विशेषता वाली होती है?

उत्तर समवसरण में नवमी भूमि रूप प्रथम मेखला-पीठिका पर स्थित अष्टमंगल द्रव्य अतिशय शोभायमान होते हैं तथा सुन्दर यक्षों के ऊँचे-ऊँचे मस्तकों पर स्थित धर्मचक्र उदयाचल से उदित होते हुए सूर्य बिम्ब सदृश प्रतिभासित होते हैं।

प्र. 277 समवसरण में दसमी भूमि रूप द्वितीय मेखला क्या विशेषता वाली होती है?

उत्तर समवसरण में दसमी भूमि रूप द्वितीय मेखला-पीठिका पर चक्र, गज, वृषभ, कमल, अश्व, सिंह, गरुड़ तथा माला के चिह्न से चिह्नित आठों दिशि में आठ विस्तृत ध्वजाएँ शोभायमान होती हैं।

प्र. 278 समवसरण में ग्यारहवीं भूमि रूप तृतीय मेखला क्या विशेषता वाली होती है?

उत्तर समवसरण में ग्यारहवीं भूमि रूप तृतीय मेखला-पीठिका सर्व रत्नों और मोतियों के हारों से सुसज्जित होती है जिस मेखला के बीचो-बीच चहुँदिशि में मधुर गंध को बिखराने वाली गंधकुटी इस तरह भासित होती है मानो तीर्थंकर प्रभु का परमौदारिक शरीर ही अष्ट-गंध के रूप में अपनी सुगन्धि से भव्यों को संतृप्त कर रहा हो तथाहि ऐसी मनहारी गंधकुटी के मध्य सहस्रदल स्वर्णिम कमल एवं जिस पर रत्न जड़ित सिंहासन अतिशय-शोभाश्री को बढ़ाने वाला होता है और जिस सिंहासन में चतुरंगुल ऊपर अधर में तीर्थंकर प्रभु विराजित होते हैं। ऐसी मनभावन तृतीय मेखला होती है।

प्र. 279 तीर्थंकर केवली के सिर पर कौन-से देवों द्वारा कितने चँवर ढुराये जाते हैं?

उत्तर तीर्थंकर केवली के सिर पर आजू-बाजू से कटक, कटि सूत्र, कुण्डल और मुकुटादि अलंकारों से परिपूर्ण सुन्दर यक्षों द्वारा चौसठ चँवर ढुराये जाते हैं।

प्र. 280 सुन्दर आभरणों से युक्त यक्ष क्या तीर्थंकरों मात्र की चँवर ढोरकर सेवा करते हैं या अन्य पुण्यवान मनुष्यों की भी चँवर ढोरकर सेवा करते हैं? और अन्य पुण्यवान कौन-कौन-से मनुष्यों के सिर पर कितने-कितने चँवर ढोरते हैं?

उत्तर आभरणों से सुन्दर यक्ष चक्रवर्तियों पर सदाकाल बत्तीस चँवर ढोरते हैं। अर्धचक्रवर्ती (नारायण-

प्रतिनारायण) पर सोलह चँवर ढोरते हैं। महामण्डलेश्वर राजाओं पर आठ चँवर ढोरते हैं। मण्डलेश्वर राजा पर चार चँवर ढोरते हैं और महाराजाओं पर दो चँवर ढोरते हैं। इस तरह यक्ष देव मनुष्यों की भी बड़ी मनोभावना से सेवा पूर्ण करते हैं।

प्र. 281 तीर्थंकरों के समवसरण में प्रभु के भामण्डल (प्रभामण्डल) की क्या महिमा होती है? उसके रहस्य को बतलाइये?

उत्तर त्रिलोक के प्रकाशमान पदार्थों के तेज को तिरस्कृत करने वाला अथवा अमृत सदृश निर्मल और जगत् को अनेक मंगल रूप दर्पण के समान भगवान् की देह के प्रभामण्डल में भव्यात्माओं के सप्त-सप्त भव दर्शित होते हैं ऐसे महातेज पुञ्ज रूप प्रभामण्डल के कारण समवसरण में रात्रि और दिन का कोई भेद नहीं रहता है।

प्र. 282 समवसरण में स्थित मानस्तम्भों की चारों दिशाओं सम्बन्धी सरोवरों या बावड़ियों में भी आगे, पीछे के तीन-तीन और वर्तमान का एक भव दर्शित होने का वर्णन मिलता है। परन्तु जिन जीवों के मोक्ष होने में एक, दो भव ही शेष हैं तो उन्हें क्या नियम लागू होगा?

उत्तर जिन जीवों के एक, दो भव ही शेष रहते हुए मोक्ष पाना निकट होता है वे जीव कल्याण में निमित्त भामण्डल में उतने ही भव देखते हुए वैराग्य-भाव का चिन्तवन मन में लाकर शीघ्र मोक्ष-पुरुषार्थ करने में उत्सुक हो जाते हैं। उन्हें चार, पाँच अथवा छह भवों के दिखने का नियम भी लागू हो सकता है।

प्र. 283 समवसरण-विराजित सहस्रसूर्य-सम प्रतापी प्रभु को निहारने में आँखे कैसे सक्षम होंगी क्या अश्रुपात नहीं होने लगेगा?

उत्तर नहीं ऐसा नहीं होता, जैसे-प्रभु का रूप सहस्र सूर्यों से भी अधिक प्रतापी होता है वैसे ही सहस्रचन्द्रों से भी अधिक शीतल होता है अत: नयन प्रसन्नता का ही अनुभव करते हैं, न कि किसी तरह के कष्ट का अनुभव करते हैं।

प्र. 284 तीर्थंकर केवली की दिव्यध्वनि कितनी भाषाओं में खिरती है?

उत्तर तीर्थंकर केवली की दिव्यध्वनि अठारह महाभाषाओं और सात सौ लघु भाषाओं में खिरती है।

प्र. 285 जिनेन्द्र देव- केवली प्रभु की वाणी रूप दिव्य-ध्वनि के लिए सार्वार्धमागधी भाषा क्यों कहा जाता है?

उत्तर जिनेन्द्र देव-केवली प्रभु की वाणी रूप दिव्यध्वनि लोक के सर्व जीवों की हितकारक होने से 'सार्व' कही जाती है और मागध नामक देवों द्वारा भिन्न-भिन्न भव्य जीवों के कर्णप्रदेशों के समीप तक सरलता पूर्वक पहुँचायी जाने वाली होने से 'मागधी' भाषा कहलाती है।

प्र. 286 जिनेन्द्र देव से खिरी दिव्य-ध्वनि की क्या महत्त्वपूर्ण विशेषता होती है?

उत्तर जिनेन्द्र-देव से खिरी दिव्यध्वनि गम्भीर, मधुर, अत्यन्त मनोहर, निष्कलंक, कल्याणकारी, कण्ठओष्ठ-तालु आदि वचन उत्पत्ति के निमित्त कारणों से रहित, पवन के रोध बिना उत्पन्न हुई, स्पष्ट, श्रोताओं के लिए अभीष्ट तत्त्वों का निरूपण करने वाली सर्वभाषा स्वरूप, समीप तथा दूरवर्ती

जीवों के लिए समान रूप से सुनाई पड़ने वाली, शांति-रस से परिपूर्ण तथा उपमा रहित ऐसी अनुपम जिनेन्द्र प्रभु की दिव्यध्वनि बड़ी महान होती है।

प्र. 287 जिनेन्द्र प्रभु की दिव्यध्वनि विभिन्न जीवों के लिए विविध भाषा रूप कैसे हो जाती है?

उत्तर जिस तरह, एक प्रकार के जल का प्रवाह वृक्षों के भेद से अनेक रस रूप परिणत हो जाता है, उसी प्रकार यह वीतराग सर्वज्ञ जिनेन्द्र देव की दिव्यध्वनि एक रूप होते हुए भी विभिन्न जीव-पात्रों के भेद से विविध भाषा रूपता को प्राप्त हो जाती है।

प्र. 288 जिनेन्द्र प्रभु की ओंकार रूप दिव्यध्वनि में द्वादशांग श्रुत रूप होने की शक्ति किस तरह निहित होती है?

उत्तर जिनेन्द्र प्रभु की ओंकार बीजाक्षर रूप दिव्य ध्वनि (वाणी); अनन्त अर्थ है गर्भ में जिसके; ऐसे बीज पदों से निर्मित शरीरवाली होती है। जैसे-हल के द्वारा सम्यक् प्रकार से तैयार की उपजाऊ भूमि में योग्य काल में बोया गया एक भी बीज बहुत बीजों को उत्पन्न करता है, उसी तरह बीज पद- युक्त वाणी को गणधर देव बीज बुद्धि रूप ऋद्धि से अवधारण करके द्वादशांग श्रुत की रचना करते हैं।

प्र. 289 जिनेन्द्र प्रभु की वाणी अनक्षरात्मक और अक्षरात्मक किस तरह कही गयी है?

उत्तर जिनेन्द्र प्रभु की दिव्य ध्वनि रूप वाणी श्रोताओं के समीप पहुँचने तक अनक्षरात्मक रहती है, पश्चात् भिन्न-भिन्न श्रोताओं का आश्रय पाकर वह जिनवाणी अक्षर रूपता को धारण कर लेती है।

प्र. 290 जिनेन्द्र प्रभु की वाणी में सत्य और अनुभय वचन किस तरह सिद्ध होता है?

उत्तर जिनेन्द्र प्रभु-केवलज्ञानी की दिव्यध्वनि रूप वाणी उत्पन्न होते ही अनक्षरात्मक रहती है, इसलिए श्रोताओं के कर्णप्रदेश से सम्बन्ध होने के समय तक अनुभय वचन योग सिद्ध होता है। इसके पश्चात् वाणी अक्षरात्मक रूप होते हुए श्रोताओं के इष्ट अर्थों के विषय में संशय आदि का निराकरण करने से तथा सम्यग्ज्ञान को उत्पन्न करने से उसी वाणी में सत्य वचन योग का भी सद्भाव स्वत: सिद्ध हो जाता है।

प्र. 291 जिनेन्द्र प्रभु की दिव्यध्वनि कौन-कौन से काल में कितने समय तक खिरती है?

उत्तर जिनेन्द्र प्रभु की दिव्य ध्वनि प्रभात, मध्याह्न, सायंकाल तथा मध्यरात्रि के काल में छह-छह घटिका पर्यन्त अर्थात् दो घण्टा चौबीस मिनिट तक प्रतिदिन नियम पूर्वक खिरती है।

प्र. 292 किन्हीं विशिष्ट पुण्यशाली आत्माओं के लिए असमय में भी क्या दिव्यध्वनि खिरती है?

उत्तर भव्यात्माओं के लिए उनके आगमन पर या इनके द्वारा प्रश्न किये जाने पर जिनेन्द्र प्रभु की वाणी असमय में भी खिर जाया करती है। इसका कारण यह है उन विशिष्ट आत्माओं के संदेह दूर होने पर धर्मप्रभावना बढ़ेगी और उससे मोक्ष-मार्ग की देशना का प्रचार होगा जिससे तीर्थंकर का धर्म समुन्नत होगा।

प्र. 293 बारह सभाओं में बैठकर भव्य-प्राणी जिनेन्द्र प्रभु की वाणी किस तरह विनय पूर्वक श्रवण किया करते हैं?

उत्तर समवसरण या गंधकुटी (सामान्य अरिहंतों की सभा) सम्बन्धी बारह सभाओं में भव्य प्राणी जिनेन्द्र प्रभु की ओर मुखकर एवं हाथ जोड़कर विनीत होकर प्रभु की वाणी का श्रवण किया करते हैं न कि प्रभु की ओर पीठ कर बैठते हैं और ना ही देवी, देवतादिक आशीर्वाद की ही मुद्रा धारण करते हैं।

प्र. 294 तीर्थंकर जिनेन्द्र प्रभु के समवसरण से विहार के समय उनके चलते हुए चरणों के नीचे देवों द्वारा कितने स्वर्णिम कमलों की रचना की जाती है?

उत्तर तीर्थंकर जिनेन्द्र प्रभु के समवसरण-विहार के समय उनके पुण्य चरणों के नीचे देवों द्वारा आठ दिशाओं में तथा उनके अष्ट अन्तरालों में सात-सात कमल ऐसे एक सौ बारह कमल, उन सोलह स्थानों के भी सोलह अंतरालों में पूर्ववत् सात-सात कमल इस तरह एक सौ बारह कमल, इनको जोड़ने पर दो सौ चौबीस कमल हुए और प्रभु-चरणों के रखने के स्थान के नीचे एक कमल इस तरह दो सौ पच्चीस स्वर्णिम कमलों की रचना की जाती है।

प्र. 295 तीर्थंकर ऋषभ देव से भव्यों के लिए कितने वर्षों तक समवसरण के माध्यम से दिव्यध्वनि द्वारा साक्षात् कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता रहा?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव से भव्यात्माओं के लिए समवसरण में दिव्यध्वनि के माध्यम से एक हजार वर्ष कम एक लाख पूर्व वर्ष तक साक्षात् कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता रहा।

प्र. 296 तीर्थंकर ऋषभदेव का समवसरण छोड़ने के उपरान्त मोक्ष प्राप्ति के मध्य कितना काल कैलाश पर्वत पर उत्कृष्ट ध्यान मुद्रा में व्यतीत हुआ?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव का समवसरण छोड़ने के उपरान्त मोक्ष-प्राप्ति के मध्य चौदह दिवस पर्यंत का काल कैलाश (अष्टापद) पर्वत पर उत्कृष्ट ध्यान (योग) मुद्रा में व्यतीत हुआ।

प्र. 297 तीर्थंकर ऋषभदेव मोक्ष जाने के दो दिन पूर्व जब पद्मासन में योग निरोध करने हेतु अष्टापद पर्वत पर विराजित हुए तब प्रभु के मोक्ष जाने के संकेत स्वरूप भरत चक्रवर्ती ने कौन-सा स्वप्न देखा?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के मोक्ष जाने के पूर्व भरत चक्रवर्ती ने शुभ और मंगल स्वरूप स्वप्न देखा कि- महा मंदराचल (सुमेरु पर्वत) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ प्राग्भार पृथ्वी (सिद्धशिला) तक पहुँच गया है।

प्र. 298 तीर्थंकर ऋषभदेव के मोक्षोपरांत चतुर्णिकाय के देवों ने प्रभु का निर्वाण कल्याणक किस तरह मनाया था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के मोक्षोपरांत बड़ी भक्ति को धारण करने वाले आलस्य विरहित इन्द्रों सह चतुर्णिकाय के देव आये और प्रभु की अत्येष्टि अर्थात् अन्तिम पूजा कर उनके पवित्र, उत्कृष्ट, मोक्ष के साधन स्वरूप स्वच्छ तथा निर्मल शरीर को उत्कृष्ट मूल्यवान पालकी (आसन) में विराजमान कर अग्निकुमार नामक भवनवासी देवों के इन्द्र के रत्नों की कान्ति से दैदीप्यमान अत्यन्त उन्नत मुकुटानल, और चन्दन, अगर, कपूर केशरादि सुगन्धित पदार्थों से तथा घृतादि के द्वारा वृद्धि को प्राप्त अग्नि से लोक में अनुपम सुगन्धि को व्याप्त करते हुए प्रभु के उस शरीर को शुद्धाग्नि संस्कार द्वारा

भस्मरूप पर्यायान्तर को प्राप्त करा दिया था। तदनन्तर देवों और देवेन्द्रों ने भक्ति पूर्वक पञ्चकल्याणक प्राप्त तीर्थंकर जिनेन्द्र की देह-भस्म को लेकर 'हम भी ऐसे हों' यही विचार करते हुए उस भस्म को अपने मस्तक, भुजायुगल, कण्ठ तथा छाती में लगाकर अत्यन्त पवित्रता का अनुभव करते हुए धर्मरस में डूबकर निर्वाण कल्याणक को सानंद मनाया था।

प्र. 299 तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के साथ कितने महामुनियों ने निर्वाण (मोक्ष)-पद को प्राप्त कर सिद्धालय की ओर गमन किया था?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के साथ एक हजार महामुनियों ने निर्वाण-पद को प्राप्त कर सिद्धालय (लोकशिखर) की ओर गमन किया था।

प्र. 300 तीर्थंकरों की अनुपम सामर्थ्य या अतुल बल का स्थूल दृष्टान्त दीजिये?

उत्तर अनन्त बल युक्त तीर्थंकरों की अनुपम सामर्थ्य की कल्पना करना अल्पज्ञों को शक्य नहीं, फिर भी स्थूल दृष्टान्त द्वारा विचार करते हैं कि- हजारों हाथियों का बल एक सिंह में होता है और हजारों सिंहों का बल एक शरभ (शार्दूल) में होता है। हजारों शरभों का बल एक बलदेव में होता है। दो बलदेवों की शक्ति एक अर्धचक्री (नारायण) में रहती है। दो अर्धचक्रवर्तियों का बल एक नरेन्द्र चक्रवर्ती में होता है। एक हजार चक्रवर्तियों का बल एक इन्द्र में होता है और असंख्य इन्द्रों के बल से भी अधिक शक्ति एक तीर्थंकर में होती है। वास्तव में तीर्थंकरों के जन्म से ही अतुल बल या अप्रतिम वीर्यता नामक एक अतिशय-गुण होता है इतदर्थ उनके बल की तुलना विश्व की किसी शक्ति से नहीं की जा सकती है।

अध्याय - 4. चक्रवर्ती का वैभवादि

प्र. 301 तीर्थंकर ऋषभदेव के मोक्ष प्राप्ति के पूर्व शारीरिक अवगाहना एवं मोक्ष प्राप्ति के उपरान्त आत्म प्रदेशों की अवगाहना (ऊँचाई) कितनी थी?

उत्तर तीर्थंकर ऋषभदेव के मोक्ष प्राप्ति के पूर्व शारीरिक अवगाहना पाँच सौ धनुष (चार हाथ का एक धनुष) एवं मोक्ष प्राप्ति के उपरान्त आत्म-प्रदेशों की अवगाहना अन्तिम शरीर से किञ्चित् न्यून थी।

प्र. 302 मोक्ष प्राप्ति के उपरान्त सिद्ध भगवान् के आत्म प्रदेशों की अवगाहना अन्तिम शरीर से किञ्चित् न्यून में क्या विशेषता है?

उत्तर मोक्ष प्राप्ति के उपरान्त अन्तिम शरीर से सिद्धों के आत्मप्रदेशों की अवगाहना किञ्चित् न्यून होना यह सर्वत्र आगम प्रमाणिक माना गया है, क्योंकि शरीर की अवगाहना को हीनाधिक करने वाले उस आयु कर्म का क्षय हो चुका है। परन्तु किञ्चित् न्यून का प्रमाण कितना होगा यह विचार करने योग्य है।

प्र. 303 मनुष्य के अन्तिम शरीर से मुक्त होने के उपरान्त उस अन्तिम शरीर से सिद्ध परमेष्ठी के आत्म-प्रदेशों की अवगाहना किञ्चित् न्यून जो सर्वत्र आगम में वर्णित की गई है उस किञ्चित न्यून का सही कारण व प्रमाण क्या है?

उत्तर सम्पूर्ण दृश्यमान मनुष्य के शरीर की अवगाहना को लक्ष्य में रखकर किञ्चित् ऊन चरम शरीर प्रमाण सिद्धों के आत्म प्रदेशों की अवगाहना का जो कथन किया गया है उसके प्रसंग पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होगा कि शरीर के भीतर मुख, उदर आदि में आत्म प्रदेशों से शून्य भाग भी है, उसको घटाने पर शरीर का घनफल एक तृतीय (1/3) भाग शून्य होगा अत: तिलोय पण्णत्ति ग्रन्थ के अनुसार यह सैद्धान्तिक कथन है कि अंतिम शरीर से एक तृतीयांश (1/3) भाग प्रमाण हीन सिद्धों की अवगाहना जानना चाहिए। (ति.प.)

प्र. 304 चक्रवर्ती महापुरुष किसे कहते हैं?

उत्तर पूर्व जन्म की तपस्या के पुण्य से स्वर्गिक सुखों का भोगकर मनुष्य लोक की कर्मभूमि में जन्म लेकर षट्खण्ड पृथ्वी के अधिपति रूप पुण्य पुरुष कहलाने वाले चक्ररत्न आदि चौदह रत्नों और कालनिधि आदि नव निधियों के जो स्वामी होते हैं उन्हें चक्रवर्ती कहते हैं।

प्र. 305 जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी वर्तमान अवसर्पिणी के दुषमासुषमा काल में उत्पन्न हुये बारह चक्रवर्तियों के नाम कौन-से हैं?

उत्तर बारह चक्रवर्तियों के नाम क्रमश: 1. भरत, 2. सगर, 3. मघव, 4. सनत्कुमार, 5. शान्तिनाथ, 6. कुन्थुनाथ, 7. अरहनाथ, 8. सुभौम, 9 पद्मनाथ (महापद्म), 10. हरिषेण, 11. जयसेन, और 12. ब्रह्मदत्त इस प्रकार हैं।

प्र. 306 ऊपर वर्णित भरत आदिक बारह चक्रवर्तियों की जन्मभूमि कौन-सी थीं?

उत्तर भरत, सगर आदिक बारह चक्रवर्तियों की जन्मभूमियाँ क्रमशः- 1. अयोध्या, 2.अयोध्या, 3. श्रावस्ती (कौशलपुर), 4. हस्तिनागपुर, 5. हस्तिनागपुर, 6. हस्तिनागपुर, 7. हस्तिनागपुर, 8 अयोध्या, 9. हस्तिनागपुर, 10. कपिलनगर (भोगपुर), 11. कौशाम्बी, 12. कंपिलनगर इसप्रकार थीं।

प्र. 307 भरत, सगर आदिक बारह चक्रवर्तियों के जनक और जननी के शुभ नाम क्या थे?

उत्तर भरत, सगर आदिक बारह चक्रवर्तियों के जनक (पिता), जननी (माता) के क्रमशः शुभ नाम-1. ऋषभदेव-यशस्वति, 2. विजय-सुमंगला, 3. सुमित्र-भद्रवति, 4. विजय-सहदेवी, 5. विश्वसेन-ऐरादेवी, 6. सुरसेन-श्रीकान्ता, 7.सुदर्शन-मित्रसेना, 8. कीर्तिवीर्य-तारादेवी, 9.पद्मरथ-मयूरीप्रिया, 10. हरिकेतु-विप्रादेवी, 11.श्रीविजय-यशोवती और 12. ब्रह्मरथ-चूलादेवी जानना चाहिए।

प्र. 308 भरत, सगर आदिक बारह चक्रवर्तियों की उत्पत्ति के समय कौन-से तीर्थंकर का तीर्थकाल प्रवर्तमान था?

उत्तर भरत चक्रवर्ती प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव (वृषभनाथ) के तीर्थकाल में उन तीर्थंकर के ही समय उत्पन्न हुए थे। सगर चक्रवर्ती तीर्थंकर अजितनाथ के ही तीर्थकाल के समय उत्पन्न हुए थे। मघव चक्रवर्ती की उत्पत्ति के समय तीर्थंकर धर्मनाथ का तीर्थकाल प्रवर्तन था। सनत्कुमार चक्रवर्ती की उत्पत्ति के समय भी धर्मनाथ तीर्थंकर का तीर्थकाल प्रवर्तमान था। तीर्थंकर शांतिनाथ, तीर्थंकर कुन्थुनाथ और तीर्थंकर अरहनाथ स्वयमेव चक्रवर्ती थे। सुभौम चक्रवर्ती की उत्पत्ति के समय तीर्थंकर अरहनाथ के मोक्षोपरान्त उनका ही तीर्थकाल प्रवर्तमान था। पद्मनाथ (महापद्म) चक्रवर्ती की उत्पत्ति के समय तीर्थंकर मल्लिनाथ का तीर्थकाल प्रवर्तमान था। हरिषेण चक्रवर्ती की उत्पत्ति के समय तीर्थंकर मुनिसुव्रत का तीर्थकाल प्रवर्तमान था। जयसेन चक्रवर्ती की उत्पत्ति के समय तीर्थंकर नमिनाथ का तीर्थकाल प्रवर्तमान था और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की उत्पत्ति के समय तीर्थंकर नेमिनाथ का तीर्थकाल प्रवर्तमान था।

प्र. 309 चक्रवर्तियों के शरीर में पांचों इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य विषय सम्बन्धी बल कितना होता है?

उत्तर चक्रवर्ती अपनी स्पर्शनेन्द्रिय से 9 योजन तक का विषय, रसनेन्द्रिय से 9 योजन तक का विषय और घ्राणेन्द्रिय से भी 9 योजनों तक का विषय जान लेते हैं, चक्षुरिन्द्रिय से $47263\frac{7}{20}$ योजन तक देख सकते हैं और श्रोत्रेन्द्रिय से 12 योजन तक का शब्द सुन लेते हैं।

प्र. 310 चक्रवर्तियों के सप्तांग बल कौन-से होते हैं?

उत्तर चक्रवर्तियों के 1. स्वामी, 2 अमात्य, 3 देश, 4. दुर्ग, 5. खजाना, 6. षडंगबल और 7. मित्र इस तरह सात अंगबल होते हैं।

प्र. 311 चक्रवर्तियों का षडंगबल किस तरह का होता है?

उत्तर 1.चक्रबल, 2. चौरासी लाख भद्र हस्थी (गज), 3. चौरासी लाख रथ, 4. अठारह करोड़ जातिवंत (सुलक्षणयुत) घोड़े, 5. चौरासी करोड़ वीरभट (पैदल सैनिक-योद्धा), 6. असंख्यात विद्याधर सैन्य

रूप चक्रवर्तियों का षडंगबल होता है।

प्र. 312 चक्रवर्तियों के दशांग भोग कौन-से होते हैं?

उत्तर चक्रवर्तियों के 1. दिव्यपुर (पट्टण), 2. दिव्य भाजन, 3. दिव्य-भोजन, 4. दिव्य शय्या, 5. दिव्य आसन, 6. दिव्य नाटक, 7. दिव्य रत्न, 8. दिव्य निधियाँ, 9. दिव्य सैन्य और 10. दिव्य वाहन इस तरह दशांग भोग होते हैं।

प्र. 313 चक्रवर्ती के भोग रूप दिव्य-रत्न कौन-से होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के दिव्य-रत्न चौदह होते हैं। जिनके नाम हैं- 1. सेनापतिरत्न, 2. गृहपतिरत्न(भद्रमुख-हर्म्यपति), 3. पुरोहित रत्न (बुद्धिसमुद्र), 4. तक्षरत्न (कामवृष्टि-स्थपति), 5. स्त्रीरत्न, 6. गजपतिरत्न (विजयगिरि), 7. अश्वरत्न (पवनंजय), 8. चक्ररत्न (सुदर्शनचक्र), 9. छत्ररत्न (सूर्यप्रभ), 10. खड्गरत्न (भद्र-मुख असि), 11. दण्डरत्न (प्रवृद्धवंग), 12. काकिणी रत्न, 13. चूड़ामणि रत्न (चिंतामणि), 14. धर्मरत्न (चर्मरत्न)।

प्र. 314 चक्रवर्ती के सेनापतिरत्न का क्या महत्व है?

उत्तर एक आर्यखण्ड और पाँच म्लेच्छखण्डों रूप षट्खण्डों तथा अन्य दिग्विष्टरों की विजय प्राप्ति में सहायक सेना नायक रूप सेनापतिरत्न है।

प्र. 315 चक्रवर्ती के गृहपतिरत्न का क्या महत्त्व है?

उत्तर राजमहल का हिसाब-किताब (लेखा-जोखा) आदि रूप व्यवहार चलाने वाला भण्डारी गृहपतिरत्न होता है।

प्र. 316 चक्रवर्ती के पुरोहितरत्न का क्या महत्त्व है?

उत्तर धर्मप्रेरक बुद्धि द्वारा सर्वजनों को धर्म, कर्मानुष्ठान पूर्वक सलाह व प्रेरणा रूप बुद्धि का समुद्र पुरोहितरत्न होता है।

प्र. 317 चक्रवर्ती के तक्षरत्न से क्या प्रयोजन है?

उत्तर राजमहल, मंदिर, प्रासाद, पुल और तम्बू आदिक को उत्तम रीति से तैयार करने-करवाने वाला उत्तम कारीगर रूप तक्षरत्न है।

प्र. 318 चक्रवर्ती के स्त्रीरत्न का क्या महत्त्व है?

उत्तर चक्रवर्ती की छ्यानवे हजार युवती-बल्लभाओं में जो अत्यन्त प्रिय प्रमुख बल्लभा होती वह पट्टरानी रूप स्त्रीरत्न है।

प्र. 319 चक्रवर्ती के गजपतिरत्न से क्या इष्ट सिद्ध होता है?

उत्तर रथ सवारी के प्रयोजन हेतु एवं अरिनृपों के गजघटाओं का विघटन करने वाला गजपति रत्न विजय सिद्धि का कारण है।

प्र. 320 चक्रवर्ती के अश्व रत्न से क्या प्रयोजन सिद्ध होता है?

उत्तर तिमिश्र गुफा के कपाट- विघटन होते ही बारह योजन के क्षेत्र को एक छलांग में लांघने और दौड़ने की

सामर्थ्य रखने वाला अश्वरत्न होता है। जिसके माध्यम से चक्रवर्ती अपनी विशाल सेना को लेकर विजयार्ध पर्वत के आगे जाकर भी वहाँ पर स्थित म्लेच्छ खण्डों पर विजय प्राप्त करने में सफलता प्राप्त करता है।

प्र.321 चक्रवर्ती के चक्ररत्न का क्या सदुपयोग होता है?

उत्तर अन्याय व अनीति-कारक जनों का संहारक चक्ररत्न आयुध सेना के अग्रिम गतिमान चहुँओर प्रकाश फैलाने वाला और चक्रवर्ती की छहों खण्डों पर विजय पताका फैलाने वाला प्रमुख चक्र रत्न होता है।

प्र. 322 चक्रवर्ती का छत्ररत्न किस तरह सुशोभित होता है?

उत्तर कटक (सेना) के ऊपर आने वाली वर्षादिक बाधाओं को दूर करने वाला रत्न छत्ररत्न कहलाता है जो सर्व जनानन्दमय सुशोभित होता है।

प्र. 323 चक्रवर्ती का खड्गरत्न क्या प्रयोजन रखने वाला है?

उत्तर चक्रवर्तियों के चित्तोत्सव को करने वाला अन्यायी जनों का संहारक खड्गरत्न होता है।

प्र. 324 चक्रवर्ती का दण्डरत्न का क्या विशिष्ट कार्य होता है?

उत्तर चक्रवर्ती का दण्डरत्न मार्ग को स्वच्छ व निरापद करने वाला, गुफाओं के कपाट खोलने वाला, वृषभांचल पर्वत पर प्रशस्ति लिखने के काम आने वाला, शत्रुओं को दण्डित करने वाला तथा एक हजार योजन प्रमाण तक की भूमि को चीर देने में समर्थ ऐसे विशिष्ट कार्य का संपादक दण्डरत्न होता है।

प्र. 325 चक्रवर्ती के काकिणीरत्न की क्या महिमा है?

उत्तर काकिणी अस्त्र गुफाओं के घोर अंधकार में प्रकाश फैलाने वाला गुफाओं या अंधकार मय प्रदेशों की दीवार पर जिस रत्न से सूर्य-चन्द्र मण्डल का आकार लिखते ही अतिशयवान प्रकाश हो जावे ऐसा रत्न व प्रशस्ति लिखने का भी कार्य करने वाला रत्न काकिणीरत्न विशिष्ट महिमा कारक होता है।

प्र. 326 चक्रवर्ती के चूड़ामणि रत्न की क्या विशेषता है?

उत्तर इच्छित पदार्थों को देने में समर्थ तथा बाह्य वस्तुओं को प्रकाशित करने वाला रत्न विशेष चूड़ामणि रत्न कहलाता है।

प्र. 327 चक्रवर्ती का धर्मरत्न या चर्मरत्न किसे कहा जाता है?

उत्तर समुद्र में या भूमि जल मग्न हो जाने पर नीचे भूमि-सम सहारा बन छत्ररत्न से मिलकर अण्डाकार बनकर सम्पूर्ण कटक (सेना) की रक्षा करने वाला, संसार समुद्र से पार लगाने वाले धर्मसम बड़े-बड़े नद व नदियों तथा समुद्र से पार लगाने वाला धर्म या चर्मरत्न कहलाता है।

प्र. 328 चक्रवर्ती के इन चौदह रत्नों में से किन्हीं रत्नों में अन्य विशेष कार्य व प्रमाणादि सम्बंधी क्या विशेषता है?

उत्तर
- चक्रवर्ती के सेनापति आदिक सात रत्न चेतन (सजीव) तथा चक्ररत्न आदिक सात रत्न अजीव होते हैं।

- पुरोहित रत्न धर्म-कर्म रूप अनुष्ठानों के साथ-साथ रण संग्राम में सैनिकों के रोग व घाव-व्रणादिक के सुयोग्य उपचार का कार्य भी किया करता है।
- पट्टरानी रूपी स्त्रीरत्न के साथ क्रीड़ा के समय चक्रवर्ती स्वाश्रित अन्य रानियों के साथ भी क्रीड़ा करने के काल में अधिकाधिक छ्यानवे हजार भी रूप धारण कर लेता है जिसे अवलोकन कर पट्ट (मुख्य) रानी रूपी स्त्रीरत्न को अत्यन्त सन्तुष्टि का अनुभव होता है।
- छत्र रत्न का प्रमाण एक धनुष प्रमाण होते हुए भी चक्रवर्ती के स्पर्श किये जाने पर वह छत्ररत्न आवश्यकतानुसार बारह योजन तक विस्तृत हो जाया करता है।
- काकिणी रत्न का प्रमाण चार अंगुल प्रमाण वाला होता है तथा इस रत्न के माध्यम से गुहादिक अंधकार वाले स्थलों पर एक-एक योजन के अन्तराल से सूर्य-चन्द्र-सम प्रकाश की उपलब्धि सहज होती है।
- चूड़ामणि रत्न चार अंगुल लम्बा और दो अंगुल चौड़ा प्रमाण वाला होते हुए रोग-शोक नाशक तथा बारह योजन तक प्रकाश को विस्तृत करने वाला भी वर्णित किया गया है।
- धर्मरत्न (चर्मरत्न) दो हाथ प्रमाण होता है परन्तु प्रसंगवश चक्रवर्ती का हाथ लगते ही उसका विस्तार बारह योजन-प्रमाण हो जाता है, और विशेष इतना ही नहीं बल्कि आवश्यकतानुसार विस्तृत किये गये धर्मरत्न पर प्रातः बोया हुये धान्य, अनाज व फलादि सायंकाल तक सपक्व हो भोज्य योग्य हो जाया करते हैं।

प्र. 329 चक्रवर्ती के इन चौदह रत्नों की रक्षा-सुरक्षा करने हेतु कोई देवादिक सुनिश्चित होते हैं क्या?

उत्तर हाँ; चक्रवर्ती के सेनापति आदिक चौदह रत्नों में से प्रत्येक रत्न की रक्षा-सुरक्षा एक-एक हजार यक्ष देव किया करते हैं जिनकी नियोगनी यक्षणी भी इस कार्य में सहयोगी होती हैं।

प्र. 330 हजारों यक्ष देव देवियों से सुरक्षित सुभौम और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती सप्तम् पृथ्वी के सबसे घोर नरक में जाकर घोर दुःखों का फल भोगने लगे उन्हें नरक में जाने से वे यक्ष देव-देवी क्यों नहीं बचा सके?

उत्तर संसारी जीवों के पुण्य और पाप के फल को बदलने या टालने में कोई भी सरागी देवी-देवता समर्थ नहीं होते। स्वयंकृत कर्म का फल संसारियों को भोगना ही पड़ता है। वीतरागी पञ्चपरमेष्ठी की भक्ति से अर्जित पुण्य; पाप को भी टालने या बदलने में कारण बन सकता है बस इतना ही कहना शेष होगा कि सामने वाला भव्य सम्यग्दृष्टि और तीव्र धर्म पुरुषार्थी होना चाहिए। न कि किसी यक्ष देव-देवी के भरोसे रहना चाहिए।

प्र. 331 चक्रवर्ती के चौदह रत्न कहाँ- किस जगह उत्पन्न होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के चौदह रत्नों में से सेनापति, गृहपति, पुरोहित और स्त्रीरत्न स्व-स्व नगरों में उत्पन्न होते हैं। गजपति और अश्व रत्न विजयार्ध पर्वत पर उत्पन्न होते हैं। चक्र, छत्र, खड्ग और दण्ड रत्न

आयुधशाला में उत्पन्न होते हैं तथा काकिणी, चूड़ामणि और धर्म (चर्म) रत्न श्रीगृह में उत्पन्न होते हैं।

प्र. 332 चक्रवर्ती के दशांग भोगों के अन्तर्गत नव निधियाँ कौन-सी होती हैं?

उत्तर चक्रवर्ती की दिव्य नव-निधियाँ- 1. कालनिधि, 2. महा कालनिधि, 3. माणक निधि, 4. पिंगल निधि, 5. नैसर्पनिधि, 6. पद्मनिधि, 7. पाँडुक निधि, 8. शंखनिधि और 9. सर्वरत्ननिधि।

प्र. 333 चक्रवर्ती की काल नामक निधि कौन-कौन-से पदार्थों को देने वाली सर्वोत्तम निधि कहलाती है?

उत्तर सर्वप्रथम यह कालनिधि सर्वऋतुओं अनुरूप द्रव्य फल-फूलादिक फलती है तथा इस निधि के माध्यम से ज्योतिषशास्त्र, निमित्तशास्त्र, न्याय शास्त्र, व्याकरण शास्त्र, छंदालंकार शास्त्र, लोक व्यवहार शास्त्र और पुराण आदिक का सद्भाव अर्थात् प्राप्ति होती है।

प्र. 334 चक्रवर्ती की महाकाल नामक निधि में किन-किन वस्तुओं का सद्भाव पाया जाता है?

उत्तर चक्रवर्ती की महाकाल निधि से षट्कर्मों के योग्य साधन तथा भोजन और भाजन (बर्तन) एवं अनेक धातुएँ प्राप्त होती हैं।

प्र. 335 चक्रवर्ती की माणक नामक निधि राज्य में कौन-सी वस्तुएँ उपलब्ध कराती है?

उत्तर चक्रवर्ती की माणक निधि कवच, ढाल, तलवार, बाण, शक्ति, धनुष तथा चक्र आदिक नाना प्रकार के दिव्य शस्त्रों व आयुधों के साथ नीति शास्त्रों को भी प्रदान कराती है।

प्र. 336 चक्रवर्ती की पिंगल नामक निधि कौन-सी वस्तुओं से परिपूर्ण करती है?

उत्तर चक्रवर्ती की पिंगल निधि कटक, कटिसूत्र, कुण्डल और केयूर इत्यादिक अनेक दिव्य आभूषणों से पुण्यवानों को परिपूर्ण करती है।

प्र. 337 चक्रवर्ती की नैसर्प-निधि से क्या-क्या सुख रूप साधन उपलब्ध होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती की नैसर्प नामक निधि से आसन, शय्या, प्रासाद व मंदिरों की सहज रूप से उपलब्धि हो जाया करती है।

प्र. 338 चक्रवर्ती की पद्मनामक निधि कौन-से वस्त्र प्रदान करती है?

उत्तर चक्रवर्ती की पद्मनिधि पादाम्बर, चीन, महानेत्र, दुकूल, उत्तम कम्बल तथा नाना प्रकार के वर्णादिक से परिपूर्ण वस्त्रों को प्रदान करती है।

प्र. 339 चक्रवर्ती की पाण्डुक नामक निधि कौन-से पदार्थों को फलती है?

उत्तर चक्रवर्ती की पाण्डुक-निधि शालि, ब्रीहि, जौ आदिक समस्त धान्य तथा मनोहर षट् रसादिक से परिपूर्ण करती है।

प्र. 340 चक्रवर्ती की शंख नामक निधि कौन-सी वस्तुएँ अर्पित कर भव्यों की श्रवणेन्द्रिय के लिए संतृप्त करती है?

उत्तर चक्रवर्ती की शंख नामक निधि भेरी, शंख, नगाड़े, वीणा, झल्लरी, मृदंग और नाना तरह के वाद्यों को अर्पित कर भव्यजनों की श्रवणेन्द्रिय को प्रफुल्लित करने वाली होती है।

प्र. 341 चक्रवर्ती की सर्वरत्न नामक निधि पुण्यवानों के लिए कौन-कौन-से उत्तमोत्तम रत्नों को फलती है?

उत्तर चक्रवर्ती के सर्व रत्न निधि इन्द्रनीलमणि, महानीलमणि, वज्रमणि (सूर्यकान्तमणि और चंद्रकान्त मणि) आदिक बड़ी-बड़ी ज्योति शिखा के धारक उत्तमोत्तम रत्नों को कल्पतरुसम फलती है।

प्र. 342 चक्रवर्ती की नवनिधियाँ कहाँ उत्पन्न (प्राप्त) होती हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के महापुण्य-प्रभाव से भोगोपभोग को देने वाली ये अक्षय नवनिधियाँ श्रीपुर में उत्पन्न (प्रकट) होती हैं, और दूसरे मत से ये नवनिधियाँ नदीमुख से उत्पन्न होती हैं।

प्र. 343 चक्रवर्ती की नवनिधियों की रक्षा कौन करते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती की नवनिधियों की रक्षा हमेशा निधिपालक नामक देव किया करते हैं और दूसरे मत से प्रत्येक निधि की रक्षा में एक-एक हजार यक्ष नियुक्त होते हैं।

प्र. 344 चक्रवर्ती की नवनिधियाँ किस रत्न के आधीन रहती हैं?

उत्तर सर्व मनोरथों को पूर्ण करने वाली ये नवनिधियाँ गृहपति रत्न के आधीन होती हैं।

प्र. 345 चक्रवर्ती की नवनिधियों का आकार व प्रमाणादिक किस तरह का होता है?

उत्तर चक्रवर्ती की नव निधियाँ गाड़ी के सदृश आकार वाली चार-चार भौरों (चक्रों), आठ-आठ पट्टियों से सहित नौ योजन चौड़ी, बारह योजन लम्बी, आठ योजन गहरी और वक्षार गिरि के समान विशाल कुक्षी से सहित होती हैं।

प्र.346 चक्रवर्ती व राजाओं के चार कर्त्तव्य कौन-से होते हैं?

उत्तर चक्रवर्तियों के चार कर्त्तव्य इस तरह होते हैं-

1. **आत्मपालन**- निजात्म रक्षा की व्यवस्था करना।

2. **मतिपालन**- अपनी बुद्धि व विवेक को जाग्रत रखना।

3. **कुलपालन**- राजकुलाचार पर ध्यान रखना। और

4. **प्रजापालन**- पुत्रवत् प्रजा का पालन करना।

प्र.347 चक्रवर्तियों की चार तरह की राज विद्याएँ कौन-सी हैं?

उत्तर चक्रवर्तियों की चार तरह की राजविद्याएँ इस तरह होती हैं-

1. **आन्वीक्षिकी**- अपना स्वरूप जानना, निजबल की पहचान करना, हेयोपादेय का ज्ञान होना, सत्यासत्य की समझ होना और रत्न परीक्षक की तरह सूक्ष्म दृष्टि का होना।

2. **त्रयी**- शास्त्रानुसार धर्म-अधर्म का मर्म समझकर अधर्म छोड़कर धर्म में प्रवृत्ति करना।

3. **वार्ता**- अर्थ-अनर्थ को समझकर प्रजाजनों का रक्षण करना।

4. **दण्डनीति**- योग्य दण्ड-विधान द्वारा दुष्ट-जनों को मार्ग पर लाना।

प्र. 348 चक्रवर्ती व राजाओं के छह विशेष गुण कौन-से होते हैं?

उत्तर राजाओं के छह गुण इस तरह होते हैं-

1. संधि- अन्य राजाओं से प्रेम-वात्सल्य व्यवहार बनाकर रखना।

2. निग्रह- अन्याय रोकने के लिए युद्ध करना।

3. यान- विविध प्रकार के वाहनों व साधनों का ज्ञान।

4. आसन- राज्य व्यवस्थानुसार स्थान का अनुभव।

5. संस्थान- वचन का दृढ़ संकल्प।

6. आश्रय- अपने से बलिष्ठ का सहयोग लेना और अपने से कमजोर को सहारा देना।

प्र.349 मुकुटबद्ध राजा कितनी श्रेणियों का स्वामी होता है?

उत्तर मुकुटबद्धराजा अठारह श्रेणियों का स्वामी होता है, जो श्रेणियाँ इस तरह हैं-

1. सेनापति- समस्त सेनाओं का नायक, **2. गणकपति**- ज्योतिषी आदिकों का नायक, **3. वणिक्पति**- व्यापारियों का नायक, **4. मंत्री**- पंचांग, मंत्र-विषय में प्रवीण, **5. दण्डपति**-सेना नायक, **6. महत्तर**- कुलवान अर्थात् कुलविशेष में उच्चता, **7. तलवर**-कोतवाल का स्वामी (नगरकोतवाल) **8. ब्राह्मण**-वर्ण प्रमुख (स्वामी), **9. क्षत्रिय (क्षत्री)**-शरणागतों का रक्षक, **10. वैश्य**- व्यापारी, **11. शूद्र**- सेवा कार्य-कारक, **12. हस्ती**-विजयश्री दाता, **13. अश्व**- सैनिक सवारी, **14. रथ**- आवागमन कारक, **15. पदाति**-चतुरंग सेना-बलस्वामी, **16. पुरोहित**-राज-पण्डित, **17. आमात्य**-देश का अधिकारी और **18. महामात्य**-समस्त राज्यकार्यों का अधिकारी।

प्र.350 मुकुटबद्ध राजाओं में विशिष्ट पदस्थान कौन-से होते हैं?

उत्तर 500 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी अधिराजा होता है। 1000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी महाराजा होता है। 2000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी अर्धमाण्डलीक होता है। 4000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी माण्डलीक होता है। 8000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी महामाण्डलीक होता है। 16000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी अर्धचक्री (त्रिखण्डाधिपति) होता है और 32000 मुकुटबद्ध राजाओं का स्वामी सकल चक्रवर्ती (षट्खण्डाधिपति) होता है।

प्र.351 चक्रवर्ती का स्त्री परिवार कितना और किस जगह का होता है?

उत्तर चक्रवर्ती की स्त्री परिवार एक पट्टरानी से अतिरिक्त 96 हजार स्त्री रूप होता है। इनमें आर्य खण्ड से 32 हजार राजकन्यायें, विजयार्धश्रेणी से सम्बन्धित 32 हजार विद्याधर राज-कन्यायें और पंचम्लेच्छ खण्डों से 32 हजार राजकन्यायें प्राप्त होती हैं।

प्र.352 चक्रवर्ती की पट्टरानी से वंशोत्पत्ति (संतानोत्पत्ती) क्यों नहीं होती?

उत्तर चक्रवर्ती की पट्टरानी शंखावर्त योनियुत होने के कारण वह गर्भ-धारण की अयोग्य स्थिति में बंध्या ही रहती है और वंशोत्पत्ति से वंचित रहती है।

प्र.353 चक्रवर्ती की पट्टरानी से अतिरिक्त अन्य रानियों से कितनी संतानें (पुत्र-पुत्रियाँ) उत्पन्न होती हैं?

उत्तर चक्रवर्ती की संख्यात हजार संतानें उत्पन्न होती हैं।

प्र.354 चक्रवर्ती का बन्धुवर्ग कितना विशाल होता है?

उत्तर चक्रवर्ती का बन्धुवर्ग 50 हजार संख्या में बड़ा विशाल होता है।

प्र.355 चक्रवर्ती के सम्पूर्ण वैद्य कितनी संख्या में होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के शारीरिक वैद्य 361 एवं इतर वैद्य 361 होते हैं।

प्र.356 चक्रवर्ती के रसोइयों की संख्या कितनी होती है?

उत्तर चक्रवर्ती के रसोइयों की संख्या 360 होती है।

प्र.357 चक्रवर्ती के अंग रक्षकों की संख्या कितनी होती है?

उत्तर चक्रवर्ती के अंगरक्षकों की संख्या 360 होती है।

प्र.358 चक्रवर्ती के परिचारक (सेवक) गणबद्धदेव कितने होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के परिचारक (सेवक) गणबद्ध देव 32 हजार होते हैं।

प्र.359 चक्रवर्ती की नाट्यशालाओं की संख्या कितनी होती है?

उत्तर चक्रवर्ती की नाट्यशालाओं की संख्या 32 हजार होती है।

प्र.360 चक्रवर्ती की संगीत शालाओं की संख्या कितनी होती है?

उत्तर चक्रवर्ती की संगीत शालाओं की संख्या 32 हजार होती है।

प्र.361 चक्रवर्ती के अधीनस्थ कितने देश होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के अधीनस्थ 32 हजार देश होते हैं।

प्र.362 चक्रवर्ती के राज्य में कृषि-उपयोगी कितने हल होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के राज्य में कृषि उपयोगी एक करोड़ हल होते हैं।

प्र.363 चक्रवर्ती के राज्य में कितने गौ मण्डल (गौशालाएँ) होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के राज्य में तीन करोड़ गौ मण्डल होते हैं।

प्र.364 चक्रवर्ती के गृह (राजभवन) में रसोई-पाक हेतु कितने स्वर्ण के बड़े हण्डे (बर्तन) होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के राजगृह में एक करोड़ स्वर्ण के हण्डे होते हैं।

प्र.365 चक्रवर्ती के अधीनस्थ कितने ग्राम होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के अधीनस्थ दीवार से घिरे 96 करोड़ ग्राम होते हैं।

प्र.366 चक्रवर्ती के अधीनस्थ कितने नगर होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के अधीनस्थ परकोटे और चार द्वारों से युक्त 75 हजार नगर होते हैं।

प्र.367 चक्रवर्ती के राज्य में कितने खेट होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के राज्य में नदी व पर्वतों से वेष्ठित गाँव रूप 76 करोड़ खेट होते हैं।

प्र.368 चक्रवर्ती के राज्य में कितने खर्वट होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के राज्य में पर्वतों से घिरे हुए गाँव रूप 24 हजार खर्वट होते हैं।

प्र.369 चक्रवर्ती के राज्य में कितने मटम्ब होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के राज्य में पाँच सौ ग्रामों से संयुक्त रूप चार हजार मटम्ब होते हैं।

प्र.370 चक्रवर्ती के राज्य में कितने पट्टण होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के राज्य में रत्न उत्पत्ति के स्थान रूप पट्टण 48 हजार होते हैं।

प्र.371 चक्रवर्ती के राज्य में होने वाले संवाहन किसे कहते हैं और वे कितने होते हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के राज्य में उपसमुद्र के तट पर रहने वाले गाँवों को संवाहन कहते हैं और वे 74 हजार होते हैं।

प्र.372 चक्रवर्ती के राज्य में होने वाली दुर्गाटवी किसे कहा जाता है और कितनी संख्या में हुआ करती हैं?

उत्तर चक्रवर्ती के राज्य में पर्वतों पर रहने वाले व वन से घिरे गावों को दुर्गाटवी कहा जाता है और उनकी संख्या 28 हजार होती हैं।

प्र.373 चक्रवर्ती के राजगृह में शंख, भेरी और पटह कितनी संख्या में होते हैं और उनकी ध्वनि सुनाई देने की दूरी का प्रमाण कितना है?

उत्तर चक्रवर्ती के राजगृह में शंख, भेरी (नगाड़ा) और पटह (वाद्यविशेष) की संख्या 24-24 होती है और इनकी ध्वनि 12 योजन तक सुनाई देती है।

प्र.374 भरत चक्रवर्ती के कौन-से पुत्र ने मिथ्या मान्यता से भव-भव में भ्रमण कर, पापों का भार हल्का होने पर अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर-वर्द्धमान तीर्थंकर बन भव-भ्रमण से मुक्ति पायी थी?

उत्तर भरत चक्रवर्ती के पुत्र मारीचि कुमार ने मिथ्या मान्यता (वेश) प्रचलित कर भव-भव में भ्रमण कर, पापों का भार हल्का होने पर अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर वर्द्धमान तीर्थंकर बन भव-भ्रमण से मुक्ति पायी थी।

प्र.375 भरत चक्रवर्ती के कौन-से और कितने पुत्र नित्य निगोद से आये थे?

उत्तर भरत चक्रवर्ती के भद्र, विवर्धन आदि शुभ नाम वाले 923 पुत्र नित्य-निगोद से आये थे।

प्र.376 भद्र, विवर्धन आदि 923 पुत्र किस तरह से नित्य-निगोद से निकल कर मनुष्य पर्याय को प्राप्त हुए?

उत्तर जिस भाड़ में भूजे जाने वाले कोई-कोई चने भूजे जाते समय उचटकर भाड़ से बाहर निकल जाते हैं वैसे ही अनादि काल से कर्मों के सताये व दुःखों को भोगते हुए, कर्मों का भार हल्का होने से वे भद्र, विवर्धन आदि 923 पुत्र नित्यनिगोद से बाहर आकर मनुष्य पर्याय को प्राप्त हुए थे।

प्र.377 भद्र, विवर्धन आदि 923 पुत्रों द्वारा अपने माता-पिता आदिक से मौन धारण करने का कारण क्या था?

उत्तर भद्र, विवर्धन आदि 923 पुत्रों द्वारा अपने माता-पिता आदिक से मौन धारण करने का मुख्य कारण बड़ा ही रहस्यमय था कि वे पुत्र अनादिकाल से नित्य निगोद में एक श्वास में अठारह बार जन्म-मरण से होने वाले भयानक दुःखों को सहते-सहते जातिस्मरण कर संसार से भयभीत होकर जगत् के मोह-

जाल से उदासीन हो गये थे और माता-पितादिक से वार्तालाप करने से उन्हें मोह जागृत होगा और हमें संसार के व्यवहार में फँसना पड़ेगा अत: वे मौन-धारण कर धर्म-भावना के चिन्तवन में लीन बने रहते थे।

प्र.378 भरत चक्रवर्ती ने भद्र, विवर्धन आदिक 923 पुत्रों पर किस तरह का संदेह मन में धारण करते हुए तीर्थंकर ऋषभदेव जिनवर के समवसरण में किस-तरह का प्रश्न निवेदित किया था?

उत्तर भरत चक्रवर्ती ने भद्र, विवर्धन आदिक 923 पुत्रों के मौन धारण पर गूँगेपन का संदेह धारणकर समवसरण में यह प्रश्न किया था कि हे प्रभु, प्रथम तीर्थंकर के कुल में उत्पन्न हुए ये पुत्र गूँगे क्यों हैं?

प्र.379 भरत चक्रवर्ती द्वारा पुत्रों के गूँगेपन से सम्बन्धित पूछे जाने पर उसे भगवान् की वाणी द्वारा क्या समीचीन उत्तर प्राप्त हुआ था?

उत्तर भगवान् ने 923 पुत्रों के सम्बन्ध में कहा कि ये पुत्र गूँगे नहीं हैं बल्कि ये असार रूप इस संसार व जगत् से उदासीन हैं और यहाँ अब ये मोक्षमार्ग पाने अवश्य बोलेंगे।

प्र.380 भरत चक्रवर्ती के ऐसे निकट भव्य 923 पुत्रों ने आत्मकल्याण रूप मोक्ष-पुरुषार्थ को किस तरह सफल बनाया था?

उत्तर भरत चक्रवर्ती के निकट भव्य पुत्रों ने आत्म कल्याण रूप मोक्ष-पुरुषार्थ हेतु समवसरण में प्रभु से नम्र निवेदन के साथ मौन खोलते हुए अपनी आंतरिक भावना प्रकट करते हुए कहा कि हे प्रभु! हम अनादि-काल से निगोद के दु:ख सहते-सहते संसार के दु:खों से अत्यन्त भयभीत होकर आपकी शरण में आये हैं, हम आप जैसे अनन्त सुखी होकर संसार से मुक्ति की तीव्र अभिलाषा रखते हैं अत: हमें मोक्षमार्ग से उपकृत कीजिये जिस साधन से हम सम्पूर्ण दुष्ट कर्मों का क्षय कर मोक्ष-धाम को प्राप्त कर सकें; और उन सभी पुत्रों ने अपने पिता आदिक परिजनों को अचरज में डालते हुए सर्व वस्त्राभूषणों का त्याग कर, केशलोंच कर, निर्ग्रन्थ-मुनि दीक्षा को धारण कर लिया था।

प्र.381 भद्र, विवर्धन आदिक 923 पुत्रों ने निर्ग्रन्थ-मुनि बन तपस्या के माध्यम से क्या फल प्राप्त किया था?

उत्तर भद्र, विवर्धन आदिक 923 मुनियों ने अपने उत्कृष्ट वैराग्य घोर तपस्या व ध्यान के माध्यम से अल्प काल में ही सम्पूर्ण कर्मों की निर्जरा कर मोक्ष प्राप्ति-द्वारा सिद्धालय रूप अष्टम वसुधा में अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुखादिक गुणों के भण्डार रूप आत्मिक वैभव को पाकर अनन्तकाल पर्यन्त के लिए स्थायित्व अवस्था को प्राप्त किया था।

प्र.382 भरत चक्रवर्ती के लिए वैराग्य किस तरह हुआ एवं उनके वैराग्य का कारण क्या था?

उत्तर भरत चक्रवर्ती ने समवसरण में वृषभनाथ भगवान् का यह उपदेश सुना कि "अरे भव्य जीवो! तुम विकारी भावों को शीघ्र छोड़ो और हमारे समान अपने जैसे ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति के स्वामी बन स्वात्मा में राज्य करो" तब भगवान् का यह संदेश भरतेश्वर के अत्यन्त विरक्त मन में प्रवेश कर गया और एक दिवस दर्पण में मुख देखते समय भरत चक्रेश्वर की दृष्टि अपने एक श्वेत केश पर पड़ी; उसे देखते ही बस; भरतेश्वर को ऐसा लगा कि मानों मुक्तिपुरी से भगवान् के द्वारा प्रेषित विशिष्ट-संदेश-

वाहक दूत ही आ गया हो और वे संसार, शरीर और भोग से निर्विण्ण (वैरागी) हो गये।

प्र.383 भरतेश्वर ने वैरागी बनकर क्या कार्य सम्पन्न किया था?

उत्तर भरतेश्वर का आध्यात्मिक जीवन मोक्ष इच्छुक जनों के लिए चमत्कार का जनक रहा है उन्होंने छह खण्ड प्रमाण पौद्गलिक साम्राज्य का त्याग करके मुनि पद धारण करते समय केशों का लोच किया और तत्काल ही, नग्न दिगम्बर मुद्रा के साथ शुक्ल ध्यान के माध्यम से शत्रुध्वंस कलाँ में पारंगत वे सुयोगी भरत अंतर्मुहूर्त्त में ही मोहासुर का विनाश करके सर्वज्ञता रूप केवलज्ञान साम्राज्य के स्वामी हो गए। ऐसे मंगल क्षण में देवों ने गंधकुटी की रचना कर बत्तीस इन्द्रों ने भगवान् भरत की दिव्य पूजा सम्पन्न की।

प्र.384 केवलज्ञानी-सर्वज्ञ श्री भरत भगवान् से किस तरह से जन कल्याण सम्पन्न हुआ था।

उत्तर दीक्षा लेते ही अल्पकाल में ही सर्वज्ञता व कैवल्यता प्राप्त कर तीर्थंकर की अपेक्षा अद्भुत् विशेषता प्रदर्शित करने वाले भगवान् भरत ने भगवान् ऋषभनाथ के समान भरत क्षेत्र की आर्यखण्ड की धरा पर समस्त देशों में विहार कर जीवों के निज-आत्मकल्याण हेतु अपनी दिव्य वाणी के द्वारा उनका आत्मोद्धार किया था।

प्र.385 भगवान् भरत के लिए निर्वाण-मोक्ष की प्राप्ति कहाँ से हुई थी?

उत्तर भगवान् भरत के लिए निर्वाण की प्राप्ति कैलाश पर्वत से हुई थी।

प्र.386 भरत चक्रवर्ती के अलावा अन्य चक्रवर्तियों के लिए कौन-सी गति की प्राप्ति हुई थी?

उत्तर मोक्ष-पद को प्राप्त भरत चक्रवर्ती के अलावा सगर चक्रवर्ती भी मोक्ष-पद को प्राप्त हुए। मघव चक्रवर्ती ने सौधर्म स्वर्ग को पाया, सनत्कुमार चक्रवर्ती ने सानत्कुमार स्वर्ग को ही पाया। शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरहनाथ चक्रवर्ती ने मोक्ष-पद को पाया। सुभौम चक्रवर्ती ने महातम: पृथ्वी को पाया। पद्मनाथ (महापद्म), हरिषेण और जयसेन चक्रवर्ती ने मोक्ष-पद को प्राप्त किया। अंत में ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ने महातम: पृथ्वी को पाया। इस तरह स्व-स्व कृत कर्मों से चक्रवर्तियों ने भिन्न-भिन्न गति प्राप्त किया था।

प्र.387 नारायण महापुरुष किसे कहते हैं?

उत्तर पूर्व जन्म के विशिष्ट पुण्यार्जन से जो स्वर्ग जाकर पुन: यहाँ कर्म भूमि के मनुष्य रूप में त्रिखण्ड के अधिपति रूप पुण्य से जन्मधारण करता है उसे नारायण महापुरुष कहते हैं।

प्र.388 नारायण को किन-किन नामों से पुकारते हैं?

उत्तर नारायण को अर्धचक्री, वासुदेव, गोविन्द और हरि आदिक नामों से पुकारते हैं।

प्र.389 नारायण और प्रतिनारायण (प्रतिवासुदेव, प्रतिशत्रु, प्रतिहरि) में क्या विशेषता होती है?

उत्तर चक्र रत्न प्रतिनारायण के यहाँ उत्पन्न होता है लेकिन नारायण से परास्त होने पर चक्ररत्न का स्वामी नारायण हो जाया करता है यही इन दोनों में मुख्य विशेषता है।

प्र.390 जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी वर्तमान अवसर्पिणी के दुषमासुषमा काल में उत्पन्न हुए नौ

नारायणों के नाम कौन-से हैं?

उत्तर नौ नारायणों के नाम क्रमशः- 1. त्रिपिष्ट (त्रिपृष्ट), 2. द्विपिष्ट (द्विपृष्ट), 3. स्वयंभू, 4. पुरुषोत्तम, 5. नरसिंह (पुरुषसिंह), 6. पुंडरीक (पुरुषवर), 7. दत्त (पुरुषदत्त), 8. लक्ष्मण और 9. कृष्ण इस प्रकार हैं।

प्र.391 नौ नारायणों की जन्म भूमियों के नाम कौन-से हैं?

उत्तर नौ नारायणों की जन्म भूमियाँ क्रमशः 1. पौदनपुर, 2. द्वारकापुर, 3.हस्तिनागपुर, 4. हस्तिनागपुर, 5. चक्रपुर, 6. कुशाग्रपुर, 7. मिथलापुर, 8. अयोध्यापुरी और 9. मथुरानगरी इस तरह बतलाई गई हैं।

प्र.392 त्रिपिष्ट आदिक नौ नारायणों के जनक और जननी के नाम कौन-से थे?

उत्तर त्रिपिष्ट आदिक नौ नारायणों के जनक व जननी के नाम क्रमशः -

1. प्रजापति-मृगावती, 2. ब्रह्मभूत-माधवी, 3. रौद्रनन्द-पृथिवी, 4. सौम-सीता, 5. प्रख्यात-अम्बिका, 6. वरसेन-लक्ष्मी, 7. शिवाकर-केशिनी, 8. दशरथ-सुमित्रा, 9. वसुदेव-देवकी इस तरह नाम थे।

प्र.393 पूर्व कथित नारायणों प्रतिशत्रु-प्रतिनारायणों के नाम क्या थे?

उत्तर नौ प्रतिनारायणों के नाम क्रमशः - 1. अश्वग्रीव, 2. तारक, 3. मेरक, 4. निशुंभ, 5. प्रल्हाद (प्रहरण), 6. मधुकैटभ, 7. बली, 8. रावण और 9. जरासंध इस तरह थे।

प्र.394 नौ प्रतिनारायणों की जन्म-राजधानियों के नाम क्या थे?

उत्तर नौ प्रतिनारायणों की जन्म-राजधानियाँ क्रमशः - 1. अल्कापुर, 2. विजयपुर, 3. नंदनपुर, 4. हरिपुर, 5. सिंहपुर, 6. पृथ्वीपुर, 7. सूर्यपुर, 8. लंका और 9. राजगृही इस प्रकार थे।

प्र.395 सर्व नारायणों और प्रतिनारायणों की भविष्य की गति (अगले भव) का क्या नियम है?

उत्तर सर्व नारायण और प्रति नारायण भोग-रुचि और बहुल-परिग्रह की आशा से मरणकर अधोलोक वासी होते हैं। नौ नारायण और प्रतिनारायण क्रमशः -1. महातम प्रभा पृथ्वी में, 2. तमः प्रभा पृथ्वी में, 3. तम:प्रभा पृथ्वी में, 4. तमः प्रभा पृथ्वी में, 5. तम:प्रभा पृथ्वी में, 6. तम:प्रभापृथ्वी में 7. धूम प्रभा पृथ्वी में, 8. पंकप्रभा पृथ्वी में और 9. बालुका प्रभा पृथ्वी में पहुँचे थे।

प्र.396 प्रत्येक अर्धचक्री के कौन-से आयुध अथवा महा रत्न कौन-से होते हैं?

उत्तर प्रत्येक अर्धचक्री के 1. सुनन्दक नामक खड्ग, 2. पञ्चजन्य नामक शंख, 3. शार्ङ्ग नामक धनुष, 4. सुदर्शन नामक चक्र, 5. कौस्तुभ नामक मणि, 6. अमोघा नामक शक्ति और 7. कौमुदि नामक गदा इस तरह सप्त रत्न होते हैं।

प्र.397 बलभद्र महापुरुष किन्हें कहते हैं?

उत्तर बलभद्र महापुरुष नारायण के सगे भाई होते हैं ये चार या पाँच रत्नों के स्वामी तथा अपार शक्ति के धारक व वैभवशाली होते हैं।

प्र.398 जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी वर्तमान अवसर्पिणी के दुषमासुषमा काल में उत्पन्न हुए नौ

बलभद्रों के नाम क्या थे, वे कौन-से तीर्थंकरों के काल में उत्पन्न हुए और उन्होंने आगे कौन-सी गति को प्राप्त किया?

उत्तर नौ बलभद्रों के नाम, तीर्थकाल और आगे प्राप्त हुई उनकी गति क्रम तालिका इस प्रकार है -

क्र.	नाम	तीर्थकाल	निर्वाण व गति-प्राप्ति
1.	विजय	भ.श्रेयांसनाथ के तीर्थ में	निर्वाण (मोक्ष)
2.	अचल	भ. वासुपूज्य के तीर्थ में	निर्वाण
3.	सुधर्म (भद्र)	भ. विमल के तीर्थ में	निर्वाण
4.	सुप्रभ	भ. अनन्तनाथ के तीर्थ में	निर्वाण
5.	सुदर्शन	भ.धर्मनाथ के तीर्थ में	निर्वाण
6.	नन्दीषेण (अरनन्द)	भ. अरहनाथ के बाद	निर्वाण
7.	नन्दीमित्र (नन्दन)	भ. मल्लिनाथ के बाद	निर्वाण
8.	रामचन्द्र	भ. मुनिसुव्रत के बाद	निर्वाण
9.	बलिराम (पद्म)	भ. नेमिनाथ के तीर्थ में	ब्रह्म स्वर्ग

प्र.399 बलभद्रों को प्राप्त होने वाले चार या पाँच रत्नों अथवा आयुधों के नाम कौन-से थे?

उत्तर 1. रत्नमाला (हार), 2. लांगल (अपराजित नामक हल), 3. मूसल, 4. स्यन्दन (जिसका अर्थ जन दिव्य-गदा या दिव्य रथ भी करते हैं) और 5. शक्ति इस तरह पाँच रत्न तथा अन्य मत से 1. हलायुध, 2. बाण, 3. गदा और 4. भाला ऐसे चार महारत्न होते हैं।

प्र.400 रुद्र नामक पुरुष कौन कहलाते हैं? उनके नाम, वे किन तीर्थंकरों के तीर्थ काल में उत्पन्न हुए एवं उनका अगला भव कौन-सा हुआ था?

उत्तर

क्र.	नाम	तीर्थकाल	गति गमन
1.	भीमवली	भ. ऋषभनाथ के तीर्थ में	महातम:प्रभा पृथ्वी
2.	जितशत्रु (बलि)	भ. अजितनाथ के तीर्थ में	महातम:प्रभा पृथ्वी
3.	शंभु-रुद्र	भ. पुष्पदन्त के तीर्थ में	तम:प्रभा पृथ्वी
4.	वैश्वानर (विश्वानल)	भ. शीतलनाथ के तीर्थ में	तम:प्रभा पृथ्वी
5.	सुप्रतिष्ठ	भ.श्रेयांसनाथ के तीर्थ में	तम:प्रभा पृथ्वी
6.	अचल	भ. वासुपूज्य के तीर्थ में	तम:प्रभा पृथ्वी
7.	पुंडरीक	भ. विमलनाथ के तीर्थ में	तम:प्रभा पृथ्वी
8.	अजितंधर	भ. अनन्तनाथ के तीर्थ में	धूम प्रभा पृथ्वी
9.	जितनाभि (अजिनाभि)	भ. धर्मनाथ के तीर्थ में	पंक प्रभा पृथ्वी
10.	पीठ	भ. शान्तिनाथ के तीर्थ में	पंक प्रभा पृथ्वी
11.	सात्यकी पुत्र-स्थाणु	भ. महावीर के तीर्थ में	बालुका प्रभा पृथ्वी

प्र.401 कामदेव किन्हें कहते हैं?

उत्तर तीर्थंकरों के काल में अनुपम-अत्यन्त सुन्दर रूप को धारण करने वाले पुण्यशाली, उत्कृष्ट सुख भोक्ता तद्भव मोक्षगामी (जितेन्द्रिय बनकर मोक्ष पद पाने वाले) सत्पुरुष (महापुरुष) कामदेव कहलाते हैं।

प्र.402 जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र सम्बन्धी वर्तमान अवसर्पिणी के दुषमा-सुषमा काल में उत्पन्न हुए चौबीस कामदेवों के नाम तीर्थकाल और उनके निर्वाण क्षेत्र को तालिका में दर्शाइये?

उत्तर चौबीस कामदेवों के नाम, तीर्थकाल और निर्वाण क्षेत्र क्रमशः-

क्र.	नाम	तीर्थकाल	निर्वाणक्षेत्र
1.	बाहुबली	ऋषभनाथ	पोदनपुर
2.	प्रजापति	अजितनाथ	पोदनपुर
3.	श्रीधर	संभवनाथ	पोदनपुर
4.	दर्शनभद्र	अभिनन्दनाथ	पोदनपुर
5.	प्रसेनचन्द्र	सुमतिनाथ	पोदनपुर
6.	चन्द्रवर्ण	पद्मप्रभ	पोदनपुर
7.	अग्निमुख (अनलवर्ण)	सुपार्श्वनाथ	पोदनपुर
8.	सनत्कुमार	चन्द्रप्रभ	सिद्धवरकूट
9.	वत्सराज	पुष्पदन्त	सिद्धवरकूट
10.	कनकप्रभ	शीतलनाथ	सिद्धवरकूट
11.	मेघप्रभ	श्रेयांसनाथ	सिद्धवरकूट
12.	शांतिनाथ	शांतिनाथ	सम्मेदशिखर
13.	कुन्थुनाथ	कुंथुनाथ	सम्मेदशिखर
14.	अरहनाथ	अरहनाथ	सम्मेदशिखर
15.	विजयराज	अरहनाथ	सिद्धवरकूट
16.	श्रीचन्द्र	मल्लिनाथ	सिद्धवरकूट
17.	नलराज	मल्लिनाथ	सिद्धवरकूट
18.	हनुमन्त	मुनिसुव्रतनाथ	तुंगीगिरि
19.	बलिराज	नमिनाथ	सिद्धवरकूट
20.	वसुदेव	नेमिनाथ	सिद्धवरकूट
21.	प्रद्युम्नकुमार	नेमिनाथ	ऊर्जयन्तगिरि
22.	नागकुमार	पार्श्वनाथ	कैलासपर्वत

23. जीवन्धर	महावीर	सिद्धवरकूट
24. जम्बूस्वामी	महावीर	जम्बूवन

प्र.403 भरत चक्रवर्ती के सत्ता अभिमान को चूर कर त्रययुद्ध में परास्त करने वाले और भ्रात पर चक्र चलाने रूप स्वार्थी संसार से विरक्त हो प्रवज्या (दीक्षा) धारण कर एक वर्ष तक उपवास धारण कर खड्गासन-कायोत्सर्ग में ध्यान कर कैवल्य की उपलब्धि द्वारा गन्धकुटी में विराजित हो जन-जन का क्षेम करने वाले महाबलशाली कामदेव और राजपद से अलंकृत बाहुबली को मोक्ष की प्राप्ति किन तीर्थंकर के पूर्व किन पुण्यात्मा के पश्चात् हुई थी?

उत्तर ऐसे कामदेव बाहुबली को तीर्थंकर ऋषभदेव के पूर्व एवं भरत चक्रवर्ती के छोटे भाई अनन्तवीर्य अपर नाम महासेन के मोक्ष जाने के पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति हुई थी।

प्र.404 कामदेव-बाहुबली और अनन्तवीर्य ने सांसारिक वैभव का त्यागकर वैरागी बन मोक्ष-पथ को किस कारण अपनाया था?

उत्तर भरत चक्रवर्ती के द्वारा बाहुबली व अनन्तवीर्य को अपनी दासता स्वीकार करवाने या अपने चरणों में नम्रीभूत करने के हटाग्रह रूप व्यवहार से दुःखी-उदासीन होकर असार रूप संसार को त्यागकर अनन्तवीर्य (महासेन) और कामदेव-बाहुबली ने मोक्ष का पथ अपनाया था।

करणानुयोग

अध्याय - 5. जैन गणित-विज्ञान

प्र. 405 करणानुयोग किसे कहते हैं?

उत्तर जिस अनुयोग में लोक अलोक का विभाग, गणित, जगत् का माप, लोक-रचना, जीवों का निवास, आयु उत्सेधादि, युग-परिवर्तन और प्ररूपणाओं का वर्णन होता है, उसे करणानुयोग कहते हैं।

प्र. 406 लोक और अलोक किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ जीव, पुद्गलादिक द्रव्य पाये (देखे) जाते हैं उसे लोक तथा जहाँ जीवादिक द्रव्य नहीं देखे जाते उसे अलोक कहते हैं।

प्र. 407 गणित में परिकर्माष्टक किन्हें कहते हैं?

उत्तर संकलन, व्यवकलन, गुणकार, भागहार, वर्ग, वर्गमूल, घन और घनमूल इन अष्ट प्रकारों को परिकर्माष्टक कहते हैं।

प्र. 408 संकलन क्या कहलाता है?

उत्तर लोक में संख्या को आपस में जोड़ना संकलन कहलाता है। जैसे- दो और दो चार होते हैं।

प्र. 409 व्यवकलन किसे बोलते हैं?

उत्तर लोक में जिसे घटाना या बाकी निकालना बोला जाता है उसे आगम भाषा में व्यवकलन बोलते हैं।

प्र. 410 गुणकार किसे कहते हैं?

उत्तर गुणा करने का नाम गुणकार होता है। जैसे- चार को दो से गुणा करने पर आठ होता है।

प्र. 411 भागहार क्या कहलाता है?

उत्तर भाग देने का नाम भागहार कहलाता है। जैसे- चार में दो का भाग देने से दो लब्ध प्राप्त होता है।

प्र. 412 वर्ग किसे कहते हैं?

उत्तर समान दो राशियों का परस्पर में गुणा करने का नाम वर्ग है। जैसे- दो को दो से गुणा करने चार होता है। इस तरह दो का वर्ग चार है। वर्ग का एक नाम कृति भी है।

प्र. 413 घन किसे कहते हैं?

उत्तर समान तीन राशियों को परस्पर में गुणा करने का नाम घन है। जैसे- चार को तीन जगह रखकर परस्पर गुणा करने से चौंसठ होता है। तब चार का घन चौंसठ हुआ।

प्र.414 वर्गमूल किसे कहते हैं?

उत्तर जिसका वर्ग करने से जो राशि उत्पन्न होती है उसे उस राशि का वर्गमूल कहा जाता है। जैसे-दो का वर्ग करने से चार राशि उत्पन्न होती है। तब दो यह संख्या चार का वर्गमूल कहलाता है।

प्र. 415 घनमूल किसे कहते हैं?

उत्तर जो राशि जिसका घन करने से उत्पन्न होती है उस राशि का वह घनमूल होता है। जैसे- चार का घन

करने से चौसठ राशि उत्पन्न होती है, अत: चौसठ का घनमूल चार होता है।

प्र. 416 क्षेत्रफल किसे कहते हैं?

उत्तर लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई से जहाँ दो की विवक्षा हो, एक की न हो उसे प्रतर क्षेत्र या वर्ग रूप क्षेत्र कहते हैं और लम्बाई को चौड़ाई से गुणा करने पर जो फल आता है उसे क्षेत्रफल कहते हैं। जैसे- चार हाथ लम्बे और पाँच हाथ चौड़े क्षेत्र का क्षेत्रफल बीस हाथ होता है।

प्र. 417 घन क्षेत्रफल किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई तीनों की विवक्षा हो उसे घन क्षेत्र कहते हैं और उसके क्षेत्रफल को घन क्षेत्रफल या खातफल कहते हैं। जैसे- चार हाथ लम्बे, चार हाथ चौड़े और पाँच हाथ ऊँचे क्षेत्र का खात फल $4 \times 4 \times 5 = 80$ हाथ हुआ।

प्र. 418 व्यास या परिधि किसे कहते हैं?

उत्तर गोलाकार क्षेत्र के बीच में जितना विस्तार होता है उसे व्यास कहते हैं और गोलाकार क्षेत्र की गोलाई के प्रमाण को परिधि कहते हैं।

प्र. 419 परिधि और क्षेत्रफल का नियम क्या है?

उत्तर सामान्य रूप से व्यास से तिगुणी परिधि होती है और परिधि को व्यास की चौथाई से गुणा करने पर क्षेत्रफल होता है तथा क्षेत्रफल को ऊँचाई या गहराई से गुणा करने पर खातफल होता है।

प. 420 मान के कितने भेद हैं?

उत्तर मान के दो भेद हैं- लौकिक मान और लोकोत्तर मान।

प्र. 421 लौकिक मान किसे कहते हैं?

उत्तर लोक में प्रचलित मान को लौकिक मान कहा जाता है। उसके छ: भेद हैं- मान, उन्मान, अवमान, गणिमान, प्रतिमान और तत्प्रतिमान। अन्न-धान्य आदिक के माप करने के बरतनों आदिक को मान कहते हैं। तराजू को उन्मान कहते हैं। चुल्लू आदिक को अवमान कहते हैं। जैसे- एक चुल्लू जल इत्यादि। एक आदि को गणिमान कहते हैं। जैसे- एक, दो, तीन। गुंजा आदि को प्रतिमान कहते हैं। जैसे- रत्ती, मासा आदि। घोड़े की लम्बाई आदिक देखकर उसका मूल्य आँकना तत्प्रतिमान कहलाता है।

प्र. 422 लोकोत्तर मान के कितने भेद हैं?

उत्तर लोकोत्तर मान के चार भेद हैं- द्रव्यमान, क्षेत्रमान, कालमान और भावमान।

प्र. 423 द्रव्यमान जघन्य और उत्कृष्ट किस रूप में होता है?

उत्तर एक परमाणु जघन्य द्रव्यमान है और सर्व द्रव्यों का समूह उत्कृष्ट द्रव्यमान है।

प्र. 424 क्षेत्रमान जघन्य और उत्कृष्ट किस रूप में रहता है?

उत्तर एक प्रदेश जघन्य क्षेत्रमान है और समस्त आकाश उत्कृष्ट क्षेत्रमान है।

प्र. 425 कालमान जघन्य और उत्कृष्ट किस रूप में होता है?

उत्तर एक समय जघन्य कालमान है और सर्वकाल उत्कृष्ट कालमान है।

प्र.426 भावमान जघन्य और उत्कृष्ट रूप में किस तरह होता है?

उत्तर सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव का पर्याय श्रुतज्ञान जघन्य भावमान है और केवलज्ञान उत्कृष्ट भावमान है।

प्र.427 द्रव्यमान के कितने भेद होते हैं?

उत्तर द्रव्यमान के दो भेद होते हैं- संख्यामान और उपमामान।

प्र.428 संख्यामान के कितने भेद हैं?

उत्तर संख्यामान के तीन भेद हैं- संख्यात, असंख्यात और अनन्त।

प्र.429 संख्यात, असंख्यात और अनन्त के उदाहरण क्या है?

उत्तर जो संख्या पाँचों इन्द्रियों का विषय है वह संख्यात है। संख्यात के ऊपर जो संख्या अवधिज्ञान का विषय है वह असंख्यात है। तथा असंख्यात के ऊपर जो संख्या केवलज्ञान के विषय भाव को प्राप्त होती है वह अनन्त है।

प्र.430 क्षय सहित या अन्त होने वाले (अर्धपुद्गल परिवर्तन) काल को भी अनन्त कहा जा सकता है क्या?

उत्तर हाँ! क्षय सहित होने वाला ऐसा काल इसलिए अनन्त (परीतानन्त) कहा जाता है क्योंकि छद्मस्थ जीवों के द्वारा उसका अन्त नहीं पाया जाता है।

प्र.431 उपमामान के कितने भेद हैं?

उत्तर उपमामान के आठ भेद हैं- पल्य, सागर, सूच्यंगुल, प्रतरांगुल, घनांगुल, जगच्छ्रेणी, जगत्प्रतर और लोक।

प्र.432 पल्य किसे कहते हैं?

उत्तर भूमि के गहरे गड्ढे को पल्य कहते हैं। उस पल्य के आधार से परिगणित काल को पल्य या पल्योपम कहा जाता है।

प्र.433 पल्य यह संज्ञा कितने वर्षों की उपमा के लिए प्रयुक्त होती है?

उत्तर पल्य यह संज्ञा असंख्यात वर्ष के लिए प्रयुक्त होती है।

प्र.434 असंख्यात वर्ष तक की संख्या तक पहुँचने के लिए कितनी संख्याओं को पार करना पड़ता है?

उत्तर असंख्यात तक पहुँचने के लिए समय आवली आदि से लेकर अट्ट तक की संख्याओं को पार करना पड़ता है।

प्र.435 समय किसे कहते हैं?

उत्तर मंदगति से एक परमाणु को आकाश के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश तक जाने में जितना काल लगता है उसे समय कहते हैं। यह काल की इकाई (सबसे जघन्य अवस्था) है।

प्र.436 आवली किसे कहते हैं?

उत्तर असंख्यात समयों की एक आवली कही जाती है।

प्र. 437 उच्छ्वास किसे कहते हैं?

उत्तर संख्यात आवलियों का एक उच्छ्वास होता है।

प्र. 438 स्तोक किसे कहते हैं?

उत्तर सात उच्छ्वासों का एक स्तोक होता है।

प्र. 439 लव किसे कहते हैं?

उत्तर सात स्तोकों का एक लव होता है।

प्र. 440 घड़ी (घटी) या नाली किसे कहते हैं?

उत्तर 38 1/2 लव (24 मिनट) की एक घड़ी होती है।

प्र. 441 मुहूर्त्त किसे कहते हैं?

उत्तर दो घड़ी का एक मुहूर्त्त होता है।

प्र. 442 अन्तर्मुहूर्त्त किसे कहते हैं?

उत्तर एक समय से ऊपर तथा मुहूर्त्त से एक समय न्यून को अन्तर्मुहूर्त्त कहते हैं।

प्र. 443 दिन-रात किसे कहते हैं?

उत्तर तीस मुहूर्त्त (24 घण्टों) का एक दिनरात होता है। इसे अहोरात्र भी कहते हैं।

प्र. 444 पक्ष किसे कहते हैं?

उत्तर पन्द्रह दिनरात का एक पक्ष होता है।

प्र. 445 माह किसे कहते हैं?

उत्तर दो पक्षों का एक माह या मास होता है।

प्र. 446 ऋतु किसे कहते हैं?

उत्तर दो माह की एक ऋतु होती है।

प्र. 447 अयन किसे कहते हैं?

उत्तर तीन ऋतुओं का एक अयन होता है या षण्मासिक एक अयन होता है।

प्र. 448 वर्ष किसे कहते हैं?

उत्तर दो अयनों का एक वर्ष होता है।

प्र. 449 युग किसे कहते हैं?

उत्तर पाँच वर्ष का एक युग होता है।

प्र. 450 पूर्वाङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख वर्षों का एक पूर्वाङ्ग होता है।

प्र. 451 पूर्व किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख पूर्वाङ्गों का एक पूर्व होता है।

प्र. 452 पर्वाङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी पूर्वों का एक पर्वाङ्ग होता है।

प्र. 453 पर्व किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख पर्वाङ्गों का एक पर्व होता है।

प्र. 454 नयुताङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी पर्वों का एक नयुताङ्ग होता है

प्र. 455 नयुत किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख नयुताङ्गों का एक नयुत होता है।

प्र. 456 कुमुदाङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी नयुतों का एक कुमुदाङ्ग होता है।

प्र. 457 कुमुद किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख कुमुदाङ्गों का एक कुमुद होता है।

प्र. 458 पद्माङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी कुमदों का एक पद्माङ्ग होता है।

प्र. 459 पद्म किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख पद्माङ्गों का एक पद्म होता है।

प्र. 460 नलिनाङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी पद्मों का एक नलिनाङ्ग होता है।

प्र. 461 नलिन किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख नलिनाङ्गों का एक नलिन होता है।

प्र. 462 कमलाङ्ग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी नलिनों का एक कमलाङ्ग होता है।

प्र. 463 कमल किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख कमलाङ्गों का एक कमल होता है।

प्र. 464 त्रुटितांग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी कमलों का एक त्रुटितांग होता है।

प्र. 465 त्रुटित किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख त्रुटितांगों का एक त्रुटित होता है।

प्र. 466 अटटांग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी त्रुटितों का एक अटटांग होता है।

प्र. 467 अटट किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख अटटांगों का एक अटट होता है।

प्र. 468 अममांग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी अटटों का एक अममांग होता है।

प्र. 469 अमम किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख अममांगों का एक अमम होता है।

प्र. 470 हाहांग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी अममों का एक हाहांग होता है।

प्र. 471 हाहा किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख हाहांगों का एक हाहा होता है।

प्र. 472 हूहूअंग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी हाहा का एक हूहूअंग होता है।

प्र. 473 हूहू किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख हूहूअंगों का एक हूहू होता है।

प्र. 474 लतांग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी हूहू का एक लतांग होता है।

प्र. 475 लता किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख लतांगों को एक लता कहते हैं।

प्र. 476 महालतांग किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लताओं को एक महालतांग कहते हैं।

प्र. 477 महालता किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख महालतांगों को एक महालता कहते हैं।

प्र. 478 शीर्षप्रकंपित किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी महालता को एक शीर्षप्रकंपित कहते हैं।

प्र. 479 हस्तप्रेलित किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी लाख शीर्षप्रकंपित को एक हस्तप्रेलित कहते हैं।

प्र. 480 अचलात्म किसे कहते हैं?

उत्तर चौरासी हस्तप्रेलित को एक अचलात्म कहते हैं।

प्र. 481 पल्य के कितने भेद हैं?

उत्तर पल्य के तीन भेद हैं- व्यवहारपल्य, उद्धारपल्य और अद्धापल्य।

प्र. 482 प्रथम पल्य के साथ व्यवहार यह संज्ञा क्यों पड़ी?

उत्तर उद्धारपल्य और अद्धापल्य व्यवहार मूल होने से प्रथम पल्य का नाम व्यवहार पल्य पड़ा।

प्र. 483 द्वितीय पल्य के साथ उद्धार यह संज्ञा क्यों पड़ी?

उत्तर द्वितीय पल्य की संज्ञा उद्धार पल्य होने का कारण उससे उद्धृत निकाले गये रोमों के आधार से द्वीप और समुद्रों की गणना की जाती है।

प्र. 484 तृतीय पल्य की संज्ञा अद्धा पल्य क्यों पड़ी?

उत्तर अद्धा; काल को कहते हैं अतः इससे मनुष्य, तिर्यञ्च, नारकी और देवादिक की आयु मापी जाती है।

प्र. 485 व्यवहार पल्य किसे कहते हैं?

उत्तर प्रमाणांगुल से मापे गये योजन बराबर लम्बे-चौड़े और गहरे अर्थात् दो हजार कोस गहरे और दो हजार कोस चौड़े गोल गड्ढे में एक दिन से लेकर सात दिन तक के जन्मे हुए मेढे के बालों को कैंची से ऐसा काटकर कि जिसे फिर काटा न जा सके, खूब ठोककर भर दो। यह व्यवहार पल्य है। सौ-सौ वर्ष में एक रोम निकालने पर जितने समय में वह गड्ढा खाली हो उतने काल को व्यवहार-पल्योपमकाल कहते हैं।

प्र. 486 उद्धार पल्य किसे कहते हैं?

उत्तर व्यवहार पल्य के प्रत्येक रोम के बुद्धि द्वारा इतने टुकड़े करो कि जितने असंख्यात कोटि वर्ष के जितने समय होते हैं और उन्हें दो हजार कोस गहरे और दो हजार कोस चौड़े गोल गड्ढे में भर दो। उसे उद्धार पल्य कहते हैं। उसमें से प्रति समय एक-एक रोम निकालने पर जितने समय में वह खाली हो उतने काल को उद्धार पल्योपम कहते हैं।

प्र. 487 अद्धापल्य किसे कहते हैं?

उत्तर उद्धार पल्य के प्रत्येक रोम के पुनः इतने टुकड़े करो कि जितने सौ वर्ष में जितने समय होते हैं और उन्हें पूर्वोक्त प्रमाण गड्ढे में भर दो। उसे अद्धापल्य कहते हैं। उसमें से प्रति समय एक-एक रोम निकालने पर जितने समय में वह गड्ढा खाली हो उतने काल को अद्धापल्योपम कहते हैं।

प्र. 488 सागर किसे कहते हैं?

उत्तर दस कोड़ा-कोड़ी व्यवहार पल्यों का एक व्यवहार सागरोपम, दस कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्यों का एक उद्धार सागरोपम और दस कोड़ाकोड़ी अद्धापल्यों का एक अद्धा सागरोपम होता है।

प्र. 489 सूच्यंगुल किसे कहते हैं?

उत्तर अद्धापल्य के जितने अर्द्धच्छेद हों उतनी जगह अद्धापल्य को रखकर परस्पर में गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न हो उतने आकाश प्रदेशों की मुक्तावली (मोतियों की पंक्ति सदृश) करने पर एक सूच्यंगुल होता है। अर्थात् एक अंगुल लम्बे प्रदेशों का प्रमाण एक सूच्यंगुल कहलाता है।

प्र. 490 अर्द्धछेद किसे कहते हैं?

उत्तर किसी राशि के आधा-आधा होने के वारों को अर्द्धच्छेद कहते हैं। अर्थात् जो राशि जितनी बार समरूप से आधी-आधी हो सकती है उसके उतने ही अर्द्धच्छेद होते हैं। जैसे- सोलह के अर्द्धच्छेद चार होते हैं क्योंकि सोलह राशि चार बार आधी-आधी हो सकती है-८, ४, २, १।

प्र. 491 प्रतरांगुल किसे कहते हैं?

उत्तर सूच्यंगुल के वर्ग को प्रतरांगुल कहते हैं।

प्र. 492 घनांगुल किसे कहते हैं?

उत्तर सूच्यंगुल के घन को घनांगुल कहते हैं। वह घनांगुल एक अंगुल लम्बे, एक अंगुल चौड़े और एक अंगुल ऊँचे स्थल स्थित प्रदेशों का परिमाण जानना।

प्र. 493 अंगुल के कितने भेद है?

उत्तर अंगुल के तीन भेद हैं- उत्सेधांगुल, प्रमाणांगुल और आत्मांगुल।

प्र. 494 उत्सेधांगुल किसे कहते हैं?

उत्तर आठ यव मध्यों (जौ के बीच के भागों) का एक उत्सेधांगुल होता है।

प्र. 495 यवमध्य किसे कहते हैं?

उत्तर आठ जूं का एक यवमध्य होता है।

प्र. 496 एक जूँ का प्रमाण क्या है?

उत्तर आठ लीख प्रमाण एक जूँ है।

प्र. 497 एक लीख कितने प्रमाण होती है?

उत्तर कर्म-भूमिज-मनुष्य सम्बंधी केश के अग्रभाग से आठ गुने प्रमाण एक लीख होती है।

प्र. 498 कर्म-भूमिज-मनुष्य से सम्बंधित केश के अग्र-भाग का प्रमाण कितना है?

उत्तर जघन्य-भोग-भूमिज-मनुष्य सम्बन्धी केश के अग्र-भाग से आठ गुने प्रमाण कर्म-भूमिज-मनुष्य से सम्बन्धित केश का अग्रभाग होता है।

प्र. 499 जघन्य-भोग-भूमिज-मनुष्य सम्बन्धी केश के अग्रभाग का प्रमाण कितना होता है?

उत्तर मध्यम-भोग-भूमिज-मनुष्य सम्बन्धी केश के अग्रभाग से आठ गुने प्रमाण जघन्य-भोग-भूमिज-मनुष्य सम्बन्धी केश के अग्र भाग का प्रमाण होता है।

प्र. 500 मध्यम-भोग-भूमिज-मनुष्य सम्बन्धी केश के अग्र-भाग का प्रमाण कितना होता है?

उत्तर उत्तम-भोग-भूमिज-मनुष्य सम्बन्धी केश के अग्र-भाग से आठ गुने प्रमाण मध्यम-भोग-भूमिज-मनुष्य सम्बन्धी केश के अग्र-भाग का प्रमाण होता है।

प्र. 501 उत्तम-भोग-भूमिज-मनुष्य सम्बन्धी केश के अग्र-भाग का प्रमाण कितना होता है?

उत्तर आठ रथरेणु मिलकर एक उत्तम भोग-भूमिज-मनुष्य सम्बन्धी केश के अग्रभाग का प्रमाण होता है।

प्र. 502 रथरेणु का प्रमाण कितना है?

उत्तर आठ त्रस-रेणु का एक रथरेणु होता है।

प्र. 503 त्रस-रेणु का प्रमाण कितना है?

उत्तर आठ त्रुटिरेणु का एक त्रस-रेणु होता है।

प्र. 504 त्रुटि-रेणु किसे कहते हैं?

उत्तर आठ संज्ञासंज्ञा का एक त्रुटि-रेणु होता है।

प्र. 505 संज्ञासंज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर आठ उत्संज्ञासंज्ञा मिलकर एक संज्ञासंज्ञा नामक स्कन्ध होता है।

प्र. 506 उत्संज्ञासंज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर अनन्तानंत परमाणुओं के संघात (मिलने) से एक उत्संज्ञासंज्ञा नामक स्कन्ध उत्पन्न होता है।

प्र. 507 उत्सेधांगुल से क्या-क्या मापा जाता है?

उत्तर उत्सेधांगुल से देव, नारकी, मनुष्य और तिर्यञ्चों के शरीर की ऊँचाई, देवों के निवास स्थान तथा नगरादि और अकृत्रिम जिनालयों की प्रतिमाओं की ऊँचाई मापी जाती है।

प्र. 508 प्रमाणांगुल किसे कहते हैं?

उत्तर उत्सेधांगुल से पाँच सौ गुना प्रमाणांगुल होता है। यही अवसर्पिणी काल के प्रथम चक्रवर्ती भरत का आत्मांगुल होता है। उस समय उसी आत्मांगुल से ग्राम, नगर आदि का माप किया जाता था।

प्र. 509 प्रमाणांगुल से क्या-क्या मापा जाता है?

उत्तर प्रमाणांगुल से द्वीप, समुद्र, कुलाचल, वेदी, नदी, कुण्ड, सरोवर और भरत आदि क्षेत्रों का माप प्रमाणांगुल से ही होता है।

प्र. 510 आत्मांगुल किसे कहते हैं?

उत्तर भरत और ऐरावत क्षेत्र में जिस-जिस काल में जो मनुष्य हुआ करते हैं उस-उस काल में उन्हीं मनुष्यों के अंगुल का नाम आत्मांगुल है।

प्र. 511 आत्मांगुल से क्या-क्या माप किया जाता है?

उत्तर झारी, कलश, दर्पण, भेरी, शय्या, गाड़ी, हल, मूसल, अस्त्र, सिंहासन, चवँर, छत्र, मनुष्य के निवास स्थान, नगर, उद्यान आदिक का माप अपने-अपने समय के आत्मांगुल से होता है।

प्र. 512 योजन किसे कहते हैं?

उत्तर चार कोस का एक योजन होता है। अथवा दो हजार धनुष का एक योजन होता है।

प्र. 513 योजन से क्या-क्या मापा जाता है?

उत्तर इस योजन के द्वारा जीवों के शरीर, नगर, मंदिर आदि को मापा जाता है।

प्र. 514 महायोजन किसे कहते हैं?

उत्तर दो हजार कोस का एक महायोजन होता है।

प्र. 515 महायोजन से क्या-क्या मापा जाता है?

उत्तर महायोजन से पर्वत, द्वीप, समुद्र आदि को मापा जाता है।

प्र. 516 एक धनुष का प्रमाण कितना होता है?

उत्तर चार हाथ का एक धनुष होता है।

प्र. 517 एक हाथ का प्रमाण कितना होता है?

उत्तर दो वितस्ति का एक हाथ होता है।

प्र. 518 एक वितस्ति (बालिश्त) का प्रमाण कितना होता है?

उत्तर दो पाद की एक वितस्ति होती है।

प्र. 519 एक पाद का प्रमाण कितना होता है?

उत्तर छै अंगुल का एक पाद होता है।

प्र. 520 जगच्छ्रेणी (जगत्-श्रेणी) किसे कहते हैं?

उत्तर पल्य के अर्द्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग प्रमाण घनांगुल को रखकर उन्हें परस्पर में गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न हो उसे जगच्छ्रेणी कहते हैं। वह राशि सात राजु लम्बी आकाश के प्रदेशों की पंक्ति प्रमाण जानना चाहिए।

प्र. 521 जगत्प्रतर या प्रतरलोक किसे कहते हैं?

उत्तर जगच्छ्रेणी के वर्ग को अर्थात् जगत्श्रेणी को जगत् श्रेणी से गुणा करने पर जो प्रमाण हो उसे जगत्-प्रतर या प्रतरलोक कहते हैं। वह जगत्प्रतर; जगच्छ्रेणी प्रमाण लम्बे और चौड़े क्षेत्र में जितने प्रदेश आयें उतना जानना चाहिए।

प्र. 522 घनलोक किसे कहते हैं?

उत्तर जगत्-श्रेणी के घन को लोक अथवा घनलोक कहते हैं। वह घनलोक जगत् श्रेणी प्रमाण लम्बे, चौड़े और ऊँचे क्षेत्र में जितने प्रदेश आयें उतना जानना चाहिए।

प्र. 523 राजू किसे कहते हैं?

उत्तर जगत् श्रेणी के सातवे भाग को राजू कहते हैं।

प्र. 524 राजू की उपमा क्या है?

उत्तर मान लीजिये कि एक हजार किलो वजन वाला लोहे का गोला स्वर्ग लोक से छोड़ा जावे (गिराया जावे) और वह गोला छह माह तक जहाँ तक की दूरी तय करे उतने क्षेत्र प्रमाण को एक राजू जानना चाहिए। ऐसे चौदह राजू प्रमाण लोक होता है।

अध्याय - 6. लोक रचनादि

प्र. 525 लोक कहाँ पर स्थित है?

उत्तर समस्त आकाश के मध्य में लोक स्थित है। तथा उसके बाहर सर्व दिशाओं में अनन्त आकाश है जो अलोकाकाश कहलाता है।

प्र.526 सम्पूर्ण लोक को किसने बनाया है?

उत्तर यह सम्पूर्ण लोक स्वाभाविक रूप से अकृत्रिम है, किसी के द्वारा रचाया हुआ नहीं, न इसका आदि है और न अन्त है, यह नित्य और शाश्वत रूप है।

प्र.527 लोक का आकार किस तरह का है?

उत्तर अपने दोनों पैरों को फैलाकर और दोनों हाथों को अपनी कमर के दोनों ओर रखकर खड़े हुए पुरुष सदृश लोक का आकार है अथवा वेत्रासन सदृश आधे मृदंग को खड़ा करके उसके ऊपर पूरे मृदंग को खड़ा रखने जैसा आकार वाला लोक आकार है।

प्र.528 लोक का विस्तार कितना है?

उत्तर लोक का विस्तार दक्षिणोत्तर दिशारूप से सर्वत्र सात राजू मोटा है। पूर्व से पश्चिम दिशाओं में नीचे सात राजू, ऊपर की ओर क्रमशः घटता हुआ मध्य लोक में एक राजू, फिर क्रम से बढ़ता हुआ ब्रह्मलोक के पास पांच राजू, तदुपरान्त क्रम से घटता हुआ अन्त में एक राजू प्रमाण चौड़ा है।

प्र.529 लोक की ऊँचाई कितनी है?

उत्तर लोक की ऊँचाई अधोलोक से लेकर ऊपर अन्त तक चौदह राजू प्रमाण है।

प्र.530 सम्पूर्ण लोक का घन-फल कितना है?

उत्तर सम्पूर्ण लोक का घनफल सात राजू का घन अर्थात् तीन सौ तैतालीस घन राजू प्रमाण है।

प्र.531 अधोलोक का क्षेत्रफल और घनफल कितना है?

उत्तर अधोलोक की चौड़ाई का मुख (प्रारम्भ) एक राजू, भूमि सात राजू फिर इन दोनों को जोड़कर आधा करने पर चार राजू होते हैं यह अधोलोक का क्षेत्रफल है, इस चार राजू को पद अर्थात् ऊँचाई सात राजू से गुणा करने पर अट्ठाईस वर्ग राजू अधोलोक का क्षेत्रफल होता है। इस क्षेत्रफल का दक्षिणोत्तर विस्तार सात राजू से गुणा करने पर एक सौ छियानवे घन राजू अधोलोक का घनफल होता है।

प्र.532 ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल और घनफल कितना है?

उत्तर अर्ध ऊर्ध्वलोक की चौड़ाई का मुख (नीचे से प्रारम्भ) एक राजू भूमि (ऊपर अंत) पाँच राजू इन दोनों को जोड़कर आधा करने से तीन राजू होते हैं, इस तीन राजू को पद अर्थात् ऊँचाई साढ़े तीन राजू से गुणा करने पर इक्कीस बटा दो वर्ग राजू अर्ध ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल होता है। इस क्षेत्रफल को दक्षिणोत्तर विस्तार सात राजू से गुणा करने पर एक सौ सैतालीस बटा दो घन राजू अर्ध ऊर्ध्वलोक का घनफल

प्राप्त होता है। इससे दुगुणा व्यालीस वर्ग राजू और एक सौ सैतालीस घन राजू क्रमशः पूरे ऊर्ध्व लोक का क्षेत्रफल और घनफल प्राप्त होता है।

प्र.533 आगम में अधोलोक की रचना किस तरह की विधिवत् वर्णित की गई है?

उत्तर जिनागम में वर्णित है कि मेरु पर्वत के नीचे सात राजू प्रमाण अधोलोक है। मेरु पर्वत के तल से लेकर छः राजू में रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा नाम की सात पृथ्वियाँ हैं। इसके नीचे एक राजू प्रमाण स्थान भूमि बिना निगोद आदिक पाँच स्थावरों से युक्त स्थावरलोक या कलकल लोक है। (विशेष वर्णन आगे कहेंगे)

प्र.534 मध्यलोक का स्वरूप किस तरह का है?

उत्तर मेरु पर्वत की ऊँचाई प्रमाण मध्यलोक है। जहाँ असंख्यात द्वीप समुद्रों के बीचों बीच मेरु पर्वत है जो एक हजार योजन पृथ्वी के अंदर जड़रूप से स्थित है। निन्यानवे हजार योजन बाहर अर्थात् पृथ्वी पर है और चालीस योजन ऊँची जिसकी चूलिका है।

प्र.535 ऊर्ध्वलोक का स्वरूप कैसा है?

उत्तर ऊर्ध्वलोक की ऊँचाई; मध्यलोक की ऊँचाई एक लाख चालीस योजन से कम सात राजू प्रमाण है। मेरु पर्वत की चूलिका से एक बाल का अन्तर देकर लोकान्त तक अर्थात् सात राजू पर्यन्त ऊर्ध्वलोक है। ऊर्ध्वलोक में सोलह स्वर्ग, नौ ग्रैवेयक, नौ अनुदिश, पञ्च अनुत्तर एवं सिद्धलोक की रचना है।

प्र.536 सम्पूर्ण लोक का आधार क्या है? और वह आधार किस रूप में है?

उत्तर घनोदधि वातवलय, घनवातवलय और तनुवातवलय ये तीन वातवलय लोक का आधार हैं। जैसे– वृक्ष छाल से घिरा होता है वैसे ही लोक इन वातवलयों घिरा हुआ है। जिस तरह किसी खिलोने की नली को मुख के द्वारा सावधानी पूर्वक धीरे–धीरे फूके जाने पर वायु के दबाव से एक हल्की सी गेंद उस वायु के बीच ऊपर उठी (या उड़ती सी) रहती है उसी तरह सभी ओर से व घने रूप से बड़े प्रमाण में वायु के दबाव से यह तीन लोक अनन्त आकाश के बीचोंबीच उस वायु रूपी वातवलयों के आधार से टिका हुआ है।

प्र.537 तीनों वातवलयों का रंग कैसा है?

उत्तर तीनों वातवलयों का रंग क्रमशः हल्का पीत गोमूत्रवत्, हल्का हरित मूंगवत् और अनेक रंगों से मिश्रित है।

प्र.538 लोक में तीनों वातवलयों की मोटाई कहाँ, कितनी है?

उत्तर लोकाकाश के अधोभाग में, दोनों पार्श्वभागों में नीचे से एक राजू ऊँचाई अर्थात् पञ्च स्थावर लोक पर्यन्त तीनों वातवलय प्रत्येक बीस–बीस हजार योजन मोटे हैं। दोनों पार्श्वभागों में एक राजू के ऊपर सप्तम पृथ्वी के निकट आठों दिशाओं में तीनों वातवलय यथाक्रम से सात, पाँच, और चार योजन मोटे हैं। फिर क्रमशः घटते हुए मध्यलोक की आठों दिशाओं में पाँच, चार और तीन योजन मोटे रह जाते हैं। आगे क्रमशः बढ़ते हुए ब्रह्मलोक की आठों दिशाओं में सात, पाँच और चार योजन मोटे हो जाते हैं।

फिर ऊपर क्रमशः घटते हुए लोकाग्र के पार्श्व भाग में पाँच, चार और तीन योजन मोटे रह जाते हैं। अन्त में ये तीनों ही वातवलय लोक शिखर पर क्रमशः दो कोस, एक कोस और पन्द्रह सौ पचत्तर धनुष प्रमाण मोटे रह जाते हैं।

प्र.539 लोक का मध्य स्थान कौन-सा कहलाता है?

उत्तर लोक मध्यलोक में स्थित मेरु पर्वत के नीचे वज्र व वैडूर्य पटलों के बीच में चौकोर संस्थान रूप से अवस्थित आकाश के आठ प्रदेश लोक का मध्य कहलाते हैं।

प्र.540 लोक में कौन-से स्वर्ग आदिक और लोकान्त तक की ऊँचाई तक कितने राजू के प्रमाण रूप लोक होता है?

उत्तर लोक मध्य से ऊपर ऐशान स्वर्ग एक डेढ़ राजू, माहेन्द्र स्वर्ग तक तीन राजू, ब्रह्मस्वर्ग तक साढ़े तीन राजू, कापिष्ठ स्वर्ग तक चार राजू, महाशुक्र स्वर्ग तक साढ़े चार राजू, सहस्रार स्वर्ग तक पाँच राजू, प्राणत स्वर्ग तक साढ़े पाँच राजू, अच्युत स्वर्ग तक छः राजू और लोकान्त तक सात राजू ऊँचाई है।

प्र.541 लोक में अधोलोक सम्बन्धी कौन-सी भूमि तक कितने राजू का प्रमाण होता है?

उत्तर लोक मध्य से शर्करा पृथ्वी तक एक राजू, उसके नीचे पुनः पाँचों पृथ्वियाँ क्रमशः एक-एक राजू प्रमाण में हैं। इस तरह सप्तम पृथ्वी तक छः राजू और कलकल नामक लोक से नीचे लोकान्त तक सात राजू होते हैं।

प्र.542 लोक की चौड़ाई कहाँ कितनी है?

उत्तर लोक के नीचे अधोलोक के मूल में चौड़ाई सात राजू, मध्यलोक में एक राजू, ब्रह्मलोक में पाँच राजू और लोक के अग्रभाग रूप सर्वोच्च स्थान पर एक राजू चौड़ाई है।

प्र.543 लोक में कौन-से जीव कहाँ पाये जाते हैं?

उत्तर पृथ्वीकायिक आदि पाँच स्थावर जीव सम्पूर्ण लोक में भरे हुए हैं, परन्तु त्रस जीव समुद्घातादि अवस्थाओं के बिना जीव त्रस नाड़ी में ही रहते हैं।

प्र.544 त्रस नाड़ी कहाँ है और वह कितनी लम्बी, चौड़ी और ऊँची है?

उत्तर त्रस नाड़ी लोक के मध्य में है और वह एक राजू लम्बी, एक राजू चौड़ी तथा चौदह राजू ऊँची है।

प्र.545 त्रस नाड़ी यह नाम क्यों पड़ा, क्या त्रस नाड़ी में त्रस जीव मात्र ही रहते हैं या स्थावर जीव भी रहते हैं तथा त्रस जीव त्रस नाड़ी के सम्पूर्ण स्थान में रहते हैं या कुछ विशेषता है?

उत्तर त्रस जीवों के रहने का स्थान मात्र त्रस नाड़ी ही है अतः त्रस जीवों के रहने के स्थान का सार्थक नाम त्रस नाड़ी पड़ा। स्थावर जीव तो लोक में त्रसनाड़ी के अन्दर बाहर सर्वत्र पाये जाते हैं। तथा त्रस नाड़ी में भी त्रस जीव कुछ कम तेरह राजू के स्थान में ही पाये जाते हैं।

प्र.546 त्रस नाड़ी में त्रस जीवों से रहित स्थान कौन-कौन-सा है?

उत्तर त्रस नाड़ी में स्थित सप्तम महातमः पृथ्वी के मध्य भाग में ही नारकी रहते हैं उसके नीचे वे त्रस जीव नहीं रहते हैं।

सातवी पृथ्वी के नीचे कलकल लोक के एक राजू प्रमाण क्षेत्र में त्रसों के बिना पंच स्थावर जीव मात्र ही रहते हैं। ऊर्ध्वलोक में भी सर्वार्थसिद्धि विमान तक ही त्रस जीव रहते हैं। लोक के अग्रभाग में त्रसादि नामकर्म या अष्टकर्म रहित सिद्ध परमेष्ठियों का निवास है।

प्र. 547 उपपाद की अपेक्षा त्रस जीव त्रस नाड़ी के बाहर किस तरह से पाये जाते हैं?

उत्तर त्रस नाड़ी के बाहर रहने वाला कोई स्थावर जीव मरण करके त्रस पर्याय में उत्पन्न होने के लिए त्रस नाड़ी की ओर आ रहा है; उस समय उस जीव के विग्रहगति में ही त्रसनामकर्म का उदय आ जाने से जितने समय तक वह त्रसनाड़ी के बाहर विग्रहगति में रहता है, उतने समय तक उपपाद की अपेक्षा उस त्रस जीव का त्रसनाड़ी के बाहर सद्भाव पाया जाता है।

प्र.548 मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा त्रसजीव त्रसनाड़ी के बाहर किस तरह से पाया जाता है?

उत्तर त्रस नाड़ी के भीतर रहने वाला कोई त्रसजीव त्रस नाड़ी के बाहर स्थावर जीव में उत्पन्न होने के लिए मरण से पूर्व मारणान्तिक समुद्घात करता है; मरण से पूर्व उस जीव के त्रसनामकर्म का उदय पाया जाने से त्रसनामकर्म सहित वह जीव त्रसनाड़ी के बाहर पाया जाता है।

प्र.549 लोक पूरण समुद्घात की अपेक्षा त्रसजीव त्रसनाड़ी के बाहर किस रूप में पाया जाता है?

उत्तर लोकपूरण समुद्घात में जब केवली भगवान् के आत्मप्रदेश समस्त लोक में फैलते हैं, उस समय भी त्रसनाड़ी के बाहर त्रसजीव (केवली भगवान का त्रसनामकर्म का उदय होने से) पाये जाते हैं।

प्र.550 रत्नप्रभा नामक प्रथम पृथ्वी के कितने भाग हैं?

उत्तर रत्नप्रभा नामक प्रथम पृथ्वी के तीन भाग हैं– खरभाग, पंकभाग और अब्बहुल भाग।

प्र.551 खरभाग, पंकभाग और अब्बहुलभाग का बाहल्य (मोटाई) का प्रमाण कितना है?

उत्तर खरभाग, पंकभाग और अब्बहुलभाग का बाहल्य क्रमशः सोलह हजार योजन, चौरासी हजार योजन और अस्सी हजार योजन है। अतः प्रथम पृथ्वी की मोटाई (बाहल्य) एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण है।

प्र.552 खरभाग में कितने बाहल्य प्रमाण वाली कितनी और कौन-सी उप पृथ्वियाँ हैं?

उत्तर खरभाग में एक-एक हजार योजन मोटी 1. चित्रा, 2. वज्रा, 3. वैडूर्या, 4.लोहिता, 5. मसारकल्पा, 6.गोमेदा, 7.प्रवाला, 8.ज्योतिरसा, 9.अञ्जना, 10.अञ्जनमूलिका, 11.अङ्का, 12.स्फटिका, 13.चन्दना, 14.सर्वार्थका, 15.बकुला और 16.शैला ये सोलह उप पृथ्वियाँ हैं। विशेष- इन पृथ्वियों के बीच में किसी में किसी प्रकार का अन्तराल नहीं है।

प्र.553 इन चित्रा आदि पृथ्वियों की लम्बाई, चौड़ाई कितनी है?

उत्तर इन चित्रा आदि पृथ्वियों की लम्बाई, चौड़ाई पंकभाग व अब्बहुल भाग की तरह लोक प्रमाण है। तिर्यक् में ये पृथ्वियाँ वातवलयों तक फैली हुई हैं।

प्र.554 शर्करा आदिक पृथ्वियों की मोटाई कितनी है?

उत्तर द्वितीय शर्करा प्रभा पृथ्वी की मोटाई 32,000 योजन, बालुका प्रभा की 28,000 योजन, पंकप्रभा की

24,000 योजन, धूमप्रभाकी 20,000 योजन, तम:प्रभा की 16,000 योजन और महातम:प्रभा की 8,000 योजन मोटाई है।

प्र.555 रत्नप्रभादि सप्त पृथ्वीयों में पटलों (पाथड़ों) की संख्या कितनी है?

उत्तर रत्नप्रभा पृथ्वी में 13 पटल, शर्कराप्रभा में 11 पटल, बालुकाप्रभा में 9 पटल, पंकप्रभा में 7 पटल, धूमप्रभा में 5 पटल, तम:प्रभा में 3 पटल और महातम:प्रभा में 1 पटल है। इस तरह सातों पृथ्वियों में कुल 49 पटल हैं। ये पटल एक दूसरे से संश्लिष्ट (सटे) हैं।

प्र.556 नरक और नारकी किसे कहते हैं?

उत्तर रत्नप्रभादिक सप्त पृथ्वियों के पटलों में होने वाले कुएँ के समान बिलों को नरक कहते हैं और उन नरकों में रहने वाले नारकी कहलाते हैं।

प्र.557 पृथ्वी-पटलों में होने वाले नरक-बिलों के नाम किस रूप में होते हैं?

उत्तर पृथ्वी-पटलों में होने वाले नरक-बिलों के नाम इन्द्रक, श्रेणिबद्ध और प्रकीर्णक रूप में होते हैं।

प्र.558 नरक-बिलों की इन्द्रक आदि संज्ञा क्यों है?

उत्तर जो अपने पटल के सर्व बिलों के बीचोंबीच में होता है, उसे इन्द्रक बिल कहते हैं। इस इन्द्रक बिल की चारों दिशाओं एवं विदिशाओं में जो बिल पंक्तिरूप से स्थित होते हैं, उन्हें श्रेणिबद्ध बिल कहते हैं। जो श्रेणिबद्ध बिलों के बीच-बीच में बिखरे हुए पुष्पों के समान यत्र-तत्र स्थित हैं, उन्हें प्रकीर्णक बिल कहते हैं। यह रचना अधोलोक की पृथ्वियों सम्बन्धी प्रत्येक पटल में रहती है।

प्र.559 सप्त पृथ्वियों के पटलों में नरक बिल कितने हैं और उन बिलों का विन्यास कहाँ व किस तरह से है?

उत्तर प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी के तेरह पटलों में तेरह इन्द्रक बिल हैं। दूसरी आदि पृथ्वियों में पटलों की संख्यानुसार ही क्रमश: ग्यारह, नौ, सात, पाँच, तीन और एक इन्द्रक बिल हैं, इस तरह कुल बिल संख्या उनन्चास है।

प्रथम भूमि के प्रथम पटल में स्थित इन्द्रक बिल की एक-एक दिशा में 49-49 और विदिशाओं में 48-48 श्रेणिबद्ध बिल हैं। द्वितीयादि इन्द्रक बिल से लेकर सप्तम पृथ्वी स्थित अन्तिम इन्द्रक बिल तक श्रेणिबद्ध बिलों की संख्या एक-एक कम होते हुए अन्तिम इन्द्रक बिल की चारों दिशाओं में तो एक-एक श्रेणिबद्ध बिल मिलता है। परन्तु विदिशाओं में श्रेणिबद्ध बिलों का अभाव है। सातवी पृथ्वी में प्रकीर्णक बिलों का अभाव है।

प्र.560 सप्त पृथ्वियों में श्रेणीबद्ध नरक-बिलों की सम्पूर्ण संख्या कितनी है?

उत्तर रत्नप्रभादि सप्त पृथ्वियों में श्रेणीबद्ध रूप सम्पूर्ण नरक-बिलों की संख्या नौ हजार छह सौ चार है।

प्र.561 प्रथम पृथ्वी से लेकर छठी पृथ्वी तक प्रकीर्णक नरक-बिलों की सम्पूर्ण संख्या कितनी है?

उत्तर प्रथम पृथ्वी से लेकर छठी पृथ्वी तक प्रकीर्णक नरक-बिलों की सम्पूर्ण संख्या तेरासी लाख नब्बे हजार तीन सौ सैंतालीस है।

प्र.562 रत्नप्रभादि सप्त पृथ्वियों में स्थित नरक-बिलों की संख्या कितनी-कितनी है?

उत्तर रत्नप्रभादि सप्त पृथ्वियों में स्थित नरक-बिलों की संख्या क्रमशः तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दस लाख, तीन लाख, पांच कम एक लाख और मात्र पाँच है।

प्र.563 सप्त पृथ्वियों के सम्पूर्ण नरक-बिलों की संख्या कितनी है?

उत्तर सप्त पृथ्वियों के सम्पूर्ण नरक-बिलों की संख्या चौरासी लाख है।

प्र.564 नरक-बिलों का विस्तार और आकार कितना और कैसा होता है?

उत्तर इन्द्रक नामक नरक-बिल संख्यात योजन विस्तार वाले ही होते हैं। श्रेणीबद्ध नरक-बिल असंख्यात योजन विस्तार वाले और प्रकीर्णकों में कुछ प्रकीर्णक बिल संख्यात योजन और कुछ असंख्यात योजन विस्तार वाले होते हैं। ये नरक-बिल गोल, चौकोर और त्रिकोण आकार वाले होते हैं।

प्र.565 कौन-सी पृथ्वी पर्यन्त के कितने नरक-बिलों में नारकी जीवों के लिए कैसी तीव्र उष्ण की वेदना होती है?

उत्तर प्रथम पृथ्वी से लेकर पांचवी पृथ्वी के चार भागों में से तीन भागों पर्यन्त में स्थित 82,25,000 नरक-बिलों में नारकी जीवों के लिए लोहे के गोले को पिघलाने जैसी तीव्र उष्ण वेदना होती है।

प्र.566 कौन-सी पृथ्वी से कौन-सी पृथ्वी पर्यंत वाले कितने नरक-बिलों में स्थित नारकी जीवों के लिए कैसी अत्यन्त शीत वेदना होती है?

उत्तर पाँचवी पृथ्वी के शेष चौथाई भाग में तथा छठी और सातवी पृथ्वी में स्थित 1,75,000 नरक-बिलों में नारकी जीवों के लिए लोह के पानी को गोले रूप जमाने जैसी अत्यन्त शीत वेदना होती है।

प्र.567 रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम सीमन्तक नामक इन्द्रक बिल का विस्तार कितना है?

उत्तर रत्नप्रभा पृथ्वी के प्रथम सीमन्तक नामक इन्द्रक बिल का विस्तार मनुष्य क्षेत्र सदृश पैंतालीस लाख योजन प्रमाण है।

प्र.568 महातमःप्रभा पृथ्वी के अवधिस्थान नामक अन्तिम बिल का विस्तार कितना है?

उत्तर महातमःप्रभा पृथ्वी के अवधिस्थान नामक अन्तिम बिल का विस्तार जम्बूदीप सदृश एक लाख योजन प्रमाण है।

प्र.569 नारकियों के उत्पत्ति स्थान कहाँ पर और कैसे आकार वाले हैं?

उत्तर नारकियों के उत्पत्ति स्थान नरक-बिलों के उपरिम भाग में अनेक प्रकार के शस्त्रों से युक्त अधोमुख कण्ठ वाले, भीतर गोल तथा बाहर सात, तीन, दो, एक और पाँच कोने वाले होते हुए उष्ट्रिका कुम्भी आकार रूप अनेक मुखाकार होते हैं।

प्र.570 नारकियों के उत्पत्ति स्थानों की चौड़ाई और ऊँचाई कितनी है?

उत्तर नारकियों के उत्पत्ति स्थानों की चौड़ाई प्रथम पृथ्वी से लेकर सातवीं पृथ्वी तक क्रमशः एक कोस, दो कोस, तीन कोस, एक योजन, दो योजन, तीन योजन और सौ योजन प्रमाण है। तथा ऊँचाई अपनी-अपनी अवगाहना से पाँच गुणी है।

प्र.571 उत्पत्ति स्थानों में उत्पन्न होते ही नारकियों की क्या स्थिति होती है?

उत्तर उत्पत्ति स्थानों में उत्पन्न होते ही नारकी तीक्ष्ण शस्त्रों पर गिरते हुए सातों पृथ्वियों के नरक-बिलों में क्रमश: 7 योजन $3\frac{1}{4}$ कोस, 15 योजन $2\frac{1}{2}$ कोस, 31 योजन 1 कोस, 62 योजन 2 कोस, 125 योजन, 250 योजन तथा 500 योजन ऊपर उछलते हैं और पुन: शस्त्रों पर आ पड़ते हैं।

प्र.572 नारकियों के शरीर की ऊँचाई कितनी होती है?

उत्तर प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी के अन्तिम पटल में स्थित नारकियों के शरीर की ऊँचाई 7 धनुष 3 हाथ और 6 अंगुल प्रमाण होती है। शेष द्वितीयादि पृथ्वियों के अन्तिम पटल में रहने वाले नारकियों के शरीर की ऊँचाई क्रमश: दूनी-दूनी होते हुए सप्तम पृथ्वी के पटल में रहने वाले नारकियों के शरीर की ऊँचाई 500 धनुष प्रमाण होती है।

प्र.573 नारकियों की कौन-सी विक्रिया होती हैं?

उत्तर नारकियों की देवों सम पृथक विक्रिया न होकर अपृथक विक्रिया होती है।

प्र.574 अपृथक विक्रिया को नारकी किस तरह किया करते हैं?

उत्तर अपृथक विक्रिया को करते हुए नारकी अपने वैक्रियक शरीर को ही सर्प, व्याघ्र, भेड़िया, उल्लू, कौआ, बिच्छू, गृद्ध, कुत्ता, रीछ आदि तिर्यञ्च रूप तथा त्रिशूल, अग्नि, बरछी, तलवार, मुद्गर और सेमर वृक्ष आदि रूप बनाते हैं।

प्र.575 नरकों का वातावरण कैसा होता है?

उत्तर नरकों का सम्पूर्ण वातावरण महादु:खमय होता है। हजार बिच्छुओं के युगपत् काटे जाने पर जितनी वेदना होती उससे भी अधिक वेदना नरक भूमि के स्पर्श मात्र से होती है।

प्र.576 नरकों में नारकियों को होने वाले दु:ख कौन-कौन-से हैं?

उत्तर नरकों में नारकियों के लिए क्षेत्रीय, नारकी जीवों से उत्पन्न मानसिक, वाचनिक और कायिक तथा देवकृत भी अनेक असहनीय दु:ख प्राप्त होते हैं जैसे-

- तीन लोक के अनाज खाने जैसी भूख लगना।
- समुद्र के जैसे जल पी जाने वाली प्यास सताना।
- आपसी लड़ाई द्वारा बैर भंजाना।
- देवों द्वारा लड़ाया, भड़काया जाना।
- शस्त्रों पर गिराया जाना।
- यन्त्रों में पेला जाना।
- भाड़ में झोका जाना।
- कढ़ाई में तलाया जाना।
- शस्त्रों से छेदा और काटा जाना।

- जलती ज्वालाओं में पकाया जाना।
- पत्तों से तन कट जाना।
- गरम पुतली से चिपकाना।
- लोह रस पिलाया जाना।
- पारे की तरह तन का पिघल जाना।
- तन के तिल-तिल सम टुकड़े किये जाना।
- सिंह, भालू, कुत्ता, सर्प, गिद्ध और कौआ आदिक हिंसक तिर्यञ्चों द्वारा तन का भक्षण किया जाना इत्यादि।

प्र.577 नारकियों के लिए कहाँ तक कौन, कैसे लड़ाते भिड़ाते हैं?

उत्तर नारकियों के लिए तृतीय बालुका प्रभा पृथ्वी तक, असुरकुमार देवों में मिथ्या दृष्टि व पापिष्ठ स्वभाव वाले अम्बावरीष नामक दुष्ट देव नारकियों का बैर स्मरण कराकर उन्हें लड़ाते और भिड़ाते हुए मनोरञ्जन करते हैं।

प्र.578 नारकियों का भोजन किस तरह का होता है?

उत्तर नारकी जीव सड़े हुए माँस से भी अधिक दुर्गन्धित मिट्टी का आहार करते हैं।

प्र.579 नरकों में नारकियों का अवधिज्ञान कितने क्षेत्र तक होता है?

उत्तर सातों पृथ्वियों में क्रमश: नारकियों का अवधिज्ञान चार कोस, साढ़े तीन कोस, तीन कोस, ढाई कोस, दो कोस, डेढ़ कोस और एक कोस तक की वस्तु को जानता है।

प्र.580 रत्नप्रभादि पृथ्वियों में जन्म व मरण का अन्तरकाल कितना होता है?

उत्तर रत्नप्रभादि पृथ्वियों में नारकियों का जन्म व मरण के अधिक से अधिक अन्तरकाल का प्रमाण क्रमश: चौबीस मुहूर्त्त, सात दिवस, एक पक्ष, एक माह, दो माह, चार माह और छह माह है। अन्यथा हर समय जन्म-मरण है।

प्र.581 नरक गति से निकलने वाले जीवों की उत्पत्ति कहाँ-कहाँ पर होती है?

उत्तर नरक गति से निकले हुए जीव मनुष्य गति और तिर्यञ्च गति में ही उत्पन्न होते हैं। सातवी पृथ्वी से निकला हुआ जीव तिर्यञ्च गति में ही जन्म लेता है।

प्र.582 नरक गति से आकर जीव मनुष्य व तिर्यञ्च गति में कौन-कौन-सी अवस्था का प्राप्त होता है?

उत्तर ऐसा जीव कर्मभूमिज, गर्भज संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक मनुष्य और तिर्यञ्चों में ही जन्म लेता है।

प्र.583 सप्तम पृथ्वी से निकला जीव तिर्यञ्च गति में ही क्यों जन्म लेता है?

उत्तर क्योंकि सप्तम पृथ्वी से निकला जीव एक बार पुन: नरक में जावेगा यह नियोग है अत: वहाँ से निकल कर क्रूर तिर्यञ्च होता है और भयानक-अतीव पाप कर पुन: नरक में जाता है।

प्र.584 नरकों से निकले नारकी किन-किन अवस्थाओं में पैदा नहीं होते हैं?

उत्तर नरकों से निकले जीव एकेन्द्रिय, विकलत्रय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, भोगभूमि, लब्ध्यपर्याप्तक, सम्मूर्च्छन और देव पर्याय के जीव रूप में उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र.585 नरकगति से निकले जीव कौन-से पदधारी अवस्थाओं में उत्पन्न नहीं होते हैं?

उत्तर नरकगति से निकले जीव नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र और चक्रवर्ती पदधारी अवस्थाओं में कदापि उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्र.586 तीर्थंकर प्रकृति बंध वाला जीव नीचे कितनी पृथ्वियों तक उत्पन्न हो सकता है?

उत्तर तीर्थंकर प्रकृति बंध वाला जीव नीचे तीन पृथ्वियों तक उत्पन्न हो सकता है।

प्र.587 तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने वाला जीव किस कारण नरक पृथ्वियों में जाता है?

उत्तर जिस मनुष्य ने सम्यक्त्व धारण के पूर्व नरकायु का बंध कर लिया है, पश्चात् सम्यक्त्व को प्राप्त कर तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया है ऐसा जीव तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला कहलाता है। वह नीचे तीसरी पृथ्वी तक के नरकों में उत्पन्न हो सकता है।

प्र.588 कौन-सी पृथ्वी तक बद्धायुष्क जीव सम्यक्त्व के साथ उत्पन्न होता है?

उत्तर नरक-बद्धायुष्क जीव सम्यक्त्व के साथ प्रथम पृथ्वी तक ही उत्पन्न होता है। उससे नीचे जाने वाले का सम्यक्त्व यहीं छूट जाता है।

प्र.589 तीर्थंकर प्रकृति बंध वाला सम्यक्त्व से च्युत जीव दूसरी तीसरी पृथ्वी में तीर्थंकर प्रकृति बंध सम्यक्त्व बिना कैसे करता है?

उत्तर तीर्थंकर प्रकृति बंध वाला जीव दूसरी, तीसरी पृथ्वी में जाकर अन्तर्मुहूर्त्त में सम्यग्दृष्टि बनकर पुनः तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने लगता है।

प्र.590 कौन-कौन-से जीव नरकों में उत्पन्न नहीं होते हैं?

उत्तर एकेन्द्रिय और विकलत्रय जीव नरकों में उत्पन्न नहीं होते तथा नरक गति से नरक गति में जीव, देवगति के जीव, भोग भूमि के जीव, चौबीस कामदेव एवं तीर्थंकरों के माता-पिता नरकों में उत्पन्न नहीं होते।

प्र.591 कौन-कौन-से जीव कौन-कौन-सी नरक-पृथ्वियों तक उत्पन्न हो सकते हैं?

उत्तर असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव प्रथम पृथ्वी तक, सरीसृप (छाती के बल से चलने वाले) द्वितीय पृथ्वी तक, पक्षी तृतीय पृथ्वी तक, भुजंगादि सर्प चतुर्थ पृथ्वी तक, सिंह पांचवी पृथ्वी तक, स्त्री छठी पृथ्वी तक, महामत्स्य एवं मनुष्य सप्तम पृथ्वी तक उत्पन्न हो सकते हैं।

प्र.592 संहनन की अपेक्षा कौन-से संहनन वाले जीव कौन-सी नरक पृथ्वी तक उत्पन्न हो सकते हैं?

उत्तर वज्रवृषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलक और असंप्राप्तासृपाटिका इन छह संहननों वाले संज्ञी जीव तीसरी पृथ्वी तक, असंप्राप्तासृपाटिका रहित पांच संहनन वाले पांचवी पृथ्वी तक, अर्धनाराच पर्यन्त चार संहनन वाले छठी पृथ्वी तक और वज्रवृषभ नाराच संहनन वाले सातवी पृथ्वी तक उत्पन्न हो सकते हैं।

प्र.593 रत्नप्रभादि सप्त नरक पृथ्वियों में क्रमशः जीव अधिक से अधिक निरन्तर कितनी बार उत्पन्न हो

सकता है?

उत्तर रत्नप्रभादि सप्त नरक पृथ्वियों में जीव क्रमशः अधिक से अधिक निरन्तर या बीच में एक पर्याय का अन्तर होते हुए भी निरन्तर कहलाते हुए-आठ बार, सात बार, छह बार, पाँच बार, चार बार, तीन बार और दो बार उत्पन्न हो सकता है।

प्र.594 अन्य पर्याय का अन्तर करने का तात्पर्य क्या है?

उत्तर हाँ! जैसे असंज्ञी प्रथम पृथ्वी तक उत्पन्न हो सकता है उसे द्वितीय बार नरक में जाने का भंग घटाने के लिए संज्ञी में आने के बाद एक बार असंज्ञी में जन्म दिलाना पड़ेगा क्योंकि नरक से निकला जीव असंज्ञी में जन्म नहीं लेता वह संज्ञी में जन्म लेकर, पुनः असंज्ञी में जन्मधारण कर नरक जावेगा तब ही अन्य पर्याय का अन्तर करते हुए भी निरन्तर का भंग (भेद) घटेगा या बनेगा। इसी तरह सम्मूर्च्छन जन्म वाले महामत्स्य को सप्तम पृथ्वी में द्वितीय बार जन्म दिलाने के लिए उसे वहाँ से निकलकर गर्भज तिर्यञ्च बनना पड़ेगा फिर सम्मूर्च्छन महामत्स्य बनकर सप्तम पृथ्वी जावेगा। उसी तरह सप्तम पृथ्वी से निकलकर जीव मनुष्य नहीं होता अतः क्रूर तिर्यञ्च बन फिर मनुष्य होकर सप्तम पृथ्वी जावेगा। इस तरह एक पर्याय का अन्तर करके भी नरक जाने पर निरन्तर कहलाता है।

प्र.595 रत्नप्रभादि सप्त नरक भूमियों में नारकियों की होने वाली लेश्या कैसी होती है?

उत्तर प्रथम और द्वितीय पृथ्वी के नारकियों के कपोत लेश्या, तृतीय पृथ्वी के उपरिम बिलों के नारकियों में कपोत लेश्या और नीचे के बिलों के नारकियों में नील लेश्या, चतुर्थ पृथ्वी के नारकियों में नील लेश्या, पंचम पृथ्वी के उपरितन बिलों के नारकियों में नील लेश्या और नीचे के बिलों के नारकियों में कृष्ण लेश्या, षष्ठ पृथ्वी के नारकियों में कृष्ण और सप्तम पृथ्वी के नारकियों में परम कृष्ण लेश्या होती है।

प्र.596 नारकियों में द्रव्य लेश्या किस प्रकार होती है?

उत्तर नारकियों में द्रव्य लेश्या (शारीरिक रंग) आयु प्रमाण काल तक एक समान ही रहती है।

प्र.597 नारकियों में भाव लेश्या में परिवर्तन किस तरह का होता है?

उत्तर नारकियो में भाव लेश्या अन्तर्मुहूर्त्त में परिवर्तनशील होती है। अर्थात् स्व-स्व कापोत आदि लेश्याओं में मंद-मंदतर-मन्दतम आदि अनेक अवान्तर भेद होते हैं।

प्र.598 नारकियों का शरीर किस संस्थान रूप होता है?

उत्तर नारकियों का शरीर हुण्डक संस्थान रूप असमान-कुरूप होता है।

प्र.599 नरक गति में उत्पन्न होने के कारण क्या हैं?

उत्तर नरक गति में उत्पन्न होने के कारण बहुत आरम्भ रूप हिंसा, बहुत परिग्रह में आशक्ति, मिथ्यात्व की प्रबलता, मद्य मधु माँस का सेवन, देव, शास्त्र, गुरु का अवर्णवाद, मुनिहत्या, परधन हरण और परस्त्री में आशक्ति आदि है।

प्र.600 सप्तम नरक पृथ्वी से निकला नारकी जीव सम्यग्दृष्टि क्यों नहीं बन सकता?

उत्तर क्योंकि उसका क्रूर तिर्यंच में जन्म लेकर मिथ्यादृष्टि रहना एवं पुनः नरक जाने रूप कार्यों में प्रवृत्त

होकर नरक में पुन: एक बार उत्पन्न होना यह नियोग है। या निश्चित स्वभाव है।

प्र.601 छठी पृथ्वी से निकला नारकी जीव क्या प्राप्त कर सकता है?

उत्तर छठी पृथ्वी से निकला प्राणी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कर सकता है।

प्र.602 पाँचवी पृथ्वी से निकला नारकी जीव क्या प्राप्त कर सकता है?

उत्तर पाँचवी पृथ्वी से निकला नारकी जीव सकल संयम की प्राप्ति कर सकता है।

प्र.603 चतुर्थ पृथ्वी से निकला जीव कौन-सी अवस्था प्राप्त कर सकता है?

उत्तर चतुर्थ पृथ्वी से निकला जीव केवली व मोक्ष अवस्था प्राप्त कर सकता है।

प्र.604 प्रथम, द्वितीय और तृतीय पृथ्वी से निकला जीव कौन-सी विशिष्ट अवस्था प्राप्त कर सकता है?

उत्तर प्रथम, द्वितीय और तृतीय पृथ्वी से निकला जीव त्रि-लोक का कल्याणकारी व पूज्य तीर्थंकर का पद प्राप्त कर सकता है।

प्र.605 तीर्थंकर के गर्भ में आने के छह माह पूर्व तीर्थंकर जन्म नगरी में जब रत्नों की वर्षा प्रारम्भ हो जाती है तब नरक से आने वाली आत्मा की वहाँ क्या स्थिति होती होगी?

उत्तर ऐसी मंगल बेला में सम्यग्दृष्टि देवगण तीर्थंकर बनने वाले नारकी जीव के चारों ओर कोट रूप बाढ़ लगाकर पहरा देते हैं और उस तीर्थंकर बनने वाली आत्मा को किञ्चित कष्ट नहीं होने देते।

प्र.606 प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी में नारकियों की जघन्य आयु कितनी होती है?

उत्तर प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी में नारकियों की जघन्य आयु दस हजार वर्ष की होती है।

प्र.607 प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी से लेकर अंतिम महातम:प्रभा पृथ्वी पर्यन्त नारकियों की उत्कृष्ट आयु कितनी होती है?

उत्तर सातों पृथ्वियों में क्रमश: एक सागरोपम, तीन सागरोपम, सात सागरोपम, दस सागरोपम, सत्तरह सागरोपम, बाईस सागरोपम और तैंतीस सागरोपम नारकियों की उत्कृष्ट आयु होती है।

प्र.608 द्वितीय आदिक पृथ्वियों में नारकियों की होने वाली जघन्य आयु का प्रमाण कितना है?

उत्तर द्वितीय आदिक पृथ्वियों में नारकियों की होने वाली जघन्य आयु का प्रमाण अपनी ऊपर वाली पूर्व पृथ्वी की उत्कृष्ट आयु के प्रमाण रूप है।

प्र.609 रत्नप्रभादि सप्त पृथ्वियों में नारकियों के लिए कौन-कौन-से सम्यग्दर्शनों की प्राप्ति संभव है?

उत्तर रत्नप्रभादि सप्त पृथ्वियों में नारकियों के लिए उपशम एवं क्षयोपशम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति संभव है।

प्र.610 प्रथम नरक पृथ्वी से लेकर तृतीय नरक पृथ्वी तक रहने वाले नारकियों के लिए सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में निमित्त कारण कौन-कौन-से हैं?

उत्तर प्रथम नरक पृथ्वी से लेकर तृतीय नरक पृथ्वी तक नारकियों के लिए सम्यग्दर्शन के निमित्त जातिस्मरण, धर्मश्रवण और और तीव्र वेदनानुभव ये तीन निमित्त हैं। जिनमें से किसी एक निमित्त-कारण से सम्यक्त्व प्राप्त हो सकता है।

प्र.611 चतुर्थ नरक पृथ्वी से लेकर सप्तम नरक पृथ्वी तक सम्यक्त्व प्राप्ति के निमित्त-कारण कौन-कौन-से हैं?

उत्तर चतुर्थ नरक पृथ्वी से लेकर सप्तम नरक पृथ्वी तक सम्यक्त्व प्राप्ति के निमित्त-कारण जातिस्मरण एवं तीव्र वेदनानुभव ये दो ही हैं।

प्र.612 नरक पृथ्वियों में धर्म श्रवण होना कैसे संभव होता है?

उत्तर पूर्वभव के परिचित देव तृतीय नरक भूमि तक जाकर उपकार के निमित्त नारकियों के लिए धर्मोपदेश देते हैं, अत: तृतीय पृथ्वी तक धर्मश्रवण निमित्त संभव है।

प्र.613 तृतीय पृथ्वी के नीचे धर्म-श्रवण निमित्त संभव क्यों नहीं है?

उत्तर प्रथम कारण कि तृतीय पृथ्वी के नीचे देवों का गमन नहीं है। द्वितीय कारण वहाँ के क्षेत्र का वातावरण अनुकूल न होने से तथा परस्पर में परोपकार की भावना नहीं होने से; वहाँ के सम्यग्दृष्टि नारकी अन्य नारकियों को सम्बोधित नहीं करते अत: वहाँ धर्म श्रवण निमित्त संभव नहीं है।

प्र.614 प्रथम पृथ्वी में नारकियों की पर्याप्त अवस्था में कौन-से सम्यग्दर्शन पाये जाते हैं?

उत्तर प्रथम पृथ्वी में नारकियों की पर्याप्त अवस्था में उपशम, क्षायिक और क्षयोपशम ये तीनों सम्यग्दर्शन पाये जाते हैं।

प्र.615 प्रथम पृथ्वी में अपर्याप्त अवस्था में नारकियों के कौन-से सम्यग्दर्शन पाये जाते हैं?

उत्तर प्रथम पृथ्वी में अपर्याप्त अवस्था में नारकियों के क्षायिक सम्यग्दर्शन तथा कृतकृत्य वेदक की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन पाया जाता है।

प्र.616 कृतकृत्य वेदक की अपेक्षा क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन कैसे घटता है?

उत्तर क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के सम्मुख जीव जब तक मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबंधी चतुष्क का क्षय नहीं कर देता तब तक वह कृतकृत्य वेदक क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि कहलाता है और एक मत से वह मरण कर दूसरी गति में जाते समय उस जीव के अपर्याप्त अवस्था में ऐसी कृतकृत्य वेदक क्षायोपशमिक अवस्था घटित होती है।

प्र.617 द्वितीयादिक पृथ्वियों में जाते समय नारकियों की अपर्याप्त अवस्था में कोई सम्यग्दर्शन घटित होता है क्या?

उत्तर नहीं। क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम पृथ्वी के आगे उत्पन्न नहीं होते।

प्र.618 मध्यलोक में स्थित शुभनाम वाले असंख्यात द्वीप समुद्रों में से मध्यस्थित शुभ नाम वाले कुछ द्वीप, समुद्रों के नाम कौन-से हैं?

उत्तर जम्बूद्वीप, लवणोदधि समुद्र, धातकीखण्ड द्वीप, कालोदधि समुद्र, पुष्करवर द्वीप, पुष्करवर समुद्र, वारुणीवर द्वीप, वारुणीवर समुद्र, क्षीरवर द्वीप, क्षीरवर समुद्र, घृतवर द्वीप, घृतवर समुद्र, क्षौद्रवर द्वीप, क्षौद्रवर समुद्र, नन्दीश्वर द्वीप, नन्दीश्वर समुद्र, अरुणवर द्वीप, अरुणवर समुद्र, अरुणभास द्वीप, अरुणभास समुद्र, कुण्डलवर द्वीप, कुण्डलवर समुद्र, शंखवर द्वीप, शंखवर समुद्र, रुचकवर द्वीप,

रुचकवर समुद्र, भुजगवर द्वीप, भुजगवर समुद्र, कुशवर द्वीप, कुशवर समुद्र और क्रौंचवर द्वीप तथा क्रौंचवर समुद्र इस तरह मध्य लोक में शुभ नाम वाले प्रारम्भ स्थित सोलह द्वीप-समुद्र हैं। (मूलाचार भाग 2)

प्र.619 लवणोदधि आदिक समुद्रों का स्वाद कैसा है?

उत्तर वारुणीवर, लवणोदधि, घृतवर और क्षीरवर ये चार समुद्र अपने-अपने नामानुसार स्वाद वाले हैं। कालोदधि, पुष्करवर और स्वयंभूरमण ये तीन समुद्र जल सदृश स्वाद वाले हैं और शेष समुद्र इक्षुरस सदृश स्वाद वाले हैं।

प्र.620 सभी द्वीप और समुद्र मध्यलोक में किस तरह स्थित हैं?

उत्तर सभी द्वीपों और समुद्रों में प्रथम द्वीप जम्बूद्वीप; थाली सदृश गोल वृत्ताकार रूप में तथा अन्य समुद्र व द्वीप चूड़ीसम वलयाकृति रूप में स्थित हैं। जो एक दूसरे को घेरे हुए हैं।

प्र.621 सर्व द्वीप और समुद्रों का विस्तार कितना है?

उत्तर नाभिसम मेरु पर्वत है जिसके, ऐसा मध्य स्थित जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन का है। उसके आगे लवण समुद्र से लेकर स्वयंभूरमण समुद्र पर्यन्त द्वीप समुद्रों के विस्तार क्रमशः दुगने-दुगने रूप में हैं।

प्र.622 सर्व समुद्र कितनी गहराई वाले हैं?

उत्तर चित्रा भूमि की मोटाई एक हजार योजन है और सर्वसमुद्र एक हजार योजन गहराई वाले हैं। अर्थात् सर्व समुद्रों का तल भाग चित्राभूमि को भेदकर वज्रापृथ्वी पर स्थित है।

प्र.623 ढाईद्वीप किसे कहा जाता है?

उत्तर जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्करार्ध द्वीप को ढाई द्वीप कहा गया है।

प्र.624 मानुषोत्तर पर्वत किसे कहते हैं?

उत्तर पुष्करार्ध द्वीप को इष्वाकार रूप से मध्य से भेद करने वाला एवं ढाई द्वीप की सीमा बतलाने वाला पर्वत तथा जिस पर्वत के आगे मनुष्यों की गति नहीं होती है और मनुष्य उसके भीतर ढाई द्वीप में ही पाये जाते हैं ऐसी सीमांकन करने वाला पर्वत मानुषोत्तर पर्वत कहलाता है।

अध्याय - 7. द्वीप, पर्वत, काल, परिवर्तनादि

प्र. 625 ढाई द्वीप के बाहर स्थित कौन-सी भूमियाँ कहलाती हैं ?

उत्तर ढाई द्वीप की सीमा पर स्थित मानुषोत्तर पर्वत से लेकर अंतिम स्वयंप्रभ पर्वत तक असंख्यात द्वीप समुद्रों में होने वाली भूमियाँ जघन्य भोगभूमियाँ कहलाती हैं।

प्र. 626 स्वयंप्रभ पर्वत कहाँ पर स्थित है?

उत्तर स्वयंप्रभ (नागेन्द्र) पर्वत; अंतिम स्वयंभूरमण द्वीप के बीचोंबीच (मध्य) में वलयाकार रूप से अवस्थित है।

प्र. 627 ढाई द्वीप के बाहर जघन्य भोगभूमियों तक कौन-से जीव पाए जाते हैं ?

उत्तर ऐसी जघन्य भोगभूमियों में संज्ञी पंचेन्द्रिय का सद्‌भाव एवं विकलेन्द्रिय जीवों का अभाव होता है। (भूमि पृथ्वीकायिक है।)

प्र. 628 ढाई द्वीप के बाहर स्वयंप्रभ पर्वत तक स्थित समुद्रों में कौन-से जीव पाये जाते हैं?

उत्तर इन मानुषोत्तर और स्वयंप्रभ पर्वत के मध्यस्थित समुद्रों में विकलत्रय व जलचर जीवों का अभाव है। (जल, पृथ्वी एकेन्द्रिकायिक है।)

प्र. 629 स्वयंप्रभ पर्वत के बाहर स्थित स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र का वातावरण किस प्रकार का होता है?

उत्तर स्वयंभूरमण द्वीप और समुद्र का वातावरण दुषमा सुषमा काल रूप कर्मभूमि के प्रकार का होता है।

प्र. 630 स्वयंभूरमण द्वीप में कौन-से जीव पाये जाते हैं ?

उत्तर स्वयंभूरमण द्वीप में मनुष्यों के अलावा कर्मभूमि सदृश सकलेन्द्रिय, विकलेन्द्रियादि सर्व तरह के तिर्यंच जीव पाये जाते हैं।

प्र. 631 स्वयंभूरमण समुद्र में कौन-से जीव पाये जाते हैं ?

उत्तर स्वयंभूरमण समुद्र में तन्दुल मच्छ, राघव मच्छ आदि सकलेन्द्रिय तथा द्वीन्द्रिय आदि विकलेन्द्रिय जीव भी पाये जाते हैं।

प्र. 632 स्वयंभूरमण द्वीप स्थित स्वयंप्रभ पर्वत के बाह्य भाग में पाये जाने वाले तिर्यंच क्या देशसंयम धारण कर सकते हैं?

उत्तर हाँ! वहाँ रहने वाले संज्ञी पंचेन्द्रिय (बहुसंख्यक) तिर्यंच जातिस्मरण या देवों से संबोधन पाकर अणुव्रत धारण कर स्वर्गिक (बहुसंख्यक) देव स्थानों की पूर्ति करते हैं, अर्थात् कल्पवासी देव स्थानों (पर्यायों) को प्राप्त करते हैं। (जम्बूद्वीप या मध्यलोक वर्णन देखें जैनागम संस्कार अ.१३, पृ.११८ पर)

प्र. 633 वृषभगिरि पर्वत कहाँ पर स्थित है?

उत्तर वृषभगिरि पर्वत; भरत क्षेत्र के मध्य में स्थित षड्‌खण्डों के विभाजक रूप विजयार्ध पर्वत की उत्तर

दिशि में स्थित मध्य म्लेच्छखण्ड के बीचों-बीच गोलाकार रूप में स्थित है।

प्र. 634 वृषभगिरि पर्वत की क्या विशेषता है?

उत्तर चक्रवर्ती द्वारा षट्खण्डों पर विजय प्राप्ति के उपरान्त चक्रवर्ती का नाम वृषभगिरि के ऊपर अंकित किया जाता है यह इस पर्वत की विशेषता है।

प्र. 635 विजयार्ध पर्वत कैसा और कितने विस्तार वाला है?

उत्तर विजयार्ध पर्वत भरत क्षेत्र में पूर्व-पश्चिम लम्बायमान पच्चीस योजन ऊँचा एवं पचास योजन चौड़े विस्तार वाला है।

प्र. 636 विजयार्ध पर्वत के ऊपर क्या विशेष रचना है?

उत्तर विजयार्ध पर्वत में भूतल से दस योजन ऊपर जाकर इसकी उत्तर-दक्षिण दिशा में विद्याधरों के नगरों की दो शाश्वत श्रेणियाँ हैं। वहाँ दक्षिण श्रेणी में पचपन और उत्तर श्रेणी में साठ नगर हैं। इन श्रेणियों से भी दस योजन ऊपर जाकर उसी प्रकार दक्षिण व उत्तर दिशा में अभियोग देवों की श्रेणियाँ हैं। इसके ऊपर नौ कूट हैं पूर्व दिशा के कूट पर सिद्धायतन (जिनमंदिर) है और शेष कूटों पर यथायोग्य नामधारी व्यन्तर व भवनवासी देव रहते हैं।

प्र. 637 विजयार्ध पर्वत के मूल भाग में क्या विशेषता है?

उत्तर विजयार्ध पर्वत के मूल भाग में पूर्व व पश्चिम दिशाओं में तमिस्र व खण्डप्रताप नाम की दो लम्बी गुफाएँ हैं जिनमें क्रमशः गंगा व सिन्धु नदी प्रवेश करती हैं। इन गुफाओं के भीतर बहु मध्य भाग में दोनों तटों से उन्मग्ना एवं निमग्ना नाम की दो नदियाँ निकलती हैं जो गंगा और सिन्धु में मिल जाती हैं।

प्र. 638 उन्मग्ना और निमग्ना नदियों की क्या विशेषता है?

उत्तर उन्मग्ना नदी के कुण्ड में डाली हुई वस्तु नीचे से ऊपर की ओर आ जाती है और निमग्ना नदी में डाली हुई वस्तु ऊपर से नीचे की ओर चली जाती है।

प्र. 639 विजयार्ध नामक पर्वत मात्र भरत क्षेत्र में ही है या अन्य क्षेत्र में भी है?

उत्तर भरत क्षेत्र की भांति ऐरावत क्षेत्र के मध्य में भी एक विजयार्ध है जिसका सम्पूर्ण कथन भरतस्थ विजयार्धवत् ही है, कूटों व तन्निवासी देवों के नाम भिन्न हैं। विदेह क्षेत्र के बत्तीस उपविदेहों में प्रत्येक के मध्य पूर्वापर लम्बायमान विजयार्ध पर्वत है, जिनका सम्पूर्ण वर्णन भरत के विजयार्धवत् है। विशेषता यह है कि यहाँ उत्तर व दक्षिण दोनों श्रेणियों में पचपन-पचपन नगर हैं, इनके ऊपर नौ-नौ कूट हैं, परन्तु उनके व उन पर रहने वाले देवों तथा प्रमुख नदियों के नाम भिन्न हैं। (त्रि.सा.)

प्र. 640 विजयार्ध पर्वत के ऊपर कौन-सी भूमि अवस्थित होती है और वहाँ कौन-सा काल चलता है?

उत्तर विजयार्ध पर्वत पर सदा कर्म भूमि अवस्थित होती है और वहाँ हमेशा एक सदृश दुषमा-सुषमा (वर्तमान अवसर्पिणी के चतुर्थकाल के समान) काल चलता रहता है।

प्र. 641 विजयार्ध पर्वत के ऊपर स्थित अकृत्रिम विजयार्ध श्रेणियों से विद्याधर मनुष्यों या दुषमासुषमा काल से सम्बन्धित मनुष्यों के लिए संयम धारण की योग्यता, कैवल्य की उपलब्धि और मोक्ष

की प्राप्ति सदा काल सम्भव होती है क्या?

उत्तर हाँ! वहाँ सदाकाल दुषमासुषमा काल का वातावरण होने से उत्तम संहननादि के भी निमित्त मिलने पर संयम, कैवल्य और मोक्ष की प्राप्ति सदा संभव है।

प्र. 642 विजयार्ध पर्वत के विद्याधरों का विदेह क्षेत्रादि में गमना-गमन आज भी संभव होता है क्या?

उत्तर विद्याधर मनुष्य विद्याओं के स्वामी होते हैं वे आकाशगामनी विद्याओं द्वारा ढाई द्वीप में कभी भी, कहीं भी गमना-गमन कर सकते हैं।

प्र. 643 आज इस भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में चतुर्थ काल के समान इस पंचम काल में विद्याधर क्यों नहीं दिखाई देते ?

उत्तर चतुर्थ काल में यहाँ भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में भी विजयार्ध श्रेणी जैसा दुषमासुषमा काल का वातावरण था। आयु, उत्सेधादि समान थे और लोग बड़े पुण्यवान भी थे अत: विजयार्ध श्रेणी के तद्भव मोक्षगामी हनुमान व अधोगामी रावण जैसे विद्याधरों का निवास इस आर्यखण्ड में सहज संभव था लेकिन आज वहाँ के विद्याधरों का अदृश्यरूप में आना-जाना सम्भव होते हुए भी साक्षात्कार होना असंभव है।

प्र. 644 युग परिवर्तन किसे कहते हैं?

उत्तर दो कल्पों का एक युग होता है ऐसे कल्पकालों के परिवर्तन का नाम युग परिवर्तन कहलाता है।

प्र. 645 कल्पकाल किसे कहते हैं ?

उत्तर उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मिलकर एक कल्पकाल कहे जाते हैं।

प्र. 646 कल्पकाल में काल संख्या कितनी होती है?

उत्तर दस-दस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम काल प्रमाण वाले क्रमश: उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी (काल का संयुक्त) रूप कल्पकाल की काल संख्या बीस कोड़ा-कोड़ी सागरोपम है।

प्र. 647 उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी में होने वाले छह-छह कालों के नाम और उनमें काल संख्या का विभाजन किस तरह से है ?

उत्तर	**षटकालों के नाम**	**काल संख्या**
अवसर्पिणी	सुषमसुषमा काल	-चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम
	सुषमा काल	-तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम
	सुषमदुष्षमकाल	-दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम
	दुष्षमसुषमा काल	-ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम
	दुष्षमा काल	-इक्कीस हजार वर्ष
	अतिदुष्षमा काल	-इक्कीस हजार वर्ष
उत्सर्पिणी	दुष्षमदुष्षम काल	-इक्कीस हजार वर्ष
	दुष्षमाकाल	-इक्कीस हजार वर्ष

दुष्षमसुषमाकाल	-ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरोपम
सुषमदुष्षमाकाल	-दो कोड़ाकोड़ी सासगरोपम
सुषमाकाल	-तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम
अतिसुषमाकाल	-चार कोड़ाकोड़ी सागरोपम

प्र. 648 इन कालों में भोग भूमि व कर्म भूमि की व्यवस्था कब-कब होती है ?

उत्तर अवसर्पिणी के प्रथम तीन कालों में एवं उत्सर्पिणी के अंत के तीन कालों में भोगभूमि तथा अवसर्पिणी के अंत तीन कालों में एवं उत्सर्पिणी के प्रथम तीन कालों में कर्मभूमि की व्यवस्था होती है।

प्र.649 उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी की भावात्मक व्याख्या किस तरह की है ?

उत्तर शारीरिक ऊँचाई, आयु, बल, ऋद्धि और तेज आदिक जिन समयों में उत् अर्थात् उत्कृष्ट या वृद्धि को प्राप्त होते चले जाते हैं वह उत्सर्पिणी और जिन समयों में अव अर्थात् अनुत्कृष्ट या हीन होते चले जाते हैं वह अवसर्पिणी काल कहलाता है।

प्र. 650 सुषमा, दु:षमा का लक्षण क्या है ?

उत्तर 'समा' काल के विभाग को कहते हैं तथा सु और दुर् उपसर्ग क्रम से अच्छे और बुरे अर्थ में आते हैं। सु और दुर् को समा के साथ जोड़ने पर तथा व्याकरणानुसार 'स' को 'ष' कर देने से सुषमा और दु:षमा शब्दों की सिद्धि होती है। जिसका अर्थ सुखद् या दु:खद काल होता है।

प्र. 651 सुषमा-सुषमाकाल आदि की भोगभूमियों में पृथ्वी का वातावरण किस तरह का होता है?

उत्तर इन भोग भूमियों में भूमि धूल, धूम, अग्नि और हिम से रहित तथा कण्टक, बर्फ एवं द्वि, त्रि और चतुरिन्द्रिय रूप विकलेन्द्रिय जीवों से रहित होती है, तथा इन कालों में भूमि; तन, मन और नयनों को सुखदायक, रत्नों से भरी व दर्पणवत् दर्शित होती है।

प्र. 652 भोग-भूमियों का प्राकृतिक सौंदर्य और किस तरह का है ?

उत्तर भोगभूमियों में कोमल घास व फलों से लदे वृक्ष, कमलों से परिपूर्ण वापिकाएँ, सुन्दर भवन, कल्पवृक्षों से परिपूर्ण पर्वत और सुन्दर नदियाँ हैं, तथा जहाँ दिन-रात्रि का भेद, शीत व गर्मी की वेदना का अभाव रहता है।

प्र. 653 भोग-भूमि में मनुष्यों की प्रकृति किस तरह की होती है ?

उत्तर भोग-भूमि में अनुपम लावण्य से परिपूर्ण सुख सागर में मग्न, मार्दव एवं आर्जव गुण से सहित मन्द कषायी सुशीलतापूर्ण भोग-भूमि में मनुष्य होते हैं। वे मनुष्य गुणियों के गुणों में अनुरक्त, जिन पूजन करते हैं। उपवासादि संयम के धारक परिग्रह रहित यतियों को आहार दान देने में तत्पर रहते हैं। (ति.प.३६५-३६७)

प्र.654 भोग-भूमि के मनुष्य किस कार्य से रहित होते हैं ?

उत्तर भोग-भूमि के मनुष्य मांसाहार के त्यागी, उदम्बर फलों के त्यागी, असत्य के व्यवहार से रहित, परस्त्री

भोग के त्यागी और परवस्तु हरण की भावना से रहित होते हैं। तथा उनके तन से मल, मूत्र का स्राव नहीं होता है।

प्र. 655. भोग-भूमि के मनुष्यों में विक्रिया और आभरण की क्या विशेषता होती है?

उत्तर भोग-भूमि के मनुष्य विक्रिया से बहुत से शरीरों को बनाकर अनेक प्रकार के भोगों को; पूर्ण आयु पर्यंत भोगते हैं तथा स्वभाव से ही मुकुट, हार आदि आभूषणों से युक्त होते हैं।

प्र. 656 भोग-भूमि में मनुष्यों के लिए भोज्य व्यञ्जन एवं अलंकार भवन आदि रूप भोगोपभोग पदार्थ किस तरह उपलब्ध होते हैं?

उत्तर भोग-भूमि में सर्व भोगोपभोग पदार्थ वहाँ भोग-भूमिज जीवों के पुण्य से सुस्थित कल्प वृक्षों से प्राप्त होते हैं। (कल्पवृक्षों का सुन्दर विवरण इसी कृति के प्रारम्भ में प्रथमानुयोग के विषय में वर्णित किया गया है।)

प्र. 657 भोग-भूमि में जीवों का गर्भधारण व जन्म-मरण किस तरह होता है?

उत्तर भोग-भूमि में मनुष्य और तिर्यञ्चों की नौ मास आयु शेष रहने पर गर्भ रहता है और मृत्यु-समय आने पर युगल बालक-बालिका जन्म लेते हैं। नवमास पूर्ण होने पर गर्भ से युगल निकलते ही तत्काल ही माता-पिता मरण को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् पुरुष की छींक आने से और स्त्री की जंभाई आने से मृत्यु हो जाती है।

प्र. 658 उत्तम, मध्यम एवं जघन्य भोगभूमिज जीवों को अंगूठे-चूसने, उपवेशन (बैठना) आदि सप्त अवस्थाओं में कितना-कितना काल आपेक्षित (लगता) है?

उत्तर उत्तम, मध्यम और जघन्य भोग-भूमिज जीवों को अंगूठा चूसने, उपवेशन, अस्थिरगमन, स्थिर गमन, कलागुणों की प्राप्ति, तारुण्य और सम्यग्दर्शन रूप इन सप्त अवस्थाओं में क्रमश: 3-3, 5-5 और 7-7 दिनों का काल आपेक्षित होता है। अर्थात् उत्तम भोगभूमि का जीव २१ दिनों में सम्यग्दर्शन तक की अवस्था प्राप्त करने के योग्य हो पाता है। इसी तरह मध्यम भोग-भूमि में 35 दिनों में तथा जघन्य भोगभूमि में 49 दिनों में सम्यक्त्व की भी प्राप्ति के योग्य हो पाता है।

प्र. 659 भोग-भूमिज मनुष्यों के लिए अंगूठे से क्या महत्त्व प्रदर्शित होता है?

उत्तर भोग-भूमिज मनुष्यों के अंगूठे से अमृत झरता है जिसे वे चूसा करते हैं और वह अमृत उनके अविलम्ब शारीरिक विकास में कारण बनता है।

प्र. 660 भोग-भूमिज मनुष्य; जीवन में कितनी कलाओं में निपुण होते हैं?

उत्तर भोग-भूमिज मनुष्य पूर्ण जीवन में अक्षरकला, चित्रकला, गणित, गन्धर्व (संगीत) और शिल्प आदि चौसठ कलाओं में स्वभाव से अतिशय निपुण होते हैं।

प्र. 661 उत्तम, मध्यम और जघन्य रूप अशाश्वत भोग-भूमियों में जीवों के ऋद्धि, तेज आदि सदा समान ही रहते हैं क्या या कोई विशेषता है?

उत्तर अवसर्पिणी काल सम्बन्धी भोग-भूमियों में जीवों के शारीरिक उत्सेध, आयु, बल, ऋद्धि (विक्रिया) और तेज आदि हीन-हीन होते चले जाते हैं। (भोग-भूमियों में उत्सेध, आहारादि देखिये जैनागम संस्कार अध्याय 13 पृ. 65)

प्र. 662 भोग-भूमियों में तिर्यञ्चों के सद्भाव एवं अनके आहार सम्बन्धी क्या विशेषता है ?

उत्तर भोग-भूमियों में गाय, सिंह, हाथी, शृंगाल, शूकर, सारंग, रोझ, भैंस, बन्दर, गवय, कोयल, तोता, कबूतर और राजहंस आदि तिर्यञ्च; कल्पवृक्षों से प्राप्त शाकाहार का मनवांछित स्वादिष्ट भोग करते हैं।

प्र. 663 वर्तमान दुषमसुषमा (चतुर्थकाल) कब प्रारम्भ हुआ था ?

उत्तर ऋषभनाथ तीर्थंकर के निर्वाण होने के पश्चात् तीन वर्ष और साढ़े आठ मास के व्यतीत होने पर दुषमसुषमा नामक चतुर्थ काल प्रारम्भ हुआ था।

प्र. 664 दुषमा काल प्रारम्भ के कितने वर्ष पूर्व महावीर भगवान् को निर्वाण प्राप्त हुआ ?

उत्तर दुषमा नामक पञ्चम काल के प्रारम्भ में तीन वर्ष आठ मास एक पक्ष के शेष रहने पर तीर्थंकर महावीर भगवान् को निर्वाण की प्राप्ति हुयी थी।

प्र. 665 भगवान महावीर के निर्वाण के उपरान्त कौन-से अनुबद्ध केवली हुए थे ?

उत्तर भगवान महावीर के निर्वाणोपरान्त गौतम स्वामी, सुधर्मस्वामी और जम्बूस्वामी तीन अनुबद्ध केवली हुए थे।

प्र. 666 केवलियों के निर्वाणोपरान्त ग्यारह अंग और चौदह पूर्व ज्ञान (द्वादशांग) रूप सम्पूर्णश्रुत के ज्ञाता कौन-से पाँच श्रुतकेवली हुए थे ?

उत्तर प्रथम श्रुतकेवली विष्णु आचार्य हुए। द्वितीय श्रुतकेवली नन्दिमित्र आचार्य हुए। तृतीय श्रुतकेवली अपराजित आचार्य हुए। चतुर्थ श्रुतकेवली गोवर्धन आचार्य हुए और पंचम श्रुतकेवली भद्रबाहु आचार्य हुए।

प्र. 667 श्रुतकेवली मुनीश्वरों के उपरान्त ग्यारह अंग और दस पूर्व ज्ञान के ज्ञाता कौन-से मुनीश्वर हुए थे ?

उत्तर ग्यारह अंग और दस पूर्व ज्ञान के ज्ञाता हुए-

1. विशाखाचार्य, 2.प्रोष्ठिल आचार्य (चन्द्रगुप्त मौर्य), 3.क्षत्रिय आचार्य (कृतिकार्य) 4.जयसेन आचार्य, 5.नागसेन आचार्य, 6.सिद्धार्थ आचार्य, 7.धृतषेण आचार्य और 8. विजयसेन आचार्य।

प्र. 668 अनेक अंगपूर्वों के ज्ञाता आचार्यों के उपरान्त अन्तिम अंगाशधर श्रुत ज्ञाता आचार्य कौन थे ?

उत्तर अन्तिम अंगाशधर श्रुतज्ञाता धरसेन आचार्य थे।

प्र.669 धरसेन आचार्य ने कौन-से सुयोग्य शिष्यों के लिए अपना ज्ञान प्रदान किया था ?

उत्तर धरसेनाचार्य ने महामुनि पुष्पदन्त और महामुनि भूतबली नामक दो महान सुयोग्य शिष्यों के लिए अपना ज्ञान प्रदान किया था।

प्र. 670 पुष्पदन्त, भूतबली नामक महान आचार्यों ने प्राकृतभाषा में कौन-से महान ग्रन्थ की रचना कब की थी?

उत्तर पुष्पदन्त, भूतबली इन महान आचार्यों ने प्राकृतभाषा में षट्खण्डागम नामक महान ग्रन्थ की रचना लगभग वीर-निर्वाण संवत् 600 से 650 के बीच की थी।

प्र. 671 आचार्य कुन्दकुन्द देव ने 'षट्खण्डागम' महान ग्रन्थ पर कौन-से नाम वाली विस्तृत टीका लिखी थी?

उत्तर आचार्य कुन्दकुन्द देव ने 'षट्खण्डागम' महान ग्रन्थ पर सर्वप्रथम 'परिकर्म' नामक विशाल टीका लिखी थी।

प्र.672 आचार्य कुन्दकुन्द देव के श्री गुरुवर का शुभनाम क्या था ?

उत्तर आचार्य कुन्दकुन्द देव के श्री गुरुवर का शुभ नाम जिनचन्द्र स्वामी था। (आचार्य कुन्द-कुन्द विरचित अनेक (40) ग्रन्थों के नाम तमिल साहित्य से प्राप्त। देखिये सन्दर्भ- जैनागम संस्कार अध्याय १०, पृ. १६ पर।)

प्र. 673 षट्खण्डागम ग्रन्थ में सिद्धांत विषयक छह खण्ड कौन-से नाम वाले वर्णित हैं?

उत्तर षट्खण्डागम ग्रन्थ में 1.जीवट्ठाण, 2.खुद्दाबन्ध, 3.बन्धस्वामित्व विचय, 4.वेदना, 5.वर्गणा और 6. महाबंध नाम से छह खण्डरूप में विषय वर्णित किया गया है। (जो सोलह पुस्तकों में विभाजित है।)

प्र.674 षट्खण्डागम ग्रन्थ पर विशाल रूप धवला नामक टीका बनाने का सौभाग्य कौन से महान आचार्य को प्राप्त हुआ ?

उत्तर षट्खण्डागम महान सैद्धान्तिक ग्रन्थ पर विशाल धवला नामक टीका लिखने का सौभाग्य आचार्य वीरसेन स्वामी को प्राप्त हुआ था।

प्र.675 'कषायपाहुड़' सैद्धान्तिक महान ग्रन्थ को किन विशिष्ट आचार्यों ने कब विरचित किया था ?

उत्तर कषायपाहुड़ इस सैद्धान्तिक महान ग्रन्थ की रचना आचार्यगुणधर, आचार्य आर्यमंक्षु व आचार्य नागहस्ति और आचार्य यतिवृषभ ने लगभग वीर-निर्वाण संवत् 500 से 660 के बीच की थी।

प्र.676 कषायपाहुड़ महान ग्रन्थ पर कौन-से महान आचार्यों ने कितनी विशाल कौन-सी नामवाली टीका विरचित की थी?

उत्तर कषायपाहुड़ महान ग्रन्थ पर आचार्य वीरसेन स्वामी ने 20 हजार श्लोक प्रमाण एवं उनके ही शिष्य आचार्य जिनसेन स्वामी ने गुरु समाधि के उपरान्त 40 हजार श्लोक प्रमाण 'जयधवला' नामक टीका विरचित की थी।

प्र. 677 दुषमा नामक पंचम काल में श्रुततीर्थ का व्युच्छेद कब हो जावेगा ?

उत्तर इस दुषमा काल में धर्म प्रवर्तक श्रुततीर्थ का व्युच्छेद 20317 वर्षों में हो जावेगा।

प्र. 678 दुषमा काल में कौन-से अन्तिम मुकुटधारी राजा ने किनके चरणों में दिगम्बर मुनि दीक्षा धारण की थी ?

उत्तर दुषमा काल में अन्तिम मुकुट धारी राजा सम्राट चन्द्रगुप्त ने स्वामी भद्रबाहु श्रुतकेवली के चरणों में दिगम्बर मुनि दीक्षा धारण की थी।

प्र.679 पंचम (दुषमा) काल में धर्म द्रोही कल्की व उपकल्की कब उत्पन्न होता है ?

उत्तर पंचम काल में पाँच सौ वर्षों में एक उपकल्की एवं एक हजार वर्ष में एक कल्की उत्पन्न होता है।

प्र.680 ऐसे धर्म द्रोही कल्की मुनियों पर किस तरह बाधा उत्पन्न करता है ?

उत्तर धर्म द्रोही कल्की मुनियों से आहार पर भी शुल्क मांगता है और मुनिराज अन्तराय कर निराहार लौट आते हैं।

प्र. 681 धर्म द्रोही कल्की को देवता किस तरह सबक देते हैं ?

उत्तर धर्मद्रोही कल्की को असुर; जीवन से रहित कर देते हैं।

प्र. 682 ऐसे विकट समय में कल्की के प्राणान्त होने के उपरांत धर्म का संरक्षण किस तरह होता है?

उत्तर ऐसे विकट समय में अर्थात् प्रत्येक एक हजार वर्ष में एक मुनि को अवश्य रूप से अवधिज्ञान उत्पन्न हो जाता है और मुनिवर शास्त्रों का और आयतनों (जिनमंदिर आदि) के संरक्षण का उपाय बतलाते हैं।

प्र.683 इस दुषमा नामक पंचम काल में अन्तिम कल्की के समय कौन-से मुनिराज अवधिज्ञान के धारक होंगे ?

उत्तर इस पंचमकाल के अंत में वीरांगज नामक मुनिराज अवधिज्ञान के धारक होंगे।

प्र.684 पंचम काल के अन्त में वीरांगज नामक मुनिराज के समय कौन-सी आर्यिका एवं श्रावक व श्राविका रहेंगी?

उत्तर वीरांगज नामक मुनिराज के समय सर्वश्री नामक आर्यिका, अग्निदत्त नामक श्रावक तथा पंगुश्री नामक श्राविका रहेंगी।

प्र.685 अन्तिम कल्की के द्वारा उपसर्ग किये जाने पर अर्थात् वीरांगज मुनि का शुल्क के रूप में ग्रास उठा लिये जाने पर चतुर्विध संघ की क्या प्रतिक्रिया होगी ?

उत्तर अन्तिम कल्की द्वारा बाधा उत्पन्न होने पर वीरांगज मुनि आदि चतुर्विध संघ कार्तिक कृष्ण अमावस्या को सल्लेखना पूर्वक देह त्याग कर सौधर्म स्वर्ग में देव पर्याय को प्राप्त होंगे।

प्र.686 चतुर्विध संघ के समाधि मरण के दिन कौन-सी घटना घटेगी?

उत्तर उस दिन क्रोध को प्राप्त हुआ असुर देव; कल्की के प्राणान्त कर देगा और सूर्यास्त के समय अग्नि विनष्ट हो जावेगी।

प्र.687 धर्मद्रोही कल्की पाप के भार से कौन-सी गति में जाकर उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर धर्मद्रोही 21 कल्की एक सागर की आयु से युक्त होकर धम्मा नरक (प्रथम पृथ्वी रत्नप्रभा) में जाकर उत्पन्न होते हैं।

प्र.688 दुषमादुषमा नामक छठा काल कब प्रारम्भ होता है ?

उत्तर अन्तिम कल्की के पश्चात् तीन वर्ष आठ मास और एक पक्ष के बीत जाने पर महाविषम वह अतिदुषमा

नामक छठा काल प्रारम्भ होता है। (छह कालों में आयु उत्सेध व आहार वर्णन देखें जैनागम संस्कार अ.13)

प्र.689 अतिदुषमा काल में मनुष्यों का शरीर किस वर्ण का होता है ?

उत्तर दुषमा-दुषमा काल में मनुष्यों का शरीर धूमवर्ण (कृष्णवर्ण) का होता है।

प्र.690 अतिदुषमा काल में मनुष्यों का आहार किस तरह का होता है ?

उत्तर ऐसे अतिदुषमा काल में मनुष्यों का आहार मूल, फल व आमिस आदिक होता है वे उसी को खाकर अपनी उदर पूर्ति करते हैं।

प्र.691 अतिदुषमा काल में क्या मनुष्य भवनों में निवास करते हैं ?

उत्तर नहीं! ऐसे अतिदुषमा काल में मनुष्यों के लिए भवन, वृक्ष और वस्त्रादि दिखाई नहीं देते।

प्र.692 दुषमादुषमा नामक काल में मनुष्यों को होने वाले शारीरिक दुःख कौन-से होते हैं?

उत्तर ऐसे अतिदुषमा काल में मनुष्य प्रायः पशुओं जैसा आचरण करने वाले क्रूर, बहरे, अन्धे, काने, गूंगे दुर्गन्धित व जूँ, लीख युत केश सह रहते हैं। वे मनुष्य बन्दर जैसे रूपवाले एवं कुबड़े, बोने और व्याधि युक्त शरीर वाले होते हैं।

प्र.693 ऐसे छठे काल के मुनष्य किस स्वभाव वाले होते हैं ?

उत्तर छठे काल के मनुष्य क्रोधी, अति कषायी, अति पापिष्ठ, दीन-दरिद्र और स्वजन जनों से विहीन स्वभाव वाले होते हैं।

प्र.694 ऐसे छठे काल में आगमन और निर्गमन वे मनुष्य किस रूप में करते हैं?

उत्तर ऐसे छठे काल में नरक और तिर्यंच गति से आये हुए जीव यहाँ जन्म लेते हैं, तथा यहाँ से मरण कर घोर नरक व तिर्यंच गति में जन्म लेते हैं।

प्र.695 छठे काल में कौन-कौन सी हानियाँ होती चली जाती हैं?

उत्तर छठे काल में जीवों की ऊँचाई, आयु और शक्ति की हानि होती चली जाती है।

प्र.696 छठे काल का अन्त किस तरह से होता है?

उत्तर उनन्चास दिन कम इक्कीस हजार वर्षों के व्यतीत होने पर जीवों को भयप्रदायक घोर प्रलय काल प्रवृत्त होता है।

प्र.697 छठे काल के अन्त में प्रलय किस तरह प्रवृत्त होता है ?

उत्तर प्रलय के समय पर्वत व शिलादि को चूर्ण कर देने वाली सात दिनों तक संवर्तक वायु चलती है। वृक्ष और पर्वतों के भंग होने से मनुष्य एवं तिर्यंच, वस्त्र और स्थान की अभिलाषा करते हुए बहुत प्रकार से विलाप करते हैं। इस समय पृथक्-पृथक् संख्यात व सम्पूर्ण बहत्तर युगल गंगा-सिन्धु नदियों की वेदी और विजयार्द्धवन (व विजयार्ध पर्वत की गुफाओं) में प्रवेश करते हैं। इस समय देव और विद्याधर दयार्द्र चित्त होकर मनुष्य और तिर्यंचों में से संख्यात जीव राशि को उन सुरक्षित प्रदेशों में ले जाकर रखते हैं। उस समय गम्भीर गर्जना से सहित मेघ तुहिन और क्षार जल तथा विष जल में से प्रत्येक सात

दिन तक बरसाते हैं। इसके अतिरिक्त वे मेघ के समूह धूम, धूलि वज्र एवं जलती हुई दुष्प्रेक्ष्य ज्वाला, इनमें से हर एक को सात दिन तक बरसाते हैं। उनन्चास दिनों के इस क्रम से भरत क्षेत्र के भीतर आर्य खण्ड में चित्रा पृथ्वी के ऊपर स्थित वृद्धिंगत एक योजन की भूमि जलकर नष्ट हो जाती है। वज्र और महाग्नि के बल से आर्यखण्ड की बढ़ी हुई भूमि अपने पूर्ववर्ती स्कन्ध स्वरूप को छोड़कर लोकान्त (मध्यलोकान्त) तक पहुँच जाती है। उस समय आर्य खण्ड शेष भूमियों के समान दर्पण तल के सदृश कान्ति से स्थित और धूलि एवं कीचड़ की कलुषता से रहित हो जाता है। वहां पर उपस्थित (सुरक्षित) मनुष्यों की ऊँचाई 1 हाथ, आयु 16 या 15 वर्ष प्रमाण और शक्ति आदिक तदनुसार ही होते हैं। (प्रमाण-म.पु./73/447-459, त्रि.सा./864-867)।

प्र.698 शांतिपूर्ण वातावरण के साथ उत्सर्पिणी काल का प्रारम्भ किस तरह से होता है ?

उत्तर उत्सर्पिणी काल के प्रारम्भ में सात दिनों तक पुष्कर मेघ सुखोत्पादक जल को बरसाते हैं, जिससे वज्राग्नि से जली हुई सम्पूर्ण पृथ्वी शीतल हो जाती है। क्षीर मेघ सात दिनों तक क्षीरजल वर्षाते हैं, इस प्रकार क्षीर जल से भरी हुई यह पृथ्वी उत्तम कान्ति से युक्त हो जाती है। इसके पश्चात् सात दिन तक अमृतमेघ अमृत की वर्षा करते हैं। इस प्रकार अमृत से अभिषिक्त भूमि पर लतागुल्म इत्यादि उगने लगते हैं। उस समय रसमेघ सात दिनों तक दिव्य रस की वर्षा करते हैं। इस दिव्य रस से परिपूर्ण वे सब (पदार्थ) रस वाले हो जाते हैं। विविध रसपूर्ण औषधियों से भरी हुई भूमि सुस्वाद रूप परिणत हो जाती है। पश्चात् शीतल गन्ध को ग्रहण कर वे मनुष्य और तिर्यंच विजयार्ध की गुफाओं से बाहर निकल आते हैं।

प्र.699 प्रलय समाप्ति और सुभिक्ष्य होने पर मनुष्य किस तरह आचरण करते हैं ?

उत्तर उत्सर्पिणी काल के प्रारम्भ में मनुष्य पशुओं जैसा आचरण करते हुए क्षुधित होकर वृक्षों के फल मूल व पत्ते इत्यादि का सेवन करते हैं।

प्र.700 युग का प्रारम्भ किस काल में होता है?

उत्तर उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी रूप युग का प्रारम्भ श्रावण कृष्णा पड़िवा के दिन रुद्र मुहूर्त्त के रहते हुए सूर्य का शुभ उदय होने पर अभिजित नक्षत्र के प्रथम योग में युग का प्रारंभ होता है।

प्र.701 उत्सर्पिणी काल सम्बन्धी दुषमा दुषमा काल में जीवों की उन्नति किस तरह से होती है?

उत्तर उत्सर्पिणी काल सम्बन्धी दुषमा दुषमा नामक प्रथम काल के प्रारम्भ में शरीर की ऊँचाई एक हाथ प्रमाण होती है। इसके आगे तेज, बल, बुद्धि आदि सब काल स्वभाव से उत्तरोत्तर बढ़ते जाते हैं।

प्र.702 उत्सर्पिणी काल के दुषम नामक दूसरे काल में मनुष्यों की अवस्था किस तरह की होती है ?

उत्तर दुषम नामक दूसरे काल के प्रारम्भ में मनुष्यों का शरीर की ऊँचाई 3 हाथ प्रमाण होती है। इस काल में 20,000 वर्ष बीतने के उपरांत 1 हजार वर्ष शेष रहने पर 14 कुलकरों की उत्पत्ति होने लगती है। कुलकर म्लेक्ष सदृश लोगों के लिए न्यायनीति का उपदेश देते हैं।

प्र.703 उत्सर्पिणी काल के दुषम सुषमा नामक तृतीय काल में मनुष्यों की क्या अवस्था होती है ?

उत्तर उत्सर्पिणी काल सम्बन्धी दुषम सुषमा नामक तृतीय काल के प्रारम्भ में शरीर की ऊँचाई सात हाथ प्रमाण होती है। मनुष्य पाँच वर्ण वाले शरीर से युक्त, मर्यादा, विनय एवं लज्जा से सहित सन्तुष्ट और सम्पन्न होते हैं। इस काल में 24 तीर्थंकर होते हैं। उनके समय में 12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 नारायण और नौ प्रतिनारायण रूप 63 शलाका पुरुष क्रमशः उत्पन्न होते हैं। इस काल के अन्त में मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई पाँच सौ पच्चीस धनुष प्रमाण होती है।

प्र.704 उत्सर्पिणी काल सम्बन्धी सुषमादुषमा, सुषमा, सुषमासुषमा नामक काल के मनुष्य व तिर्यंचों के शरीर भोग इत्यादिक किस प्रकार होते हैं ?

उत्तर उत्सर्पिणी काल सम्बन्धी सुषमा दुषमा, सुषमा, सुषमासुषमा चतुर्थ, पंचम एवं छठे काल के जीवों के शरीरादि; अवसर्पिणी काल सम्बन्धी जघन्य, मध्यम एवं उत्कृष्ट भोगभूमि सदृश हुआ करते हैं परन्तु अन्तर केवल इतना ही है कि यहाँ उत्सर्पिणी काल में जघन्य से उत्कृष्ट की ओर शरीरादिक वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

प्र.705 भोगभूमि के जीव मरणोपरान्त किस गति में उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर भोगभूमि के मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यंच मरणोपरान्त भवनत्रिक (भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क) देवों में उत्पन्न होते हैं तथा सम्यग्दृष्टि मनुष्य व तिर्यंच सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देवों में उत्पन्न होते हैं।

प्र.706 कुभोगभूमियाँ कहाँ स्थित हैं ?

उत्तर लवण समुद्र के भीतरी चारों दिशाओं में चार द्वीप, चार विदिशाओं में चार द्वीप और आठ अन्तर दिशाओं में आठ द्वीप, हिमवन पर्वत (कुलाचल), भरत क्षेत्र सम्बन्धी विजयार्ध पर्वत, शिखरी कुलाचल और ऐरावत सम्बन्धी विजयार्ध पर्वत, इन चारों पर्वतों के दोनों अन्तिम भागों के निकट एक-एक अर्थात् आठ द्वीप हैं। इस तरह लवण समुद्र के अभ्यन्तर तट के कुल द्वीपों की संख्या (4+4+8+8=24) 24 है। इसके बाह्य तट पर भी 24 द्वीप हैं, अतः लवण समुद्र सम्बन्धी 48 द्वीप होते हैं। इसी तरह कालोदधि समुद्र के दोनों तटों के 48 द्वीप हैं। कुल मिलाकर 96 संख्या रूप द्वीपों में कुभोगभूमि की रचना है।

प्र.707 कुभोग भूमि में मनुष्यों के जन्मादिक किस तरह होते हैं ?

उत्तर कुभोग भूमि में मनुष्यों के जन्मादिक जघन्य भोगभूमि सदृश होते हैं तथा उनकी आयु का प्रमाण एक पल्योपम है।

प्र.708 कुभोग भूमि के जीवों का आहार किस तरह का होता है ?

उत्तर कुभोगभूमि के जीवों का आहार कल्पवृक्षों के फल, अमृतमय तृण व मधुर मिट्टी होता है।

प्र.709 भोग भूमि में जाकर कौन-से जीव जन्मधारण करते हैं ?

उत्तर मिथ्यात्व भाव से सहित होते हुए भी मन्द कषायी; अष्ट मूलगुण पालक, जिनपूजक, निर्ग्रन्थों को दान देने वाले; भोग भूमि में उत्पन्न होते हैं। तथा कितने ही जीव मिथ्यात्व के साथ मनुष्य आयु का बंध कर पश्चात् सम्यग्दर्शन या तीर्थंकर के पाद मूल में क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त ऐसे बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव भोगभूमि में जन्म लेते हैं। बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि तिर्यंच अथवा दान की अनुमोदना करने वाले तिर्यञ्च जीव भी भोग-भूमि में उत्पन्न होते हैं।

प्र.710 कुभोग भूमि में कौन-से जीव जन्म धारण करते हैं ?

उत्तर मिथ्यात्व सह जिनभेष धारण कर माया प्रवृत्ति करने वाले, धर्म की अवज्ञा करने वाले, ज्योतिष एवं मंत्रादि विद्याओं द्वारा आजीविका करने वाले, धनलोलुपी, तीन गारव (रस, ऋद्धि और शारीरिक शक्ति का अभिमान) धारण करने वाले, चार संज्ञाओं (आहार, भय, मैथुन और परिग्रह) में सदा संलग्न रहने वाले, गृहस्थों के विवाह व आरम्भ-सारम्भ के कार्य कराने वाले, अपने दोषों का अपरिमार्जन करने वाले, पर जनों पर दोष लगाने वाले, पंचाग्नि तप तपने वाले, मौन भंगकर आहार करने वाले, दुर्भावना रखने वाले, अपवित्रता से रहने वाले, सूतक वालों से एवं रजस्वला स्त्री के स्पर्श से युक्त तथा नीच गौत्रीय सम्बन्ध से युक्त रहने वाले, सदोष दान तथा कुपात्रों को दान देने वाले जीव मरण कर कुभोग भूमि में जन्म धारण करते हैं।

प्र.711 कुभोग भूमि में मनुष्यों का आकार कैसा होता है ?

उत्तर कुभोग भूमि के मनुष्यों की आकृतियाँ विभिन्न प्रकार की होती हैं। कोई मनुष्य एक टांग वाले, कोई पूँछ वाले, कोई लम्बे कान वाले (जिस कान को ओढ़कर वे शयन भी कर सकते हैं), किन्हीं मनुष्यों के मुख हाथी, गाय और मेढ़ा के आकार वाले भी होते हैं।

प्र.712 मध्यलोक (मनुष्य लोक एवं तिर्यग्लोक) में कितने अकृत्रिम जिनालय हैं ?

उत्तर मध्यलोक में मनुष्य लोक सम्बन्धी 398, तथा मनुष्य लोक से आगे तिर्यक् लोक सम्बन्धी नन्दीश्वर द्वीप में 52, कुण्डलगिरि पर 4 और रुचक गिरि पर 4 इस तरह 60 अकृत्रिम जिनालय (चैत्यालय) हैं। मध्यलोक में कुल अकृत्रिम जिनालयों की संख्या (398 + 60)=458 है।

प्र.713 मध्यलोक में किस-किस पर्वत पर कितने-कितने अकृत्रिम जिनालय हैं ?

उत्तर

सुदर्शन मेरु के चार वनों में	16	अकृत्रिम जिनालय
छह कुलाचल पर्वतों पर	6	अकृत्रिम जिनालय
चौतीस विजयार्ध पर्वतों पर	34	अकृत्रिम जिनालय (32 उपविदेह, 1 भरत, 1 ऐरावत)
चार गजदन्त पर्वतों पर	4	अकृत्रिम जिनालय
जम्बू, शाल्मलि दो वृक्षों पर	2	अकृत्रिम जिनालय
सोलह वक्षार पर्वतों पर	16	अकृत्रिम जिनालय
जम्बूद्वीप सम्बन्धी		

एक मेरु आदि में कुल]-	78	अकृत्रिम जिनालय

इसी तरह धातकीखण्ड द्वीप के दो मेरु आदि सम्बन्धी तथा पुष्करार्धद्वीप के दो मेरु आदि सम्बन्धी मिलाकर कुल 78 × 5 = 390 अकृत्रिम जिनालय होते हैं।

पंच मेरु आदि सम्बन्धी	390	अकृत्रिम जिनालय
चार इष्वाकार पर्वतों के	4	अकृत्रिम जिनालय
मानुषोत्तर पर्वत के	4	अकृत्रिम जिनालय
नन्दीश्वर द्वीप के	52	अकृत्रिम जिनालय
कुण्डलगिरि के	4	अकृत्रिम जिनालय
रुचकगिरि के	4	अकृत्रिम जिनालय

मध्यलोक सम्बन्धी कुल-458 अकृत्रिम जिनालय होते हैं।

[पञ्च मेरु पर्वत एवं पञ्च मेरु पर्वत के अकृत्रिम जिनालयों के स्वरूप का वर्णन देखिये इसी ग्रन्थ के प्रश्न 132 से प्रश्न 157 तक]

प्र.714 कुलाचल पर्वत कहाँ स्थित हैं एवं वहाँ अकृत्रिम जिनालय किस तरह स्थित हैं ?

उत्तर ढाई द्वीप में भरत, हेमवत आदि सात क्षेत्रों के विभाजन करने वाले पूर्व से पश्चिम तक लम्बे हिमवन, महाहिमवन, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी नामक पर्वत इस ढाई द्वीप (जम्बूद्वीप, धातकी खण्ड द्वीप और पुष्करार्ध द्वीप) में कुल 30 कुलाचल रूप पर्वत हैं जिन पर्वतों के पूर्व दिशा के कूट पर एक-एक जिनायतन रूप अकृत्रिम चैत्यालय स्थित है। [विजयार्ध का विशेष वर्णन एक कूट पर स्थित जिनालय का वर्णन देखें प्रश्न क्र. 635 से 643 पर]

प्र.715 विजयार्ध इस नाम की सार्थकता क्या है ?

उत्तर विजयार्ध नामक पर्वतों से चक्रवर्ती की षट्खण्डों में से तीन खण्ड तक पहुँच कर अर्ध विजय की सूचना मिल जाती है अत: अर्ध विजय का सूचक विजयार्ध पर्वत कहा जाता है।

प्र.716 ढाई द्वीप में कितने विजयार्ध पर्वत हैं और वे कहाँ स्थित हैं?

उत्तर ढाई द्वीप में पाँच भरत, पाँच ऐरावत तथा एक सौ साठ विदेह क्षेत्रों में कुल 170 विजयार्ध पर्वत हैं और जिनके पूर्व दिशा स्थित एक-एक कूट (सिद्धकूट) पर एक-एक अकृत्रिम जिनालय स्थित हैं।

प्र.717 पांच म्लेच्छ खण्डों में एवं विजयार्ध पर्वत पर काल परिवर्तन का क्या नियम होता है ?

उत्तर पांच म्लेच्छ खण्डों में एवं विजयार्ध पर्वत पर मात्र दुषमासुषमा काल के आदि और अंत की तरह काल परिवर्तन चलता रहता है।

प्र.718 गजदन्त पर्वत कहाँ हैं और उन पर्वतों पर अकृत्रिम जिनालय किस तरह स्थित हैं?

उत्तर मेरु पर्वत की विदिशाओं में हाथी दन्त के आकार वाले, शाश्वत, तिरछे रूप से आयताकार, क्रमश: रजत, तप्तस्वर्ण, स्वर्ण और वैडूर्यमणि के वर्ण वाले सौमनस, विद्युत्प्रभ, गन्धमादन और माल्यवान नामक महारमणीय चार महापर्वत हैं। जिन चारों पर्वतों के ऊपर प्रथम सिद्धायतन कूट हैं जिन पर

अकृत्रिम जिनालय स्थित हैं। इसी तरह की चार और मेरु पर्वतों की रचना जानना चाहिए।

प्र.719 जम्बू वृक्ष कहाँ है और उस अकृत्रिम वृक्ष पर अकृत्रिम जिनालय किस तरह स्थित है ?

उत्तर नील कुलाचल (पर्वत) के निकट, सीता नदी के पूर्व तट पर सुदर्शन मेरु की ईशान दिशा में उत्तर कुरु क्षेत्र में जम्बूवृक्ष स्थित है। जिसके स्कन्ध से ऊपर वज्रमय अर्धयोजन चौड़ी और आठ योजन लम्बी उसकी चार शाखाएँ हैं। जिस वृक्ष की जो शाखा उत्तरकुरु गत नील कुलाचल की ओर गई है, उस पर अकृत्रिम जिन मंदिर शोभायमान है।

प्र.720 शाल्मली वृक्ष कहाँ है एवं उस अकृत्रिम वृक्ष पर अकृत्रिम जिनालय किस तरह स्थित है ?

उत्तर जम्बू वृक्ष की भाँति सीतोदा नदी के तट पर, निषध कुलाचल के समीप, सुदर्शन मेरु की नैऋत्य दिशा में देवकुरु क्षेत्र में शाल्मली वृक्ष स्थित है। शाल्मली वृक्ष की दक्षिण शाखा पर अकृत्रिम जिनालय सुशोभित है। (इसी तरह शुभनाम वाले दो-दो वृक्ष धातकी खण्ड और पुष्करार्ध द्वीप में भी पाये जाते हैं।)

प्र.721 वक्षार पर्वत कहाँ पर हैं और उन अकृत्रिम पर्वतों पर अकृत्रिम जिनालय किस तरह स्थित हैं ?

उत्तर पूर्व व पश्चिम विदेह में सीता व सीतोदा नदी के दोनों तटों पर उत्तर-दक्षिण लम्बायमान, चार-चार संख्या में कुल 26 वक्षार पर्वत हैं। वे पर्वत एक ओर निषध और नील पर्वतों को स्पर्श करते हैं और दूसरी ओर सीता व सीतोदा नदियों को। प्रत्येक वक्षार पर्वतों के चार-चार कूटों में से नदी की तरफ वाले प्रथम कूट पर अकृत्रिम सिद्धायतन जिनालय स्थित हैं, शेष कूटों पर व्यन्तर देवों के निवास हैं (इसी तरह धातकी खण्ड द्वीप में 32 वक्षार पर्वतों पर 32 तथा पुष्करार्ध द्वीप में भी 32 वक्षार पर्वतों पर 32 अकृत्रिम जिनालय स्थित हैं।)

प्र.722 विदेह क्षेत्र में किन अशुभ स्थितियों का अभाव होता है ?

उत्तर विदेह क्षेत्र में दुर्भिक्ष नहीं होता, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, शलभ (टिड्डी), शुक, स्वचक्र और परचक्र उपद्रव (स्व-पर नीति पीड़ा) रूप सात इतियाँ नहीं होती, महामारी नहीं होती तथा विदेह क्षेत्र में कुदेव, कुलिंग और कुमत नहीं होते।

प्र.723 विदेह क्षेत्रों में किस तरह के विशिष्ट वातावरण का सद्भाव रहता है ?

उत्तर विदेह क्षेत्रों में केवलज्ञानियों, तीर्थंकर आदिक शलाका पुरुषों और ऋद्धि सम्पन्न साधुओं का सदा सद्भाव रहता है। प्रत्येक विदेह क्षेत्र में यदि पृथक्-पृथक् एक-एक तीर्थंकर, चक्रवर्ती और अर्धचक्रवर्ती अर्थात् नारायण और प्रतिनारायण हों तो अधिक से अधिक एक सौ साठ हो सकते हैं अथवा जघन्य रूप से मात्र बीस ही होते हैं।

प्र.724 इष्वाकार पर्वत कहाँ हैं और अकृत्रिम पर्वतों पर अकृत्रिम जिनालय किस तरह स्थित हैं?

उत्तर धातकीखण्ड द्वीप की उत्तर व दक्षिण दिशा में लम्बायमान दो इष्वाकार पर्वत हैं, जिनसे यह द्वीप पूर्व व पश्चिम रूप दो भागों में विभक्त हो जाता है। दोनों पर्वतों पर चार-चार कूट हैं। जिन कूटों में प्रथम कूट

पर अकृत्रिम जिनालय स्थित हैं, शेष कूटों पर व्यन्तरों के निवास हैं। इसी तरह के इष्वाकार पर्वतों पर जिनालयों की रचना पुष्करार्ध द्वीप में जानना चाहिए।

प्र.725 मानुषोत्तर पर्वत कहाँ है और उस अकृत्रिम पर्वत पर कहाँ, किस तरह अकृत्रिम जिनालय स्थित हैं ?

उत्तर पुष्करवर द्वीप के मध्य में स्वर्णमयी मानुषोत्तर पर्वत है उस अकृत्रिम मानुषोत्तर पर्वत पर नैऋत्य और वायव्य इन दो दिशाओं को छोड़कर अवशेष छह दिशाओं में पंक्ति स्वरूप तीन-तीन कूट हैं तथा उन कूटों के अभ्यन्तर अर्थात् मनुष्यलोक की ओर चार दिशाओं में चार जिन मंदिर रूप अकृत्रिम जिनालय सुशोभित होते हैं।

प्र.726 नंदीश्वर द्वीप कहाँ पर है और उस द्वीप में अकृत्रिम जिनालय किस तरह स्थित हैं?

उत्तर इस मध्यलोक में एक सौ तिरेसठ करोड़ चौरासी लाख योजन प्रमाण विस्तार वाला अष्टम द्वीप नंदीश्वर द्वीप है जिसकी चारों दिशाओं में एक-एक अंजनगिरि है। यह पर्वत 1000 योजन गहरा, 84,000 योजन ऊँचा और 84,000 योजन प्रमाण विस्तार युक्त समवृत्त है। अंजनगिरि की चारों दिशाओं में एक-एक लाख योजन विस्तार वाली चार-चार वापिकाएँ (जलाशय) हैं। वापियों के बहु मध्य भाग में दही के सदृश वर्णवाला 1000 योजन गहरा, 10,000 योजन ऊँचा और 10,000 योजन प्रमाण विस्तार वाला गोल एक-एक दधिमुख पर्वत है, वापियों के दोनों बाह्य कोनों पर दो-दो रतिकर पर्वत हैं जो 250 योजन गहरे, 1000 योजन ऊँचे और 1000 योजन विस्तार वाले गोल हैं। इस तरह चार अंजनगिरि, सोलह दधिमुख और बत्तीस रतिकर मिलकर 52 पर्वत हैं। प्रत्येक पर्वत पर 100 योजन लम्बे, 50 योजन चौड़े एवं 75 योजन ऊँचे एक-एक अकृत्रिम जिनालय (चैत्यालय) हैं। जिनमें अष्ट प्रातिहार्य युक्त 108-108 अकृत्रिम जिन प्रतिमाएँ सुशोभित होती हैं। (क.दी.भा.3)

प्र.727 नंदीश्वर द्वीप में वहाँ कौन, कब महापूजा किया करते हैं ?

उत्तर अष्टाह्निक पर्व के समय नन्दीश्वर द्वीप में प्रत्येक दिशा के 13-13 चैत्यालयों में चारों निकाय के इन्द्र अपने परिवार के साथ अनवरत 64 प्रहर तक दो-दो प्रहर के क्रम से महापूजा किया करते हैं। (त्रि.सा.)

प्र.728 कुण्डलवर द्वीप में कुण्डलगिरि कहाँ है और उस अकृत्रिम गिरि पर अकृत्रिम जिनालय किस तरह स्थित हैं ?

उत्तर ग्यारहवें स्थान पर स्थित कुण्डलवरद्वीप अपने बहुमध्य भाग में कुण्डलाकार कुण्डलगिरि पर्वत को धारण किये हुए है जिस पर्वत के शिखर पर पूर्वादि चतुर्दिशाओं में चार-चार कूट हैं। उनके अभ्यन्तर भाग में अर्थात् मनुष्यलोक की तरफ एक-एक सिद्धवर कूट नामक या जिनकूट नामक कूटों पर अकृत्रिम जिनालय स्थित हैं।

प्र.729 रुचकवर द्वीप कौन-सा अकृत्रिम द्वीप है और उस द्वीप में रुचकवर गिरि कहाँ है और कहाँ

अकृत्रिम जिनालय किस तरह स्थित हैं ?

उत्तर रुचकवर यह तेरहवाँ द्वीप है इस द्वीप के बहुमध्यभाग में स्वर्णमय रुचकवर पर्वत है। ऐसे रुचकगिरि के ऊपर पूर्वादि चार दिशाओं में पृथक्-पृथक् आठ-आठ कूट हैं, जिनके अभ्यन्तर दिशा की ओर चार दिशाओं में चार कूट हैं और सर्व अभ्यन्तर चार दिशाओं में चार जिनेन्द्र कूट हैं। इस तरह कुल कूट 44 हैं।

प्र.730 तीर्थंकरों की जननी माँ की सेवा में करने वाली तथा तीर्थंकरों के जन्म के समय सेवा कर विशिष्ट पुण्यार्जन करने वाली देवियाँ कहाँ निवास करती हैं और वे देवियाँ ढाई द्वीप में आकर किस तरह से कब अपनी कुशलता प्रकट करती हैं ?

उत्तर रुचकगिरि के ऊपर पूर्व दिशा के आठ कूटों में जो आठ देवकुमारियाँ निवास करती हैं, ये भृङ्गार धारण कर जिन-माता की सेवा करती हैं। दक्षिण आदि दिशाओं के आठ-आठ कूटों पर निवास करने वाली आठ-आठ देवकुमारियाँ हाथ में दर्पण लेकर, तीन छत्र धारण कर एवं चंवर धारण कर क्रमशः तीर्थंकर-माता की सेवा करती हैं। अभ्यन्तर कूटों की पूर्वादिक चार दिशाओं में निवास करने वाली चार देवकुमारियाँ तीर्थंकर के जन्म-काल में सर्व दिशाओं को निर्मल करती हैं। इनके अभ्यन्तर कूटों की पूर्वादिक चार दिशाओं के भवनों में निवास करने वाली चार देव कुमारियाँ तीर्थंकर के जन्म समय में जात कर्म (गर्भशोधन) करने में कुशलता प्रकट करती हैं।

अध्याय - 8. जीवों की अवगाहनादि

प्र.731 वलयाकार स्वयंभूरमण समुद्र के आगे इस मध्यलोक सम्बन्धी कौन-सी रचना है? और वहाँ मुख्यत: कौन-से जीवों का सद्भाव पाया जाता है?

उत्तर स्वयंभूरमण समुद्र के आगे मध्यलोक सम्बन्धी त्रस नाड़ी के शेष भाग सम्बन्धी चारों विशाल कोनों में कर्म भूमि-सम भूमि एवं तादृश तिर्यंचों का सद्भाव पाया जाता है।

प्र.732 मध्यलोक के अन्तिम चतुर् कोणों के तिर्यंच किस तरह के होते हैं?

उत्तर मध्यलोक के अन्तिम चतुर् कोणों में उत्कृष्ट अवगाहना वाले तिर्यंच पाये जाते हैं।

प्र.733 तिर्यंचों की उत्कृष्ट अवगाहना कहाँ-कहाँ पाई जाती है?

उत्तर तिर्यंचों की उत्कृष्ट अवगाहना; स्वयंभूरमण द्वीप के स्वयंप्रभ पर्वत के आगे (बाहरी) भाग में स्थित स्वयंभूरमण द्वीप, स्वयंभूरमण समुद्र में और अन्तिम चारों कोनों में रहने वाले तिर्यंचों के पायी जाती है।

प्र.734 स्वयंभूरमण समुद्र में एकेन्द्रिय धारक कौन-से जीव की कितनी उत्कृष्ट अवगाहना पायी जाती है?

उत्तर स्वयंभूरमण समुद्र में एकेन्द्रिय वनस्पतिकायिक कमल की उत्कृष्ट शरीर-अवगाहना दो कोस अधिक एक हजार योजन पायी जाती है।

प्र.735 स्वयंप्रभ पर्वत के बाद द्वीन्द्रिय आदिक जीवों की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण क्या है?

उत्तर स्वयंप्रभ पर्वत के बाद द्वीन्द्रियों में शंख का बारह योजन अवगाहना वाला शरीर है, त्रीन्द्रियों में गोपालिका या खर्जूरक प्राणी का शरीर तीन कोश का है, चतुरिन्द्रियों में भ्रमर का शरीर एक योजन का अर्थात् चार कोश का है और पंचेन्द्रियों में महामत्स्य का उत्कृष्ट शरीर एक हजार योजन लम्बा है।

प्र.736 जिस तरह द्वीन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीव संमूर्च्छन होते हैं उसी तरह पंचेन्द्रियों में महामत्स्य भी क्या संमूर्च्छन होता है?

उत्तर हाँ! महामत्स्य भी संमूर्च्छन होता है।

प्र.737 सम्मूर्च्छन जीव का लक्षण क्या है?

उत्तर गर्भ और उपपाद जन्म के अतिरिक्त अन्य योनि से उत्पन्न होने वाले जीव अर्थात् अनेक पुद्गल परमाणुओं के मिल जाने पर जन्म लेने वाले जीव सम्मूर्च्छन जीव कहलाते हैं।

प्र.738 जम्बूद्वीप को वलयाकार (चूड़ी आकार) रूप से वेष्टित करने वाले एवं दुगने-दुगने विस्तार वाले असंख्यात समुद्र व द्वीपों की परिधि (गोलाई रूप किनारे) का ज्ञान करने हेतु जम्बूद्वीप की परिधि का आगमानुसार विस्तार कितना है?

उत्तर जम्बूद्वीप का विस्तार जब एक लाख योजन है (अर्थात् दो हजार कोश का एक महायोजन ग्रहण करना चाहिए) तब जम्बूद्वीप की परिधि का प्रमाण तीन लाख सोलह हजार, दो सौ सत्ताईस योजन, तीन

कोश, अट्ठाईस सौ धनुष साढ़े तेरह अंगुल और एक जौ प्रमाण है। (मू.चा.भाग 1,पृ.228)

प्र.739 लवण समुद्र में मत्स्य कितने प्रमाण वाले होते हैं?

उत्तर लवण समुद्र में मत्स्य अठारह योजन की अवगाहना वाले हैं तथा गंगा, सिन्धु आदि नदियों के प्रवेश स्थान में अर्थात् समुद्र के प्रारम्भ में मत्स्य नव योजन लम्बे हैं।

प्र.740 कालोदधि समुद्र में मत्स्यों की अवगाहना का प्रमाण क्या है?

उत्तर कालोदधि समुद्र में मत्स्य छत्तीस योजन के हैं और वहाँ भी समुद्र के प्रारम्भ में नदियों के प्रवेश स्थान में मत्स्यों की अवगाहना अठारह योजन की है। (मत्स्यों की यह अवगाहना उपलक्षण समझकर अन्य जलचरों की अवगाहना का भी प्रमाण समझ लेना चाहिए) (मू.चा. भाग 2)

प्र.741 लवणोदधि, कालोदधि और स्वयंभूरमण समुद्र के अतिरिक्त शेष समुद्रों में क्या मत्स्य आदि जलचर जीव होते हैं या नहीं? और अगर नहीं तो क्यों नहीं?

उत्तर उपर्युक्त तीन समुद्रों के अतिरिक्त शेष समुद्रों में मत्स्य, मकर एवं अन्य द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय-पर्यन्त कोई भी जलचर जीव नहीं होते हैं क्योंकि अन्य समुद्रों में जघन्य भोगभूमि हुआ करती है।

प्र.742 स्वयंभूरमण समुद्र में जलचर जीवों की अवगाहना का उत्कृष्ट प्रमाण अगर एक हजार योजन का है तो जलचरों में जघन्य अवगाहना वाला जीव कौन-सा है?

उत्तर जलचरों में सबसे जघन्य अवगाहना धारक जीव कुन्थु होता है। (मू.चा. भाग 2)

प्र.743 द्वि-इन्द्रियादिक पर्याप्तक कौन-से जीव कितनी जघन्य अवगाहना के धारक होते हैं?

उत्तर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों में अनुंधरी, कुन्थु, काणमक्षिका, सिक्थक (तन्दुल) मत्स्य के क्रम से जघन्य अवगाहना होती है। इसमें प्रथम की अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है और पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तर-उत्तर की अवगाहना क्रम से संख्यातगुणी-संख्यातगुणी अधिक अधिक है। (गो.सा.जी.का.गा.96)

प्र.744 अपर्याप्त और पर्याप्त का आश्रय कर जलचर, स्थलचर और नभचरों के शरीर का प्रमाण कितना है?

उत्तर जलचर अपर्याप्तक, स्थलचर अपर्याप्तक और नभचर अपर्याप्तक सम्मूर्च्छन तिर्यंचों की जघन्य अवगाहना एक वितस्ति अर्थात् बारह अंगुल प्रमाण है। (यह प्रमाण स्वयंभूरमण समुद्र व वहाँ कर्मभूमि की अपेक्षा से जानना।)

प्र.745 जलचर गर्भज अपर्याप्तक और थलचर गर्भज अपर्याप्तकों की उत्कृष्ट देह अवगाहना नभचर, थलचर संमूर्च्छन पर्याप्तकों की उत्कृष्ट देह अवगाहना तथा नभचर और गर्भज पर्याप्तक-अपर्याप्तकों की उत्कृष्ट देह अवगाहना कितनी है? (अन्तिम द्वीप की कर्मभूमि की अपेक्षा)

उत्तर इन उपर्युक्त जीवों की उत्कृष्ट देह अवगाहना धनुष पृथक्त्व प्रमाण है।

प्र.746 पृथक्त्व शब्द का तात्पर्य क्या है?

उत्तर पृथक्त्व शब्द का अर्थ तीन के ऊपर और नव से नीचे की संख्या है जिसकी पृथक्त्व संज्ञा है।

प्र.747 जलचर, थलचर, गर्भज पर्याप्तकों के उत्कृष्ट शरीर का प्रमाण कितना है?

उत्तर जलचर, गर्भज पर्याप्तकों का उत्कृष्ट शरीर (अन्तिम समुद्र की अपेक्षा) पाँच सौ योजन प्रमाण है। स्थलचर, गर्भज पर्याप्तक अर्थात् (उत्कृष्ट) भोगभूमिज तिर्यंचों का शरीर तीन कोश प्रमाण है।

प्र.748 पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और मनुष्य इनके उत्कृष्ट शरीर का प्रमाण क्या है?

उत्तर सूक्ष्म और बादर पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीव द्रव्य अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण शरीर वाले हैं। और पर्याप्तक मनुष्यों का उत्कृष्ट शरीर भोगभूमि की अपेक्षा तीन कोश प्रमाण वाला है।

प्र.749 द्रव्य अंगुल से क्या तात्पर्य है? और उसका असंख्यातवाँ भाग क्या है?

उत्तर आठ जौ से निष्पन्न अंगुल में असंख्यात आकाश प्रदेश हैं उसके असंख्यात भाग करने पर एक भाग में भी असंख्यात प्रदेश हैं। इस असंख्यातवें भाग को द्रव्यांगुल का असंख्यातवाँ भाग कहते हैं।

प्र.750 सर्व जघन्य शरीर किन जीवों का होता है? और कब?

उत्तर सर्व जघन्य शरीर सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्तक जीव के उत्पन्न होने के तृतीय समय में होता है।

प्र.751 सर्व जघन्य शरीर होने में तृतीय समय से क्या तात्पर्य है?

उत्तर सूक्ष्म निगोदिया लब्ध अपर्याप्तक जीव के जन्म लेने के तृतीय समय में सर्व जघन्य शरीर होता है, क्योंकि प्रथम और द्वितीय समय में प्रदेशों का विस्फूर्जन-फैलाव होने से अथवा पूर्व शरीर के समीपवर्ती होने से बड़ा शरीर रहता है। पुनः तृतीय समय में प्रदेशों का निचय के अनुसार अवस्थान हो जाने से सर्वजघन्य शरीर हो जाता है। (मू.चा.भा.२ गा.१०९०)

प्र.752 बादर और सूक्ष्म जीव किन्हें कहते हैं?

उत्तर बादर नाम कर्मोदय से जो बाधाकर और बाधित शरीर वाले होते हैं वे बादर जीव कहलाते हैं। सूक्ष्म नाम कर्मोदय से जो न बाधिक होते हैं और न बाधा देते हैं ऐसे जीव सूक्ष्म कहलाते हैं।

प्र.753 पृथ्वी कायिक जीवों का आकार किस तरह का होता है?

उत्तर पृथ्वी कायिक जीवों का आकार मसूरिका सदृश गोल होता है।

प्र.754 जलकायिक जीवों का आकार किसके सदृश होता है?

उत्तर जलकायिक जीवों का आकार कुश के अग्रभाग पर पड़ी हुई गोल-गोल बिन्दु के समान होता है।

प्र.755 अग्निकायिक जीवों का आकार किसके समान होता है?

उत्तर अग्निकायिक जीवों का आकार सुइयों के समूह के आकार जैसा होता है।

प्र.756 वायुकायिक जीवों का आकार कैसा होता है?

उत्तर वायुकायिक जीवों का आकार पताका जैसा होता है।

प्र.757 प्रत्येक एवं साधारण बादर-सूक्ष्म वनस्पतिकायिक जीवों का तथा विकलेन्द्रिय जीवों का आकार किस तरह का होता है?

उत्तर उपर्युक्त जीवों का आकार अनेक तरह का होता है अर्थात् ये सब हुण्डक संस्थान रूप होते हैं।

प्र.758 पंचेन्द्रिय जीवों के शरीर का आकार किस तरह का होता है?

उत्तर पंचेन्द्रिय तिर्यंच व मनुष्यों के शरीर का आकार छह संस्थान रूप होता है। (छह संस्थान वर्णन देखिये जैनागम संस्कार अ.17, पृ.167)

प्र.759 श्रोत्रेन्द्रिय का आकार किस तरह का होता है?

उत्तर श्रोत्रेन्द्रिय का आकार जौ की नाली सदृश होता है।

प्र.760 चक्षु इन्द्रिय का आकार कैसा होता है?

उत्तर चक्षु इन्द्रिय का आकार मसूरिका जैसा होता है।

प्र.761 घ्राणेन्द्रिय का आकार किसके समान होता है?

उत्तर घ्राणेन्द्रिय का आकार अतिमुक्तक-तिल के पुष्प के समान होता है।

प्र.762 जिह्वा इन्द्रिय का आकार किस तरह का होता है?

उत्तर जिह्वा इन्द्रिय का आकार अर्धचन्द्र के समान या खुरपे के समान होता है।

प्र.763 स्पर्शन इन्द्रिय का आकार किसके समान होता है?

उत्तर स्पर्शन इन्द्रिय के अनेकों आकार होते हैं, जो समचतुरस्र आदि भेद से व्यक्त होते हैं। (समचतुरस्र आदि छह संस्थान देखिये जैनागम संस्कार अ.17, पृ.167)

प्र.764 मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में कौन-से संस्थान पाये जाते हैं?

उत्तर मनुष्य और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में छहों संस्थान पाये जाते हैं।

प्र.765 देवों में कौन-सा संस्थान पाया जाता है?

उत्तर देवों में मात्र समचतुरस्र संस्थान ही पाया जाता है।

प्र.766 नारकियों में कौन-सा संस्थान होता है?

उत्तर नारकियों में मात्र हुण्डक संस्थान ही पाया जाता है।

प्र.767 पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीवों की उत्कृष्ट शक्ति युक्त स्पर्शन इन्द्रिय की विषय-ग्रहण शक्ति कितनी होती है?

उत्तर पृथ्वी कायिकादिक पांचों स्थावर अपनी-अपनी उत्कृष्ट शक्ति युक्त स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा चार सौ धनुष पर्यन्त मार्ग में स्थित स्पर्श को ग्रहण कर लेते हैं।

प्र.768 द्वीन्द्रिय जीव की अपनी इन्द्रियों द्वारा विषय-ग्रहण शक्ति कितनी होती है?

उत्तर द्वीन्द्रिय जीव रसना इन्द्रिय द्वारा चौंसठ धनुष तक स्थित रस को ग्रहण कर लेते हैं। वे ही द्वीन्द्रिय जीव स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा आठ सौ धनुष पर्यन्त मार्ग में स्थित स्पर्श को ग्रहण कर लेते हैं।

प्र.769 त्रीन्द्रिय जीव की अपनी इन्द्रियों द्वारा विषय-ग्रहण शक्ति कितनी होती है?

उत्तर त्रीन्द्रिय जीव घ्राणेन्द्रिय द्वारा सौ धनुष पर्यन्त स्थित गन्ध को ग्रहण कर लेते हैं। ये ही तीन इन्द्रिय जीव स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा सोलह सौ धनुष पर्यन्त मार्ग में अवस्थित स्पर्श को ग्रहण कर सकते हैं और रसना

इन्द्रिय द्वारा एक सौ अट्ठाईस धनुष पर्यन्त मार्ग में स्थित रस को ग्रहण कर लेते हैं।

प्र.770 चतुरिन्द्रिय जीव की अपनी इन्द्रियों द्वारा विषय-ग्रहण शक्ति कितनी होती है?

उत्तर चतुरिन्द्रिय जीव के चक्षु इन्द्रिय का विषय-ग्रहण उनतीस सौ चौवन योजन कहा है। ये ही जीव स्पर्श द्वारा तीन हजार दो सौ धनुष पर्यन्त स्थित स्पर्श को विषय कर लेते हैं, ये ही जीव रसना द्वारा दो सौ छप्पन धनुष पर्यन्त स्थित रस को ग्रहण कर लेते हैं और घ्राणेन्द्रिय द्वारा दो सौ धनुष तक स्थित गन्ध को अपना विषय बना लेते हैं।

प्र.771 असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव की अपनी इन्द्रियों द्वारा विषय-ग्रहण शक्ति कितनी है?

उत्तर असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के श्रोत इन्द्रिय का विषय आठ हजार धनुष है। ये ही जीव स्पर्श द्वारा छह हजार चार सौ धनुष प्रमाण पर्यन्त मार्ग में स्थित स्पर्श को ग्रहण कर सकते हैं, रसना इन्द्रिय द्वारा ये पाँच सौ बारह धनुष पर्यन्त रस को ग्रहण कर सकते हैं, घ्राणेन्द्रिय द्वारा चार सौ धनुष पर्यन्त स्थित गन्ध को ग्रहण कर लेते हैं तथा चक्षु इन्द्रिय द्वारा उनसठ सौ आठ योजन प्रमाण मार्ग में स्थित रूप को ग्रहण कर लेते हैं।

प्र.772 संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव की अपनी पंचेन्द्रियों द्वारा विषय ग्रहण शक्ति कितनी है?

उत्तर संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के श्रोत्र इन्द्रिय का विषय बारह योजन प्रमाण है। अर्थात् वे बारह योजन में उत्पन्न हुए शब्दों को सुन लेते हैं। ये ही जीव अपनी स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और घ्राणेन्द्रिय के द्वारा नव-नव योजन तक स्थित स्पर्श, रस और गन्ध द्रव्यों को ग्रहण कर लेते हैं। तथा चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषय सैंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन, एक कोश बारह सौ पन्द्रह धनुष, एक हाथ दो अंगुल और कुछ अधिक जौ का चतुर्थ भाग प्रमाण है।

प्र.773 चक्षु इन्द्रिय के उत्कृष्ट विषय क्षेत्र को कौन कहाँ से कब अपना विषय बना सकता है?

उत्तर भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड स्थित अयोध्या नगरी के बीच में बने हुए अपने महल के ऊपरी भाग से भरत आदि चक्रवर्ती संक्रान्ति के दिन उदय होते हुए सूर्य के भीतर के जिनबिम्ब का दर्शन करते हैं। तात्पर्य यह है कि चक्रवर्ती अधिक-से-अधिक इतनी दूरी तक के पदार्थ को चक्षु द्वारा जान लेते हैं। (विशेष वर्णन देखें-मू.चा.भाग २, पृष्ठ 246) (इन्द्रियधारी मनुष्य और तिर्यंचों की आयु प्रकरण देखिये-जैनागम संस्कार अध्याय 13 पृ.121, पृ.133)

प्र.774 संसारी जीवों की आहार, शरीर आदि पर्याप्तियों की पूर्णता एक समान काल में होती है या कोई विशेषता है?

उत्तर तिर्यंच जीवों की पर्याप्तियाँ अन्तर्मुहूर्त्त या उत्कृष्ट रूप से एक समय कम दो घड़ी काल रूप अन्तर्मुहूर्त्तकाल में और मनुष्यों की उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त में पर्याप्तियाँ पूर्ण हो जाती हैं। तथा उपपाद से जन्म लेने वाले देव और नारकियों के शरीर अवयवों की रचना रूप पर्याप्तियों की पूर्णता प्रति समय होती है। (मू.चा.भा.2)

प्र.775 देव नारकियों के पर्याप्तियों की पूर्णता प्रतिसमय और शेष जीवों की अन्तर्मुहूर्त्त में होती है, ऐसा

क्यों?

उत्तर क्योंकि जिस काल में देव-नारकियों के आहार आदि पर्याप्ति रूप कारणों की पूर्णता होती है उसी काल में उनके शरीर के सर्व अवयव रूप कार्यों की रचना पूर्ण हो जाती है। पुन: तिर्यञ्च और मनुष्यों के लघु काल के द्वारा आहार आदि कारणों की पूर्णता रूप पर्याप्तियाँ पूर्ण हो जाती हैं किन्तु शरीर आदि कार्यों की पूर्णता बहुत काल में हो पाती है। अत: उपपाद जन्म वालों के प्रति पर्याप्तियों का काल प्रतिसमय और अन्य के प्रति अन्तर्मुहूर्त्त सार्थक है।

प्र.776 देव-गण उपपाद शय्याओं पर अन्तर्मुहूर्त्त में ही दिव्य शरीर से किस तरह परिपूर्ण हो जाते हैं?

उत्तर भवनवासी देव आदि से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त देव-स्थानों व विमानों में जो उपपाद शिलाएँ हैं उनका आकार बन्द हुई सीप के सदृश है। उन शिलाओं पर सभी अलंकारों से विभूषित, मणियों से खचित, श्रेष्ठ पर्यंक रूप शय्याएँ हैं। उन शय्याओं में वे देव शोभन शरीर आदि आकार और वर्ण से प्रतिसमय में पर्याप्त होकर सर्वाभरण से विभूषित और सम्पूर्ण यौवन वाले हो जाते हैं। जिस विमान की उपपाद शिला की महाशय्या पर वे देव उत्पन्न होते हैं उस शय्या पर समय-समय में दिव्य रूप से परिपूर्ण हो जाते हैं। अर्थात् एक अन्तर्मुहूर्त्त में ही वे देव दिव्य आहार आदि वर्गणाओं को ग्रहण करते हुए दिव्य रूप और यौवन से परिपूर्ण हो जाते हैं।

प्र.777 अन्तर्मुहूर्त्त में रचित होने वाला देवों का शरीर और कौन-कौन-सी विशेषताओं को धारण करने वाला होता है?

उत्तर ऐसा दिव्य शरीर हाथ-पैर, मस्तक, कण्ठ आदि को विभूषित करने वाले भूषण अर्थात् शरीर के सभी अवयव, उनके अलंकार और नाना गुण भी पूर्ण हो जाते हैं तथा वह शरीर नव यौवन से सम्पन्न हो जाता है। जो कि परम रमणीय, सर्वालंकार से समन्वित, अतिशय सुन्दर और सर्वजनों को आह्लादित करने वाला होता है। सर्व देव अवधिज्ञान से भी सम्पन्न होते हैं।

प्र.778 देवों का शरीर कौन-कौन-सी अवस्थाओं से रहित और गुणों से सहित होता है?

उत्तर देवों का शरीर बाल्य वृद्धावस्था से रहित, मलमूत्र व पसीना से रहित, स्वर्णसम कान्तिमान, समचतुरस्र संस्थान युक्त, धातु-उपधातु से रहित निर्मल, सर्वजन मनोहारी रूप सौन्दर्य से युक्त और जिनका नि:श्वास सभी की घ्राणेन्द्रिय को आह्लादित करने वाला सुगन्धित हो इस तरह का होता है।

प्र.779 क्या देवों (व देवियों) के शरीर में सप्त धातुए नहीं पायी जाती हैं?

उत्तर हाँ! देवों के सिर, भोंह, नेत्र, नाक, कान, काँख और गुह्य प्रदेश आदि स्थानों में बाल नहीं होते हैं। हाथ और पैर की अँगुलियों के अग्रभाग में नख नहीं होते हैं। श्मश्रु-मूंछ-दाढ़ी के बाल नहीं होते हैं एवं सम्पूर्ण शरीर में उत्पन्न होने वाले सूक्ष्म बाल अर्थात् रोम भी नहीं होते हैं। उनके दिव्य शरीर में चर्म-मांसादि को प्रच्छादित करने वाला, वसा-मांस और हड्डियों में होने वाला चिकना रस, रुधिर-खून, मूत्र, विष्ठा तथा वीर्य, पसीना आदि कुछ भी नहीं होते हैं तथा हड्डी और शिरा समूह भी नहीं होते हैं। अर्थात् देवों के शरीर में सात प्रकार की धातुएँ और उपधातुएँ कुछ भी नहीं होती अत: उनका दिव्य

रूप होता है। (मू.चा.गा.1054)

प्र.780 पुनः देवों का दिव्य शरीर किस तरह से निर्मित होता है?

उत्तर उत्तम वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श से युक्त अनन्त दिव्य परमाणुओं, जो कि सर्व गुणों से विशिष्ट वैक्रियिक शरीर के योग्य हैं ऐसे पुद्गल परमाणुओं से जिनके शरीर के सभी अवयव बनते हैं वे देव अपने द्वारा संचित शुभकर्म के माहात्म्य से ऐसे दिव्य वैक्रियिक शरीर को ग्रहण करते हैं।

प्र.781 देवों के वैक्रियिक शरीर की गुणाधिक रूप अन्य तरह की विशेषता क्या है?

उत्तर विविध प्रकार की क्रिया अर्थात् अणिमा, महिमा आदि विक्रिया करना जिसका प्रयोजन है उसे वैक्रियिक शरीर कहते हैं। देवों का शरीर मनुष्य जाति नामक कर्मोदय से सहित मनुष्य जीवों के आकार के सदृश रहता है। यह प्रशस्त नामक कर्मोदय से निर्मित होने से शुभनाम युक्त होता है, मृदु-मन्थर-विलास आदि से संयुक्त प्रशस्त गतिवाला है, शोभन स्वर से युक्त है एवं शोभन रूप से मनोहर भी रहता है। गति, नृत्य आदि के साथ देवों के शरीर में मनुष्यों के समान केश, नख आदि के आकार सभी विद्यमान रहते हैं जैसे कि सुवर्ण व पाषाण की प्रतिमा में सर्व आकार बनाये जाने पर वह अतिशय सुन्दर दिखती है उसी प्रकार से इनके शरीर में भी अतिशय सुन्दरता पायी जाती है। (मू.चा.गा. 1056)

प्र.782 देवों का शरीर अतिशय सुन्दर होते हुए भी किस अपेक्षा से मनुष्यों से उत्कृष्टता को प्राप्त नहीं होता?

उत्तर क्योंकि देव पर्याय में देवों का शरीर संयम का आधार नहीं है। इन्द्रिय सुख कारक-पुण्य कर्म की विचित्रता उन्हें जीवन पर्यन्त भोगों में ही तत्पर बनाये रखती है। जबकि मनुष्य का शरीर संयम का आधार और त्याग-तपस्या व परिषह और उपसर्गों में सहनशीलता के योग्य होता है। विशिष्ट पुण्यशाली मनुष्य चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से व्रत-नियम-संयम को जिस शरीर के माध्यम से धारण कर पाते हैं ऐसा शरीर आत्मा का उपकारक होने से अपनी उदारता के कारण औदारिक कहा जाता है तब देव शरीर से भी श्रेष्ठ प्रशंसनीय व उत्कृष्टता को प्राप्त होता है। अतः कहा भी है कि नरकाया को सुरपति तरसे सो दुर्लभ प्राणी। इस अपेक्षा से मनुष्यों का शरीर देवों से भी महत्त्वपूर्ण है। (देवों के प्रकार आदि देखिये- जैनागम संस्कार अ. 13, प्र.70)

प्र.783 भवनवासी और व्यन्तर देवों के निवास स्थलों के नाम व लक्षण क्या हैं?

उत्तर उपर्युक्त देवों के निवास स्थलों के नाम भवन, भवनपुर और आवास हैं। जो निवास स्थान पृथ्वी के नीचे अर्थात् रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग और पंक भाग में हैं उन्हें भवन कहते हैं, जो निवास स्थान मध्यलोक की समभूमि पर हैं एवं द्वीप-समुद्रों के ऊपर हैं, उन्हें भवनपुर कहते हैं तथा जो स्थान पृथ्वी से ऊँचे हैं और द्रह (तालाब) एवं पर्वतादिकों के ऊपर हैं, उन्हें आवास कहते हैं।

प्र.784 देवगति के देव अत्यन्त शक्तिवान होते हैं और उन्हें भय की आशंका नहीं होती अतः उनके आवान्तर भेदों में आत्मरक्ष की व्यवस्था क्यों है?

उत्तर यद्यपि इन्द्र आदि देवों को किसी प्रकार का भय नहीं है, फिर भी उनकी विभूति का द्योतन करने के

लिए तथा प्रीति की प्रकर्षता का कारण होने से दूसरों पर प्रभाव प्रदर्शित करने के लिए आत्मरक्ष कल्पित किये जाते हैं जिसे लखकर इन्द्र आदिक को परम प्रीति उत्पन्न होती है।

प्र.785 भवनवासी देवों के दस भेदों में दो-दो इन्द्र किस-किस नाम के धारक होते हैं?

उत्तर असुरकुमार नामक भवनवासी देवों में चमर और वैरोचन, नागकुमार देवों में भूतानन्द और धरणानन्द, विद्युत्कुमारों के घोष और महाघोष, सुपर्णकुमारों के वेणुदेव और वेणुधारी, अग्निकुमारों के अग्निशिखी और अग्निवाहन, वातकुमारों के वेलम्ब और प्रभञ्जन, स्तनितकुमारों के हरिषेण और हरिकान्त, उदधिकुमारों के जलप्रभ और जलकान्त, द्वीपकुमारों के पूर्ण और वशिष्ठ तथा दिक्कुमारों के अमितगति और अमितवाहन इस तरह सुन्दर नामवाले कुल बीस इन्द्र होते हैं।

प्र.786 भवनवासियों में असुरकुमार आदि देवों के मुकुटों में कौन-से चिह्न होते हैं?

उत्तर क्रमशः चूड़ामणि, सर्प, गरुड़, हाथी, मगर, वर्धमान (स्वस्तिक), वज्र, सिंह, कलश और अश्व ऐसे प्रसिद्ध चिह्न होते हैं।

प्र.787 भवनवासी देवों के निवास स्थान कहाँ पर किस तरह स्थित हैं?

उत्तर रत्नप्रभा पृथ्वी के पंकबहुल भाग में इस जम्बूद्वीप से तिरछे दक्षिण एवं उत्तर दिशा में असंख्यात द्वीप समुद्रों के बाद क्रमशः दक्षिणेन्द्र, उत्तरेन्द्र एवं उनके परिवार वाले असुरकुमारों के भवन हैं। रत्नप्रभा पृथ्वी के खर भाग में ऊपर और नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर इस जम्बूद्वीप से तिरछे दक्षिण एवं उत्तर दिशा में असंख्यात द्वीप-समुद्रों के बाद क्रमशः दक्षिणेन्द्र, उत्तरेन्द्र एवं उनके परिवार वाले शेष नौ कुमारों के भवन हैं। इनमें किन्हीं-किन्हीं के भवनपुर एवं आवास भी होते हैं, परन्तु असुरकुमार देवों के केवल भवन रूप ही निवास स्थान होते हैं, भवनपुर और आवास नहीं होते हैं।

प्र.788 इन देव भवनों की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई के साथ-साथ क्या विशेषता हैं?

उत्तर इन भवनों की लम्बाई, चौड़ाई का जघन्य प्रमाण संख्यात योजन और उत्कृष्ट प्रमाण असंख्यात योजन है। वे समस्त भवन चौकोर होते हैं। उनका बाहुल्य (ऊँचाई) तीन सौ योजन है। प्रत्येक भवन के बीच में सौ योजन ऊँचा एक पर्वत है और प्रत्येक पर्वत पर एक-एक चैत्यालय है। भवनों की भूमि और दीवारें रत्नमयी होती हैं। वे भवन सतत प्रकाशवान रहते हैं और सर्वेन्द्रियों को सुख देने वाली चन्दनादि वस्तुओं से सिक्त होते हैं।

प्र.789 दस प्रकार के भवनवासी देवों के भवनों की संख्या कितनी-कितनी है?

उत्तर असुरकुमार देवों के 64 लाख भवन हैं। नागकुमार देवों के 84 लाख भवन हैं। सुपर्णकुमार देवों के 72 लाख भवन हैं। द्वीप कुमारों के 76 लाख भवन हैं। उदधिकुमारों के 76 लाख भवन हैं। स्तनित कुमारों के 76 लाख भवन हैं। विद्युत कुमारों के 76 लाख भवन हैं। दिक्कुमारों के 76 लाख भवन हैं। अग्निकुमारों के 76 लाख भवन हैं तथा वायुकुमारों के 96 लाख भवन हैं।

प्र.790 भवनवासी इन्द्रों के भवनों की संख्या कितनी-कितनी है?

उत्तर भवनवासी के दक्षिणेन्द्रों में चमरेन्द्र के 34 लाख , भूतानन्द के 44 लाख, वेणु के 38 लाख, पूर्ण के 40

लाख, जलप्रभ के 40 लाख, घोष के 40 लाख, हरिषेण के 40 लाख, अमितगति के 40 लाख, अग्निशिखी के 40 लाख, और वेलम्ब के 50 लाख भवन हैं। इसी प्रकार उत्तरेन्द्र में वैरोचन के 30 लाख, धरणानन्द के 40 लाख, वेणुधारी के 34 लाख, वाशिष्ठ के 36 लाख, जलकान्त के 36 लाख, महाघोष के 36 लाख, हरिकान्त के 36 लाख, अमित वाहन के 36 लाख, अग्निवाहन के 36 लाख और प्रभंजन के 46 लाख भवन हैं। (इन्द्रों की इस भवन संख्या में उनके परिवार वाले देवों के भवनों की संख्या भी सम्मिलित है) (क.दी.भा.-3)

प्र.791 असुरकुमार आदि देवों के चैत्यवृक्षों के नाम किस प्रकार हैं ?

उत्तर असुरकुमार आदि देवों के चैत्यवृक्षों के नाम क्रमश: पीपल, सप्तपर्ण, शाल्मली, जामुन, वेतस, कदम्ब, प्रियंगु, शिरीष, पलाश और राजद्रुम (चारोली-चिरोंजी का वृक्ष) हैं।

प्र.792 उपर्युक्त वृक्षों के लिए चैत्यवृक्ष क्यों कहा जाता है?

उत्तर चैत्यवृक्षों के मूल भाग की चारों दिशाओं में पद्मासन से स्थित पांच-पांच जिन प्रतिमाएँ हैं अत: इन्हें चैत्यवृक्ष कहते हैं। प्रतिमाओं के आगे प्रत्येक दिशा में रत्नमय, उत्तुंग पाँच-पाँच मानस्तम्भ हैं। इन मानस्तम्भों के ऊपर चारों दिशाओं में सात-सात प्रतिमाएँ विराजमान हैं। जिनकी सम्यग्दृष्टि देवगण बड़ी श्रद्धा से पूजन भक्ति किया करते हैं तथा मिथ्यादृष्टि देव कुलदेवता मानकर उपासना करते हैं।

प्र.793 भवनवासी देवों के भवनलोक में अकृत्रिम- चैत्यालयों की संख्या कितनी है?

उत्तर भवनवासी देवों के भवनलोक में सात करोड़ बहत्तर लाख अकृत्रिम चैत्यालय हैं। जिनमें देव-देवाङ्गनाएँ भक्ति-भाव पूर्वक नृत्य, संगीत एवं मधुर गान आदि सह जिनपूजन किया करते हैं। (भवनों की जितनी संख्या है, अकृत्रिम चैत्यालयों की उतनी ही संख्या है।)

प्र.794 भवनवासी देवों में आहार और श्वासोच्छ्वास का क्या नियम है?

उत्तर असुरकुमार देव 1000 वर्ष में आहार ग्रहण करते हैं और एक पक्ष में श्वासोच्छ्वास लेते हैं। नागकुमार सुपर्णकुमार और द्वीपकुमार $12\frac{1}{2}$ दिन में आहार ग्रहण करते हैं तथा $12\frac{1}{2}$ मुहूर्त्त में श्वासोच्छ्वास लेते हैं उदधिकुमार, स्तनितकुमार और विद्युतकुमार 12 दिन में आहार ग्रहण करते हैं एवं 12 मुहूर्त्त में श्वासोच्छ्वास लेते हैं। तथा दिक्कुमार, अग्निकुमार और वायुकुमार देव $7\frac{1}{2}$ दिन में आहार ग्रहण करते हैं और $7\frac{1}{2}$ मुहूर्त्त में श्वासोच्छ्वास लेते हैं।

प्र.795 देवों का आहार किस तरह से और किस तरह का ग्रहण किया जाता है?

उत्तर देवों को अपने समय से आहार ग्रहण की इच्छा होते ही उनके कण्ठ से अति स्निग्ध और अनुपम अमृतमय आहार निर्झरित हो जाता है।

प्र.796 भवनवासी देवों का गमन किस निमित्त कहाँ-कहाँ तक होता है?

उत्तर भक्ति सह इन्द्र आदि देवगण तीर्थंकरों के पञ्चकल्याणकों के निमित्त ढाई द्वीप में तथा जिनेन्द्र प्रतिमाओं की पूजन के निमित्त नंदीश्वर द्वीप पर्यन्त जाते हैं। शीलादि गुणों के धारी मनुष्य या मुनिवरों

की सेवा पूजन व परीक्षा हेतु भी जाते हैं।

प्र.797 असुरकुमार देव और कहाँ तक गमन करते हैं?

उत्तर असुरकुमार देव क्रीड़ा या सहायता या शत्रुता निभाने के लिए ऊर्ध्वरूप से अन्य की सहायता बिना ऐशान स्वर्ग तक और दूसरे देवों की सहायता से अच्युत स्वर्ग पर्यन्त गमन करते हैं तथा अधोलोक में तीसरी पृथ्वी तक जाते हैं।

प्र.798 भवनवासी देवों के उत्कृष्ट आयु कितनी होती है?

उत्तर भवनवासी देवों के दक्षिणेन्द्रों में चमर, भूतानन्द, वेणु, पूर्ण और जलप्रभ आदि छह देवों की उत्कृष्ट आयु क्रमशः 1 सागर, 3 पल्य, $2\frac{1}{2}$ पल्य, 2 पल्य एवं $1\frac{1}{2}$ पल्य होती है।

उत्तरेन्द्रों में वैरोचन, धरणानन्द, वेणुधारी, वशिष्ठ एवं जलकान्त आदि छह देवों की उत्कृष्ट आयु क्रमशः साधिक 1 सागर, साधिक 3 पल्य, साधिक $2\frac{1}{2}$ पल्य, साधिक 2 पल्य एवं साधिक $1\frac{1}{2}$ पल्य होती है।

प्र.799 भवनवासी देवों की जघन्यायु कितनी होती है?

उत्तर भवनवासी देवों की जघन्यायु दस हजार वर्ष की होती है।

प्र.800 आयु की अपेक्षा भवनवासी देवों में कितनी शक्ति (सामर्थ्य) होती है?

उत्तर जो देव दस हजार वर्ष की आयु वाला होता है, वह अपनी शक्ति से एक सौ मनुष्यों का हनन करने में समर्थ होता है, तथा वह देव डेढ़ सौ धनुष प्रमाण लम्बे, चौड़े और मोटे क्षेत्र को बाहुओं से वेष्टित करने और उखाड़ने में समर्थ होता है।

एक पल्योपम आयु वाला देव पृथ्वी के छह खण्डों को उखाड़ने तथा वहाँ रहने वाले मनुष्यों एवं तिर्यञ्चों का हनन करने में समर्थ होता है

एक सागरोपम काल की आयु वाला देव समग्र जम्बूद्वीप को उखाड़कर फेंक देने व तहस-नहस करने और उसमें रहने वाले नर पशुओं का हनन करने में समर्थ होता है।

प्र.801 देव एक समय में कितनी दूरी तय कर सकता है?

उत्तर संख्यात वर्ष की आयु वाला देव एक समय में संख्यात योजन की दूरी तय कर (जा, आ) सकता है।

प्र.802 भवनवासी देवों के अवधिज्ञान की प्रवृत्ति ऊर्ध्व, अधः दिशा रूप कितने क्षेत्र में है?

उत्तर भवनवासी देव स्व-स्व भवन में स्थित होकर अपने अवधिज्ञान से ऊर्ध्व दिशा में मेरु पर्वत के शिखर पर्यन्त क्षेत्र के पदार्थों को जान सकते हैं। अधो दिशा में अपने-अपने भवनों के नीचे-नीचे अल्प क्षेत्र पर्यन्त के पदार्थों को जान सकते हैं।

प्र.803 भवनवासी देवों के अवधिज्ञान का विषय क्षेत्र तिर्यक् रूप से एवं काल की अपेक्षा किस प्रकार है?

उत्तर भवनवासी देवों का अवधिज्ञान अबाधित रूप से तिर्यक् (तिरछे) क्षेत्र में जघन्य रूप से पच्चीस योजन तक विषय करता है। काल की अपेक्षा एक दिन के भीतर की वस्तु को विषय करता है। उत्कृष्ट रूप से

क्षेत्र एवं काल की अपेक्षा असुरकुमार देवों के अवधिज्ञान का प्रमाण क्रमशः असंख्यात करोड़ योजन एवं असंख्यात वर्ष मात्र है। शेष देवों के अवधिज्ञान का प्रमाण, क्षेत्र एवं काल की अपेक्षा क्रमशः उत्कृष्ट रूप से असंख्यात हजार योजन व असंख्यात वर्ष और असुरकुमारों के अवधिज्ञान के काल से संख्यात गुणा कम है।

प्र.804 भवनवासी देवों के शरीर का उत्सेध (ऊँचाई) कितना होता है एवं विक्रिया कितनी होती है?

उत्तर असुरकुमारों के शरीर की ऊँचाई 25 धनुष और शेष देवों की ऊँचाई दस धनुष मात्र होती है। दस प्रकार के भवनवासी देव अनेक रूपों की विक्रिया करते हुए अपने-अपने अवधिज्ञान के क्षेत्र को पूरित करते हैं। विक्रिया द्वारा निर्मित उनके शरीरों की ऊँचाई अनेक प्रकार की होती है।

प्र.805 असुरकुमार देवों का शरीर किस वर्ण का होता है?

उत्तर असुरकुमार देवों का शरीर कृष्णवर्ण का होता है।

प्र.806 नागकुमार देवों का शरीर किस वर्ण का होता है?

उत्तर नागकुमार देवों का शरीर कालश्यामल सदृश वर्ण का होता है।

प्र.807 सुपर्णकुमार और द्वीपकुमार देवों के शरीर का वर्ण किस तरह का होता है?

उत्तर सुपर्णकुमार और द्वीपकुमार देवों के शरीर का वर्ण श्यामल वर्ण का होता है।

प्र.808 उदधिकुमार और स्तनितकुमार देवों के शरीर का वर्ण कैसा होता है?

उत्तर उदधिकुमार और स्तनितकुमार देवों का शरीर कालश्यामल वर्ण का होता है।

प्र.809 विद्युत्कुमार देवों का शरीर किस वर्ण का होता है?

उत्तर विद्युत्कुमार देवों का शरीर बिजली के सदृश वर्ण का होता है।

प्र.810 दिक्कुमार देवों का शरीर किस वर्ण का होता है?

उत्तर दिक्कुमार देवों का शरीर श्यामल वर्ण का होता है।

प्र.811 अग्निकुमार देवों का शरीर किस वर्ण का होता है?

उत्तर अग्निकुमार देवों का शरीर प्रज्वलित अग्नि सदृश वर्ण का होता है।

प्र.812 वातकुमार देवों का शरीर किस वर्ण का होता है?

उत्तर वातकुमार देवों का शरीर नवीन कुवलय (नीलकमल) के सदृश वर्ण का होता है।

प्र.813 असुरकुमारादि देवों के प्रवीचार सम्बन्धी क्या नियम है?

उत्तर असुरकुमार आदि देवों का प्रवीचार (कामवासना) सामान्य मनुष्य की तरह काया प्रवीचार रूप होता है।

प्र.814 निम्न निकाय के देवों की गति को देव-दुर्गति क्यों कहा जाता है?

उत्तर निम्न निकाय के देव अत्यधिक भोग लालसा के साथ मिथ्यात्व सेवन तथा पारस्परिक ईर्ष्या की भावना के कारण इनकी गति देव-दुर्गति कहा जाती है।

प्र.815 भवनवासी देवों में उत्पत्ति के क्या कारण हैं?

उत्तर मिथ्यात्व सेवन सह पापानुबंधी पुण्य करने वाले, ज्ञान और चारित्र में दृढ़ शंका वाले, संक्लेश परिणामों वाले, दोषपूर्ण चारित्रवाले, उन्मार्गगामी, निदान भावों से युक्त, पापों की प्रमुखता से सहित, कामिनी के विरह रूपी ज्वर से जर्जरित, कलहप्रिय और पापिष्ठ एवं अविनयी संज्ञी व असंज्ञी जीव भवनवासी देवों में उत्पन्न होते हैं। जो क्रोध, मान, माया और लोभ कषायों में आसक्त हैं, दुश्चारित्र वाले हैं तथा वैर-भाव में रुचि रखते हैं, वे असुरों में उत्पन्न होते हैं। (क.प्र.भा.3)

प्र.816 देव-दुर्गतियों में उत्पत्ति के क्या कारण है?

उत्तर समाधिमरण के विराधित करने पर कितने ही जीव कन्दर्प, किल्विष, आभियोग्य और सम्मोह आदि देव-दुर्गतियों में उत्पन्न होते हैं। जो सत्यवचन से रहित है, बहुजन में हँसी करते हैं और जिनका हृदय कामासक्त रहता है, वे निश्चय से कन्दर्प देवों में उत्पन्न होते हैं।

जो भूतिकर्म, मन्त्राभियोग्य और कौतूहलादि से संयुक्त हैं तथा लोगों की वंचना करने में प्रवृत्त रहते हैं, वे वाहन देवों में उत्पन्न होते हैं।

तीर्थंकर, संघ-प्रतिमा एवं आगम-ग्रन्थादिक के विषय में प्रतिकूल, दुर्विनयी तथा प्रलाप करने वाले जीव किल्विषिक देवों में उत्पन्न होते हैं।

कुमार्ग का उपदेश करने वाले, जिनेन्द्रोपदिष्ट मार्ग के विरोधी और मोह से मुग्ध जीव सम्मोह जाति के देवों में उत्पन्न होते हैं।

प्र.817 व्यन्तर देवों के आठ भेदों में प्रत्येक के दो-दो इन्द्रों के नाम कौन- से हैं?

उत्तर व्यन्तर देवों में किन्नरों के किंपुरुष और किन्नर, किंपुरुषों के सत्पुरुष और महापुरुष, महोरगों के महाकाय और अतिकाय, गन्धर्वों के गीतरति और गीतयश, यक्षों के मणिभद्र और पूर्णभद्र, राक्षसों के भीम और महाभीम, भूतों के स्वरूप और प्रतिरूप, पिशाचों के काल और महाकाल इस तरह कुल सोलह इन्द्र होते हैं।

प्र.818 व्यन्तर देवों के निवास स्थान कहाँ पर हुआ करते हैं?

उत्तर रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग में जम्बूद्वीप से तिरछे दक्षिण एवं उत्तर दिशा में असंख्यात द्वीप-समुद्रों के बाद क्रमशः दक्षिणेन्द्र, उत्तरेन्द्र एवं उनके परिवार वाले किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, भूत और पिशाच इन सात प्रकार के व्यन्तर देवों के आवास हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी के पंकबहुल भाग में जम्बूद्वीप से तिरछे दक्षिण एवं उत्तर दिशा में असंख्यात द्वीप-समुद्रों के बाद क्रमशः दक्षिणेन्द्र, उत्तरेन्द्र एवं उनके परिवार वाले राक्षस नाम व्यन्तरों के आवास हैं। चित्रा और वज्रा पृथ्वी की सन्धि से प्रारम्भ कर मेरु पर्वत की ऊँचाई तक तथा मध्यलोक का विस्तार जहाँ तक है वहाँ के समस्त क्षेत्र में व्यन्तर देव यथायोग्य भवनपुरों, आवासों एवं भवनों में रहते हैं।

प्र.819 नीचोपपाद आदि व्यन्तर देवों का निवास कहाँ पर है?

उत्तर चित्राभूमि (पृथ्वी) से एक हाथ ऊपर नीचोपपाद देव स्थित हैं। इनसे दस हजार हाथ ऊपर दिग्वासी देव हैं। इनसे दस हजार हाथ ऊपर अन्तरवासी और उनसे दस हजार हाथ ऊपर कूष्माण्ड देव निवास

करते हैं। इनसे बीस हजार हाथ ऊपर उत्पन्न देव, इनसे बीस हजार हाथ ऊपर अनुत्पन्न देव, इनसे बीस हजार हाथ ऊपर प्रमाणक देव, इनसे बीस हजार हाथ ऊपर गन्धदेव, इनसे बीस हजार हाथ ऊपर महागन्धदेव, इनसे बीस हजार हाथ ऊपर भुजङ्गदेव, इनसे बीस हजार हाथ ऊपर प्रीतिकदेव और इनसे बीस हजार हाथ ऊपर आकाशोत्पन्न व्यन्तर देव निवास करते हैं।

प्र.820 व्यन्तर देवों के चैत्यवृक्ष कौन-से हैं? उनका स्वरूप क्या है?

उत्तर व्यन्तर देवों के क्रमश: अशोक, चम्पा, नागकेशर, तुम्बुरु, वट, कण्टकतरु, तुलसी और कदम्ब नामक चैत्यवृक्ष हैं। (ये वृक्ष चैत्यप्रतिमा युत पृथ्वी कायिक हैं।)

चैत्यवृक्षों के मूल की प्रत्येक दिशा में पल्यङ्कासन से युक्त चार-चार जिन प्रतिमाएँ हैं। प्रत्येक प्रतिमा के आगे एक-एक मानस्तम्भ है जो नाना प्रकार की मोतियों की मालाओं एवं दिव्य घण्टाजाल आदि से सुशोभित हैं।

प्र.821 व्यन्तर देव सम्बन्धी जिन-भवनों का प्रमाण कितना है?

उत्तर जगत्प्रतर के संख्यात भाग में तीन सौ योजनों के वर्ग का भाग देने पर जो लब्ध आवे उतने प्रमाण जिनमंदिर व्यन्तर लोक में हैं।

प्र.822 व्यन्तर देवों में आहार व श्वासोच्छ्वास का क्या नियम है?

उत्तर जिन व्यन्तर देवों की आयु पल्य प्रमाण है उनका पाँच दिन के अन्तर से आहार होता है और पाँच मुहूर्त्त के बाद उच्छ्वास होता है। जिन व्यन्तर देवों की आयु मात्र दस हजार वर्ष है, उनका आहार दो दिन बाद और उच्छ्वास (यहाँ के) सात श्वासोच्छ्वास (काल) के पश्चात् होता है। किन्नर आदि व्यन्तर देव तथा देवियाँ दिव्य एवं अमृतमय आहार का उपभोग मन से ही करते हैं, उनके कवलाहार (ग्रासाहार) नहीं होता है।

प्र.823 व्यन्तर देवों की विक्रिया शक्ति एवं गमन शक्ति कितनी होती है?

उत्तर दस हजार वर्ष की आयु वाला व्यन्तर देव उत्कृष्ट रूप से सौ रूपों की, जघन्य रूप सात रूपों और मध्यम रूप से विविध रूपों की विक्रिया करता है।

शेष व्यंतर देवों में से प्रत्येक देव अपने-अपने अवधिज्ञान का जितना क्षेत्र है, उतने प्रमाण क्षेत्र को विक्रिया बल से पूर्ण करता है संख्यात वर्ष प्रमाण आयु वाला व्यन्तर देव एक समय में संख्यात योजन और असंख्यात वर्ष प्रमाण आयु वाला देव असंख्यात योजन जाता है।

प्र.824 व्यन्तर देवों की आयु कितनी होती है?

उत्तर व्यन्तर देवों की उत्कृष्ट आयु एक पल्य प्रमाण, मध्यम आयु असंख्यात वर्ष प्रमाण और जघन्यायु दस हजार वर्ष प्रमाण होती है।

प्र.825 व्यन्तर देवों में सामर्थ्य (शक्ति) कितनी होती है?

उत्तर दस हजार वर्ष प्रमाण आयु वाला प्रत्येक व्यन्तर देव एक सौ मनुष्यों का हनन एवं रक्षण करने में समर्थ होता है। वह देव अपनी शक्ति से एक सौ पचास धनुष प्रमाण विस्तार एवं बाहल्य से युक्त क्षेत्र को

उखाड़ कर अन्यत्र रख सकता है। एक पल्य प्रमाण आयु वाला व्यन्तर देव अपनी भुजाओं से छह खण्डों को उलटने में समर्थ है और उनमें स्थित मनुष्यों का हनन तथा रक्षण करने में समर्थ होता है।

प्र.826 व्यन्तर देवों के अवधिज्ञान का क्षेत्र कितना है?

उत्तर दस हजार वर्ष प्रमाण आयु वाले व्यन्तर देवों के अवधिज्ञान का विषय ऊपर और नीचे जघन्य रूप से पाँच कोस तथा उत्कृष्ट रूप से पचास कोस प्रमाण है। पल्योपम प्रमाण आयु वाले व्यन्तर देव अपने अवधि ज्ञान से नीचे और ऊपर एक-एक लाख योजन प्रमाण विषय को देखते और जानते हैं।

प्र.827 व्यन्तर देवों की शारीरिक अवगाहना कितनी होती है ?

उत्तर किन्नर आदि आठों व्यन्तर देवों संबन्धी प्रत्येक की ऊँचाई दस धनुष प्रमाण होती है।

अध्याय- 9. ज्योतिषि, विमानवासी व गुणस्थानादि

प्र.828 ज्योतिषि देवों का स्वरूप क्या है?

उत्तर जिस प्रकार एक गोले के दो खण्ड करके उन्हें ऊर्ध्व मुख रखा जावे तो चौड़ाई का भाग ऊपर और गोलाई वाला सँकरा भाग नीचे रहता है। उसी प्रकार ऊर्ध्व मुख अर्द्ध गोले के सदृश ज्योतिषि देवों के विमान स्थित हैं। विमानों का मात्र नीचे का गोलाकर भाग ही हमारे द्वारा दृश्यमान होता है तथा ज्योतिषि देवों के विमान पृथ्वीकायिक होते हैं।

प्र.829 राहु-केतु के विमानों का क्या स्वरूप है? एवं सूर्य -चन्द्र ग्रहण किसे कहते हैं?

उत्तर राहु का विमान, चन्द्र विमान के नीचे और केतु का विमान, सूर्य विमान के नीचे गमन करता है। प्रत्येक छः माह के बाद पूर्णिमा और अमावस्या के अंत में राहु चन्द्रमा को और केतु सूर्य को आच्छादित करता है, इसी का नाम ग्रहण कहा जाता है।

प्र.830 सूर्य चन्द्र आदि की किरणों का स्वरूप क्या है?

उत्तर चन्द्रमा की किरणें शीतल होती हैं; जिनका प्रमाण बारह हजार है। सूर्य की किरणें तीक्ष्ण (उष्ण) होती हैं; जिनका प्रमाण बारह हजार है। शुक्र की किरणें तीव्र प्रकाश से उज्जवल होती हैं, उनका प्रमाण ढाई हजार है। शेष ज्योतिषी देवों की किरणें मंद प्रकाश वाली हैं।

प्र.831 विसदृश प्रमाण वाली परिधियों (वीथियों) को सूर्य चन्द्र; समान काल में कैसे समाप्त (पूर्ण करते हैं?

उत्तर सूर्य और चन्द्र प्रथम वीथी में हाथीवत्, मध्यम वीथी में घोड़ेवत् और अंतिम वीथी में सिंहवत् गमन करते हैं। अर्थात् प्रथमादि वीथी से आगे जाते समय सीधी गति से एवं बाह्यादि वीथी से पीछे आते समय मन्द गति से गमन करते हैं। इस प्रकार विषम वीथियों को समान काल में पूरा कर लेते हैं।

प्र.832 ज्योतिषि देवों का गमन किस गति से होता है?

उत्तर ज्योतिषि देवों में चन्द्रमा की गति सबसे मंद है। सूर्य; चन्द्रमा की अपेक्षा शीघ्रगामी है। ग्रह; सूर्य से भी अधिक शीघ्र गामी है। नक्षत्र; ग्रह से भी अधिक शीघ्रगामी है और तारागण उससे भी अधिक शीघ्रगामी हैं। उदाहरणार्थ-

चन्द्रमा अभ्यन्तर वीथी में एक मिनिट में ४,२२,७९७ $\frac{३१}{१६४७}$ मील चलता है। अभ्यन्तर वीथी में सूर्य का एक मिनिट में ४,३७,६२३ $\frac{११}{१८}$ मील चलता है।

प्र.833 ज्योतिषि देवों के संचार (भ्रमण) से रात और दिन पर क्या प्रभाव पड़ता है?

उत्तर ज्योतिषि देवों के संचार से काल के विभाग रूप व्यवहार होता है। जम्बूद्वीप की वीथी के पास १८० योजन की अभ्यंतर (प्रथम) वीथी में जब सूर्य भ्रमण करता है; तब दिन अठारह मुहूर्त्त (चौदह घण्टा चौबीस मिनिट) का और रात्रि बारह मुहूर्त्त (नौ घण्टा छत्तीस मिनिट) की होती है। किन्तु जब वही सूर्य बाह्य (अंतिम) परिधि में भ्रमण करता है तब दिन १२ मुहूर्त्त का और रात्रि १८ मुहूर्त्त की होती

है। श्रावण माह में कर्क राशि पर स्थित सूर्य अभ्यंतर परिधि में भ्रमण करता है। माघ माह में मकर राशि पर स्थित सूर्य बाह्य परिधि में भ्रमण करता है। क्षेत्र की दूरी और गति की हीनाधिकता से दिन छोटे-बड़े होते हैं। भ्रमण द्वारा दो सूर्य, एक परिधि को ३० मुहूर्त्त में पूरा करते हैं।

प्र.834 दक्षिणायन- उत्तरायन किस तरह प्रारम्भ होते हैं?

उत्तर सूर्य के प्रथम वीथी में स्थित होने से दक्षिणायन का और अंतिम वीथी में स्थित होने से उत्तरायन का प्रारम्भ होता है। श्रावण माह से पौष माह तक (१८३ दिन) सूर्य दक्षिणायन तथा माघ माह से आषाढ़ माह तक (१८३ दिन) उत्तरायन रहता है।

प्र.835 युग किसे कहते हैं? और उसका प्रारम्भ कब से होता है?

उत्तर पाँच वर्ष का एक युग होता है और दक्षिणायन के प्रारम्भ से युग का प्रारम्भ होता है।

प्र.836 ढाई वर्ष में एक अधिक मास की प्राप्ति कैसे होती है?

उत्तर सूर्य गमन की गलियाँ १८४ हैं। एक गली से दूसरी गली दो-दो योजन (८००० मील) की दूरी पर हैं। एक गली से दूसरी गली में प्रवेश करता हुआ सूर्य उस मध्य के दो योजन अन्तराल को पार करते हुए जाता है। इन पूरे अंतरालों को पार करने का काल बारह योजन है क्योंकि उसका एक दिन में एक अन्तराल पार करने का काल एक मुहूर्त्त (४८ मिनिट) है। अतः एक दिन में एक मुहूर्त्त की, तीस दिन में (एक मास में) ३० मुहूर्त्त अर्थात् एक दिन की और बारह माह में बारह दिन की, ढाई वर्ष में तीस दिन (एक मास) की और पाँच वर्ष स्वरूप एक युग में दो माह की वृद्धि होती है।

प्र.837 चन्द्रमा की उत्कृष्ट आयु कितनी है?

उत्तर चन्द्रमा की उत्कृष्ट आयु एक लाख वर्ष अधिक एक पल्य की है।

प्र.838 सूर्य की उत्कृष्ट आयु कितनी है?

उत्तर सूर्य की उत्कृष्ट आयु एक हजार वर्ष अधिक एक पल्य है।

प्र.839 शुक्र की उत्कृष्ट आयु कितनी है?

उत्तर शुक्र की उत्कृष्ट आयु सौ वर्ष अधिक एक पल्य है।

प्र.840 गुरु की उत्कृष्ट आयु कितनी है?

उत्तर गुरु की उत्कृष्ट आयु एक पल्य प्रमाण है।

प्र.841 शेष ग्रहों की उत्कृष्ट आयु कितनी है?

उत्तर शेष ग्रहों की उत्कृष्ट आयु अर्द्ध पल्य प्रमाण है।

प्र.842 ताराओं की उत्कृष्ट आयु कितनी है?

उत्तर ताराओं की उत्कृष्ट आयु पल्य के चतुर्थ भाग प्रमाण है।

प्र.843 समस्त ज्योतिषि देवों की जघन्य आयु कितनी है?

उत्तर समस्त ज्योतिषि देवों की जघन्य आयु पल्य के आठवें भाग प्रमाण है।

प्र.844 ज्योतिष्क देवांगनाओं की आयु कितनी होती है?

उत्तर ज्योतिष्क देवांगनाओं की आयु स्व-स्व देवों की आयु के अर्द्ध भाग प्रमाण होती है। (उपर्युक्त आयु ज्योतिषि विमानों की ना होकर उनमें रहने वाले देव-देवियों की है।)

प्र.845 ज्योतिषि देवों के अवधिज्ञान का विषय कितना है?

उत्तर ज्योतिषि देवों के अवधिज्ञान का विषय भवनवासी देवों के अवधिज्ञान के विषय से असंख्यात गुणा है।

प्र.846 ज्योतिषि देवों के शरीर की अवगाहना कितनी है?

उत्तर ज्योतिषि देवों के शरीर की अवगाहना (ऊँचाई) सात धनुष प्रमाण है।
(ज्योतिषि देवों के भेद आदि का वर्णन देखें- जैनागम संस्कार, अ.13, पृ.125)

प्र.847 ज्योतिष्क देवों के विमानों संबंधी अकृत्रिम चैत्यालयों का प्रमाण कितना है?

उत्तर ज्योतिष्क देवों के विमान असंख्यात हैं और सभी विमानों में एक-एक अकृत्रिम जिनालय स्थित हैं। अत: उनकी संख्या असंख्यात है। (स्वर्गादिक में रहने वाले वैमानिक देवों के भेद आदि का वर्णन देखें- जै.सं., अ.-13, पृ.127)

प्र.848 मध्यलोक से स्वर्ग विमान कितने ऊपर हैं?

उत्तर सुदर्शन मेरु पर्वत (एक लाख चालीस योजन प्रमाण वाला मध्यलोक में स्थित है; ऐसे सुमेरु पर्वत) की चूलिका से उत्तम भोगभूमिज मनुष्य के एक बाल की मोटाई प्रमाण ऊपर से स्वर्ग विमान का प्रारम्भ है।

प्र.849 स्वर्गों की सौधर्म आदि संज्ञा (नाम) क्यों है?

उत्तर स्वर्गों में सुधर्मा नामक सभा इत्यादिक के साहचर्य से सौधर्म स्वर्ग एवं शेष इन्द्रों के नाम के साहचर्य से स्वर्गों के उपर्युक्त नाम प्रचलित हैं।

प्र.850 ग्रैवेयक यह संज्ञा क्यों है?

उत्तर लोकाकाश को पुरुषाकार माना है, उस लोक रूप पुरुष के ग्रीवा-स्थानीय भाग में होने वाले विमानों को ग्रैवेयक विमान कहते हैं।

प्र.851 स्वर्गों में, स्वर्ग विमान कितने विस्तार वाले हैं?

उत्तर स्वर्गों में इन्द्रक विमान संख्यात योजन विस्तार वाले हैं। श्रेणीवत् विमान असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं और प्रकीर्णक विमानों में, कुछ संख्यात योजन विस्तार वाले और कुछ असंख्यात योजन विस्तार वाले हैं।

प्र.852 वैमानिक देवों संबंधी पटलों की संख्या कितनी है?

उत्तर वैमानिक देवों संबंधी पटलों की संख्या त्रेसठ (६३) है।

प्र.853 वैमानिक देवों के इन्द्रक विमान कितने हैं? और वे कहाँ-कहाँ स्थित हैं?

उत्तर एक-एक पटल में एक-एक ही इन्द्रक विमान होने से इन्द्रक विमानों की संख्या भी त्रेसठ (६३) ही है।

सौधर्म युगल में इक्तीस (३१) इन्द्रक, सानतकुमार युगल में सात (७) इन्द्रक, ब्रह्म युगल में चार (४) इन्द्रक, लान्तव युगल में दो (२) इन्द्रक, शुक्र युगल में एक (१) इन्द्रक, शतार युगल में एक (१) इन्द्रक, आनत आदि चार स्वर्गों में छः (६) इन्द्रक, तीन अधस्तन ग्रैवेयकों में तीन (३) इन्द्रक हैं। तीन मध्यम ग्रैवेयकों में तीन (३) इन्द्रक हैं। तीन उपरिम ग्रैवेयकों में तीन (३) इन्द्रक हैं। नौ अनुदिशों में एक (१) इन्द्रक है, पाँच अनुत्तरों में एक (१) इन्द्रक विमान है।

प्र.854 स्वर्गादिक में रहने वाले वैमानिक देवों के श्रेणीबद्ध विमान किस तरह स्थित हैं?

उत्तर पैंतालीस लाख योजन प्रमाण विस्तार वाले (मनुष्य क्षेत्र के समान प्रमाण वाले) प्रथम ऋतु नामक इन्द्रक विमान की चारों दिशाओं में बासठ-बासठ श्रेणीबद्ध विमान हैं। इसके आगे दूसरे, तीसरे, चौथे आदि इन्द्रकों में वे उत्तरोत्तर एक-एक कम (इकसठ, साठ, उन्सठ) आदि होते हुये अनुदिश और अनुत्तर इन्द्रक विमानों की चारों दिशाओं में मात्र एक-एक ही विमान अवशेष रहते हैं। एक लाख योजन प्रमाण विस्तार वाले (जम्बूद्वीप समान प्रमाण वाले) अंतिम सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक विमान की चारों दिशाओं में एक-एक श्रेणीबद्ध विमान है।

(प्रथम कल्प से लेकर नवग्रैवेयक तक प्रकीर्णक विमान भी अनेक संख्या में बिखरे हुये हैं।)

प्र.855 सौधर्म कल्प में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर सौधर्म कल्प में इन्द्रक आदि (इन्द्रक, श्रेणीबद्ध, प्रकीर्णक) विमान बत्तीस लाख हैं।

प्र.856 ईशान कल्प में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं ?

उत्तर ईशान कल्प में इन्द्रक आदि अट्ठाईस लाख विमान हैं।

प्र.857 सानतकुमार कल्प में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर सानतकुमार कल्प में इन्द्रक आदि विमान बारह लाख हैं।

प्र.858 माहेन्द्र कल्प में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर माहेन्द्र कल्प में इन्द्रक आदि आठ लाख विमान हैं।

प्र.859 ब्रह्म कल्प में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर ब्रह्म कल्प में इन्द्रक आदि चार लाख विमान हैं।

प्र.860 लान्तव कल्प में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर लान्तव कल्प में इन्द्रक आदि पचास हजार विमान हैं।

प्र.861 महाशुक्र कल्प में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर महाशुक्र कल्प में इन्द्रक आदि चालीस हजार विमान हैं।

प्र.862 सहस्रार कल्प में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर सहस्रार कल्प में इन्द्रक आदि छः हजार विमान हैं।

प्र.863 आनत आदि कल्पों में इन्द्रक आदि कितने विमान हैं?

उत्तर आनत आदि कल्पों में इन्द्रक आदि सात सौ विमान हैं।

प्र.864 अधस्तन तीन ग्रैवेयकों में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं।

उत्तर अधस्तन तीन ग्रैवेयकों में इन्द्रक आदि विमान एक सौ ग्यारह हैं।

प्र.865 मध्यम तीन ग्रैवेयकों में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर मध्यम तीन ग्रैवेयकों में इन्द्रक आदि विमान एक सौ सात हैं।

प्र.866 उपरिम तीन ग्रैवेयकों में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर उपरिम तीन ग्रैवेयकों में इन्द्रक आदि विमान इक्यानवै हैं।

प्र.867 अनुदिशों में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर अनुदिशों में इन्द्रक आदि विमान नौ हैं।

प्र.868 अनुत्तरों में इन्द्रक आदि विमान कितने हैं?

उत्तर अनुत्तरों में इन्द्रक आदि विमान पाँच हैं।

प्र.869 स्वर्गादिक के संपूर्ण विमान किस आधार पर अवस्थित हैं?

उत्तर सौधर्म-ईशान कल्प के विमान जल के ऊपर अवस्थित हैं। सानत कुमार माहेन्द्र कल्पों के विमान वायु के ऊपर अवस्थित हैं। ब्रह्म स्वर्ग से लेकर सहस्रार स्वर्ग तक के विमान जल और वायु के ऊपर अवस्थित हैं। और आनतादि सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त के सभी विमान शुद्ध आकाश तक अवस्थित हैं। (क.दी. भाग-3, पृ.43)

प्र.870 सौधर्म आदि कल्पों में विमानों का वर्णन किस तरह है?

उत्तर सौधर्म और ईशान कल्प के स्वर्ग विमान पाँचों वर्ण वाले हैं। तथा सानतकुमारादि युगल के विमान कृष्ण वर्ण से रहित शेष चार वर्ण वाले हैं।

प्र.871 ब्रह्म और लान्तव कल्प में विमान किस वर्ण वाले हैं?

उत्तर ब्रह्म और लान्तव कल्पों के विमान कृष्ण एवं नील वर्ण से रहित शेष तीन वर्ण वाले हैं।

प्र.872 महाशुक्र और सहस्रार कल्पों के विमान किस वर्ण वाले हैं?

उत्तर महाशुक्र और सहस्रार कल्पों में विमान कृष्ण, नील, रक्त रहित दो वर्ण वाले हैं।

प्र.873 आनतादि विमान किस वर्ण वाले हैं?

उत्तर आनतादि से लेकर अनुत्तर पर्यन्त सभी विमान कृष्ण, नील, रक्त (लाल) एवं पीत वर्ण से रहित होते हैं; मात्र शुक्ल वर्ण वाले हैं।

प्र.874 स्वर्गों में स्थित मानस्तंभ कहाँ और किस तरह के होते हैं?

उत्तर इन्द्रों के सभा-मण्डप के आगे एक योजन विस्तीर्ण, छत्तीस योजन ऊँचा, पाद-पीठ से युक्त वज्रमय मानस्तंभ होता है। इसका आकार गोल और व्यास एक योजन का होता है। और इसमें एक-एक कोश विस्तार वाली बारह धाराएँ होती हैं तथा उन मानस्तंभों पर तीर्थंकरों के आभरणों से पूरित करण्डक स्थित होते हैं।

प्र.875 कौन-से क्षेत्र के तीर्थंकरों के आभरणों से कौन से मानस्तंभों के करण्डक पूरित होते हैं?

उत्तर सौधर्म स्वर्ग में स्थित मानस्तंभों पर स्थित करण्डक भरत क्षेत्र संबंधी तीर्थंकरों के आभरणों से पूरित होते हैं। ईशान स्वर्ग में स्थित मानस्तंभों पर स्थित करण्डक ऐरावत क्षेत्र संबंधी तीर्थंकरों के आभरणों से पूरित होते हैं। सानतकुमार और माहेन्द्र कल्प में स्थित मानस्तंभों पर स्थित करण्डक क्रमशः पूर्व विदेह संबंधी और पश्चिम विदेह संबंधी तीर्थंकरों के आभरणों से पूरित होते हैं।

प्र.876 स्वर्ग के इन्द्र आदि देवों का और देवांगनाओं का उत्पत्ति स्थान कहाँ पर है?

उत्तर मानस्तंभ के समीप इन्द्र का उत्पाद गृह आठ योजन लम्बा, चौड़ा और ऊँचा है। उसके मध्य में रत्नों की दो शय्यायें हैं। आरण स्वर्ग पर्यंत दक्षिण कल्पों की समस्त देवांगनाएँ सौधर्म कल्प में और अच्युत स्वर्ग पर्यंत उत्तर कल्पों की समस्त देवांगनाएँ ऐशान कल्प में ही उत्पन्न होती हैं। उत्पत्ति के बाद उपरिम कल्पों के देव अपनीअपनी देवांगनाओं को अपने- अपने स्थान पर ले जाते हैं।

प्र.877 सौधर्म-ऐशान स्वर्गों में कितने-कितने विमानों में देव और देवांगनाओं की उत्पत्ति होती है?

उत्तर सौधर्म-स्वर्ग में छ:लाख विमान और ऐशान स्वर्ग में चार लाख विमान शुद्ध विमान हैं; जहाँ मात्र देवांगनाओं की ही उत्पत्ति होती है। इन्हीं स्वर्गों में क्रम से छब्बीस लाख और चौबीस लाख विमानों में देव और देवांगनाओं दोनों की उत्पत्ति होती है। देवांगनाएँ मूल शरीर के साथ ही अपने नियोगी देवों के साथ जाती हैं।

प्र.878 स्वर्गादिक में देव पर्याय में जन्म लेने के बाद किस प्रकार का वातावरण देखा जाता है?

उत्तर स्वर्गादिक में देव उत्पत्ति के समय वहाँ स्थित देवगण आनंद वाद्य बजाते हैं, जय-जय के अनेक स्तुतियों के शब्द करते हैं। उन शब्दों को सुनकर प्राप्त हुये वैभव और अपने परिवार को देखकर तथा अवधिज्ञान से अपने पूर्वजन्म को ज्ञात कर वे नवीन देव धर्म की प्रशंसा करते हैं तथा परम स्नान करने के बाद पट्ट रूप अभिषेक इत्यादि एवं अलंकारों को प्राप्त कर सम्यग्दृष्टि देव स्वयं जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक पूजन करते हैं तथा मिथ्यादृष्टि देव अन्य देव द्वारा सम्बोधे जाने के उपरांत, ये कुल देवता हैं; ऐसा मानकर जिनेन्द्र पूजन करते हैं। ये सभी देव सुखसागर में निमग्न होने के कारण अपने व्यतीत हुये काल को नहीं जान पाते।

प्र.879 कल्पवासी देव धार्मिक अनुष्ठानों में किस तरह मध्यलोक में आकर धार्मिक पुण्य लाभ प्राप्त करते हैं?

उत्तर कल्पवासी देव तीर्थंकरों की महापूजा और उनके पञ्चकल्याणक महोत्सवों में जाते हैं किन्तु अहमिन्द्र देव तो अपने ही स्थान पर स्थित रहकर मणिमय मुकुटों पर अपने हाथों को मुकलित रूप में जोड़कर नमस्कार करते हैं। वे इन्द्र गर्भ और जन्मादि कल्याणकों में उत्तर शरीर से ही जाया करते हैं और उनके मूल शरीर तो सुख पूर्वक जन्म स्थानों में ही स्थित रहते हैं।

प्र.880 इन्द्रभवनों के सामने जिनेन्द्र देव के दर्शन हेतु क्या व्यवस्था होती है?

उत्तर समस्त इन्द्र भवनों के आगे न्यग्रोध वृक्ष होते हैं, इनमें एक-एक वृक्ष पृथ्वीकायिक और जम्बूवृक्ष के सदृश होते हैं। इसके मूल (मध्य) में प्रत्येक दिशा में एक-एक जिनेन्द्र प्रतिमा होती है, जिनके

चरणों में इन्द्रादिक प्रणाम करते हैं, पूजन करते हैं तथा जो प्रतिमायें स्मरण मात्र से ही पाप को हरने वाली होती हैं।

प्र.881 सौधर्म-ईशान आदि इन्द्रों की एक-एक प्रधान देवी की कितनी परिवार (सहयोगी) देवियाँ होती हैं?

उत्तर सौधर्म-ऐशान संबंधी सोलह हजार, सानतकुमार-माहेन्द्र संबंधी आठ हजार, ब्रह्मेन्द्र संबंधी चार हजार, लान्तव इन्द्र संबंधी दो हजार, महाशुक्र इन्द्र संबंधी एक हजार, सहस्रार इन्द्र संबंधी पाँच सौ, आनत आदि चार इन्द्र संबंधी ढाई सौ सहयोगी देवियाँ होती हैं।

प्र.882 वैमानिक देवों के आहार संबंधी नियम क्या है?

उत्तर एक सागरोपम काल पर्यन्त आयु वाले देवों का दिव्य अमृतमय आहार एक हजार वर्ष में संपन्न होता है। इसी तरह जितने सागरोपम हों उतने हजार वर्ष में आहार का नियम जानना चाहिए।

प्र.883 देवगति में एक भवावतारी कौन-कौन सी भव्य आत्मायें हैं?

उत्तर देवगति में एक भवावतारी निकट भव्यात्माएँ सौधर्म इन्द्र, शचि देवी, लोकपाल (सोम, यम, वरुण और धनद-कुबेर), सानत कुमारादि दक्षिणेन्द्र, लौकान्तिक देवर्षि और सर्वार्थसिद्धि विमान में उत्पन्न होने वाले सर्वदेव अपने-अपने स्थान से आकर चतुर्थ युग संबंधी मनुष्य भव प्राप्त कर निर्ग्रंथ मुनि बन उसी पर्याय से निर्वाण को प्राप्त करते हैं।

प्र.884 वैमानिक देवों में सम्यग्दर्शन संबंधी क्या नियम है?

उत्तर वैमानिक देवों में पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्था में औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन हो सकता है। अपर्याप्त अवस्था में औपशमिक सम्यग्दर्शन; द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन के साथ मरने वाले जीवों की अपेक्षा घटित होता है। देवांगनाओं के अपर्याप्त अवस्था में एक भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। पर्याप्त अवस्था में नवीन उत्पत्ति की अपेक्षा औपशमिक और क्षायोपशमिक ये दो सम्यग्दर्शन हो सकते हैं।

प्र.885 मिथ्या दृष्टि जीव देव पर्याय में कहाँ तक उत्पन्न हो सकते हैं?

उत्तर मिथ्यादृष्टि जीव का उत्पाद नवम ग्रैवेयक तक हो सकता है।

प्र.886 अनुदिश और अनुत्तर विमानों में सम्यग्दर्शन का क्या नियम है?

उत्तर नौ अनुदिश और पाँच अनुत्तर विमानों में सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं।

प्र.887 वैमानिक देवों के अवधिज्ञान का विषय क्षेत्र कितना है?

उत्तर सौधर्म-ऐशान कल्प के देव अपने अवधिज्ञान से नरक संबंधी प्रथम पृथ्वी पर्यन्त, सानतकुमार-माहेन्द्र कल्प के देव दूसरी पृथ्वी पर्यन्त, ब्रह्मादि चार स्वर्गों के देव तृतीय पृथ्वी पर्यन्त, शुक्र आदि चार स्वर्गों के देव चतुर्थ पृथ्वी पर्यन्त, आनत आदि चार स्वर्गों के देव पाँचवी पृथ्वी पर्यन्त, नौ ग्रैवेयक वासी देव छठी पृथ्वी पर्यन्त और अनुदिश एवं अनुत्तर वासी देव संपूर्ण लोक नाड़ी को देखते हैं। प्रत्येक वैमानिक देव अपने-अपने विमान के ध्वजदण्ड से ऊपर के क्षेत्र की बात नहीं जान

सकते।

प्र.888 वैमानिक देवों की विक्रिया का क्षेत्र कितना है?

उत्तर वैमानिक देवों की विक्रिया का क्षेत्र उनके अवधिज्ञान क्षेत्र प्रमाण है।

प्र.889 देवगति में देवों की लेश्या का आगमानुसार वर्णन किस प्रकार है?

उत्तर भवनत्रिक (भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिष्क) देवों की अपर्याप्त अवस्था में कृष्ण, नील, कापोत तीन अशुभ लेश्यायें हैं और पर्याप्त अवस्था में पीत लेश्या का जघन्य अंश होता है।

वैमानिक देवों की पर्याप्त-अपर्याप्त अवस्था में शुभ लेश्या ही होती हैं। जिनमें सौधर्म-ऐशान स्वर्ग में मध्यम पीत लेश्या, सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्ग में उत्कृष्ट पीत एवं जघन्य पद्मलेश्या, ब्रह्मादि छ:स्वर्गों में मध्यम पद्म लेश्या, शतार-सहस्रार स्वर्गों में उत्कृष्ट पद्म एवं जघन्य शुक्ल लेश्या, आनत आदि चार स्वर्गों में मध्यम शुक्ल लेश्या, ९ ग्रैवेयक में मध्यम शुक्ल लेश्या एवं ९ अनुदिश तथा ५ अनुत्तर में उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या होती है।

प्र.890 स्वर्गों में देवांगनाओं की उत्कृष्ट एवं जघन्य आयु कितनी है?

उत्तर स्वर्गों में देवांगनाओं की जघन्य आयु कुछ कम एक पल्य एवं उत्कृष्ट आयु पचपन पल्य प्रमाण होती है।

प्र.891 घातायुष्क किसे कहते हैं? और वह कहाँ तक होता है?

उत्तर जो देव अधिक स्थिति बाँधकर पश्चात् संक्लेश परिणामों के निमित्त अध:स्तन स्वर्गों में उत्पन्न होते हैं, उनके इस उत्पन्न होने को घातायुष्क कहते हैं। ऐसे देवों की उत्पत्ति शतार-सहस्रार स्वर्गों तक ही होती है। आगे के स्वर्गों में उनकी उत्पत्ति नहीं होती, इस कारण आयु के साथ कुछ अधिक का संबंध शतार-सहस्रार स्वर्ग तक ही होता है।

प्र.892 देवों में घातायुष्क की व्यवस्था का उदाहरण किस तरह घटित होता है?

उत्तर मान लीजिए किसी मनुष्य ने अपनी संयम अवस्था में अच्युत कल्प में 22 सागरोपम प्रमाण आयु का बंध किया। पश्चात् संयम की विराधना और बाँधी हुई आयु की अपवर्तना कर असंयत सम्यग्दृष्टि हो गया। पश्चात् मरण कर यदि सहस्रार कल्प में उत्पन्न हुआ तो वहाँ की साधारण आयु; जो अठारह सागरोपम ही है, उससे घातायुष्क संबंधी देव की आयु अंतर्मुहूर्त्त कम अर्द्धसागर अधिक होगी। यदि वही पुरुष संयम की विराधना के साथ ही सम्यक्त्व की विराधना कर मिथ्यादृष्टि हो जाता है और पश्चात् मरण कर उसी सहस्रार कल्प में उत्पन्न होता है तो उसकी आयु वहाँ की निश्चित अठारह सागर की आयु से पल्य के असंख्यातवें भाग से अधिक होगी। ऐसे जीव को घातायुष्क मिथ्यादृष्टि कहते हैं। (क.दी.भाग-3)

प्र.893 कौन-से जीव वैमानिक देवों में कहाँ तक उत्पन्न हो सकते हैं?

उत्तर असंयत सम्यग्दृष्टि और देशसंयमी मनुष्य और तिर्यंच सोलहवें स्वर्ग तक उत्पन्न हो सकते हैं। जो मुनि द्रव्य से (शारीरिक बाहरी मुद्रा से) निर्ग्रन्थ अवस्था के धारक हैं और भाव से वे मिथ्यादृष्टि हुये

हों अथवा वे मुनि असंयत सम्यग्दृष्टि हुये हों अथवा वे मुनि देशसंयमी हुये हों अर्थात् उन मुनि का गुणस्थान पहला या चौथा या पंचम हो गया है ऐसे वे मुनि अंतिम ग्रैवेयक पर्यन्त उत्पन्न हो सकते हैं। सम्यग्दृष्टि महाव्रती मुनि सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त उत्पन्न हो सकते हैं। सम्यग्दृष्टि भोगभूमिज मनुष्य व तिर्यञ्च सौधर्म-ऐशान स्वर्ग पर्यन्त उत्पन्न हो सकते हैं और मिथ्यादृष्टि भोगभूमिज मनुष्य व तिर्यञ्च एवं तापसी (अन्यमती) साधु उत्कृष्टता से भवनत्रिक पर्यन्त ही उत्पन्न हो सकते हैं। चरक और परिव्राजक संन्यासी ब्रह्म कल्प (स्वर्ग) पर्यन्त और आजीवक साधु अच्युत कल्प तक उत्पन्न हो सकते हैं। अर्थात् अन्य लिंगियों का (जैन मत से भिन्न भेषधारियों का) उत्पाद सोलहवें स्वर्ग से आगे नहीं होता तथा स्त्रियों का उत्पाद भी सोलहवें स्वर्ग तक ही हो सकता है।

प्र.८९४ वैमानिक देवों की सामर्थ्य (शक्ति) कितनी होती है?

उत्तर वैमानिक देवों में एक पल्योपम प्रमाण आयु वाला देव पृथ्वी के छः खण्डों को उखाड़ने में, उनमें स्थित मनुष्यों-तिर्यञ्चों का हनन और पोषण करने में समर्थ होता है। और सागरोपम प्रमाण काल पर्यन्त जीवित रहने वाला देव जम्बूद्वीप को पलटने और उसमें स्थित मनुष्य और तिर्यञ्चों का हनन और पोषण करने में समर्थ होता है।

प्र.८९५ देवगति के किन देवों का जन्म तिर्यञ्चों की एकेन्द्रिय पर्याय में हो सकता है?

उत्तर देवगति के ईशान स्वर्ग पर्यन्त देवों का जन्म एकेन्द्रिय पर्याय में हो सकता है।

प्र.८९६ देवगति के कौन-से देव संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याय में ही उत्पन्न होते हैं?

उत्तर देवगति के सानतकुमार स्वर्ग से लेकर सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त के देव संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य व तिर्यञ्च ही होते हैं।

प्र.८९७ तिर्यञ्च पर्याय में कौन-से देव उत्पन्न नहीं होते हैं?

उत्तर तिर्यञ्च पर्याय में तेरहवे स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त देव उत्पन्न नहीं होते हैं। अर्थात् वे शुक्ल लेश्या के साथ मनुष्य में ही उत्पन्न होते हैं।

प्र.८९८ देवगति के देव क्या भोगभूमि में उत्पन्न हो सकते हैं?

उत्तर नहीं! देवगति के देव मरण कर भोगभूमि में उत्पन्न नहीं हो सकते हैं।

प्र.८९९ सर्वार्थसिद्धि विमान से ईषत् प्राग्भार पृथ्वी (सिद्धशिला) कितने ऊपर स्थित है?

उत्तर सर्वार्थसिद्धि के इन्द्रक विमान के ध्वजदण्ड से बारह योजन प्रमाण ऊपर जाकर कोई ईषत् प्राग्भार नामक आठवीं पृथ्वी अवस्थित है।

प्र.९०० इषत् प्राग्भार नामक पृथ्वी से कितने ऊपर जाकर सिद्धों का निवास है?

उत्तर ईषत् प्राग्भार नामक पृथ्वी से ऊपर सात हजार पचास धनुष जाकर सिद्धों का निवास है। अर्थात् अष्टम पृथ्वी से ऊपर लोक के अन्त में चार हजार धनुष मोटा घनोदधि वातवलय है, दो हजार धनुष मोटा घनवातवलय है, और १५७५ धनुष मोटा तनुवातवलय है। सिद्ध परमेष्ठी तनुवातवलय में रहते हैं, इनकी उत्कृष्ट अवगाहना ५२५ धनुष है। वातवलयों के प्रमाण से उत्कृष्ट अवगाहना घटा देने पर

अष्टम पृथ्वी से कितने योजन ऊपर सिद्धों का निवास है यह प्रमाण प्राप्त हो जाता है।

प्र.901 सिद्धों के निवास क्षेत्र के व्यास का प्रमाण कितना है?

उत्तर सिद्धों के निवास क्षेत्र के व्यास का प्रमाण मनुष्य लोक के समान पैंतालीस लाख योजन है।

प्र.902 सिद्धों की अवगाहना कितनी होती है?

उत्तर सिद्धों के आत्मप्रदेशों की अवगाहना अंतिम शरीर से किञ्चित् न्यून होकर पाँच सौ पच्चीस धनुष उत्कृष्ट, साढ़े तीन हाथ जघन्य और मध्यम अनेक प्रकार की अवगाहना यथायोग्य रूप से होती है।

प्र.903 सिद्धों का सुख कैसा और कितना अनुपम होता है?

उत्तर संसार में चक्रवर्तियों के सुख से भोगभूमि स्थित जीवों का सुख अनंतगुणा है। भोगभूमिज जीवों से धरणेन्द्र का सुख अनंतगुणा है। धरणेन्द्र से स्वर्गिज देवेन्द्रों का सुख अनंतगुणा है। स्वर्गिज देवेन्द्रों से अहमिन्द्र का सुख अनंतगुणा है। अहमिन्द्रों या इन सबके त्रिकालवर्ती सुख से भी सिद्धों का एक क्षण का सुख अनंतगुणा है अर्थात् उनके सुख की कोई तुलना या उपमा नहीं है वह अतिशय-अनुपम है।

प्र.904 सुख कितने प्रकार का होता है?

उत्तर सुख मुख्यत: दो प्रकार का होता है- एक अभ्युदय और एक मोक्ष।

प्र.905 अभ्युदय सुख किसे कहते हैं?

उत्तर स्वर्गिक या चक्रवर्ती आदि राजाओं के सुख को अभ्युदय का सुख कहते हैं।

प्र.906 मोक्ष सुख किसे कहते हैं?

उत्तर अतीन्द्रिय अनंत आत्मिक सुख को मोक्ष सुख कहते हैं।

प्र.907 संक्षेप और ओघ किसे कहते हैं?

उत्तर संक्षेप और ओघ यह गुणस्थान की संज्ञा (नाम) है।

प्र.908 गुणस्थान कैसे उत्पन्न होते हैं?

उत्तर गुणस्थान मोह तथा योग से उत्पन्न होते हैं।

प्र.909 विस्तार तथा आदेश किसे कहते हैं?

उत्तर विस्तार तथा आदेश ये मार्गणा की संज्ञा हैं।

प्र.910 मार्गणा कैसे उत्पन्न होती हैं?

उत्तर मार्गणा अपने-अपने योग्य कर्मों के उदय आदि से उत्पन्न होती हैं।

प्र.911 सामान्य और विशेष किसे कहते हैं?

उत्तर एक अपेक्षा से गुणस्थान की सामान्य और मार्गणा की विशेष संज्ञा है। (गुणस्थानों का वर्णन देखिये जै.सं.अ.-१८ पृ. १८१)

प्र.912 प्ररूपणा किसे कहते हैं?

उत्तर चौदह गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, मार्गणा और उपयोग का जिसमें प्ररूपण किया

जाये उसे बीस प्ररूपणा कहते हैं। [प्ररूपणाओं के साथ ध्यान, आश्रव, जाति और कुलकोटि को मिला देने से चौबीस ठाना कहलाते हैं। आश्रव एवं ध्यान का वर्णन आगे अनुयोगों में किया जावेगा।]

प्र.913 प्रथम गुणस्थान में कौन से भाव होते हैं?

उत्तर प्रथम गुणस्थान में (कर्म के उदय से होने वाले) औदयिक भाव होते हैं। (गो.जी.का.११)

प्र.914 द्वितीय गुणस्थान में कौन से भाव होते हैं?

उत्तर द्वितीय गुणस्थान में कर्म निरपेक्ष पारिणामिक भाव होते हैं।

प्र.915 मिश्र गुणस्थान में कौन से भाव होते हैं?

उत्तर मिश्र गुणस्थान में कर्म के क्षयोपशम से होने वाले क्षायोपशमिक भाव होते हैं।

प्र.916 चतुर्थ गुणस्थान में कौन-से भाव होते हैं?

उत्तर चतुर्थ गुणस्थान में कर्म के उपशम से होने वाले औपशमिक, कर्म के क्षय से होने वाले क्षायिक और कर्म के क्षयोपशम से होने वाले क्षायोपशमिक इस प्रकार ये तीन भाव होते हैं।

प्र.917 कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाले देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत इन गुणस्थानों में कौन से भाव होते हैं?

उत्तर इन तीनों गुणस्थानों में चारित्रमोहनीय की अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव होते हैं।

प्र.918 अप्रमत्त विरत से ऊपर अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय और उपशांत मोह इन गुणस्थानों में कौन से भाव होते हैं?

उत्तर इन 8 वें, 9 वें, 10 वें और 11 वें गुणस्थानों में (उपशम श्रेणी में) चारित्र मोहनीय कर्म के उपशम की अपेक्षा औपशमिक भाव ही होते हैं।

प्र.919 अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय और क्षीणमोह इन गुणस्थानों में कौन-से भाव होते हैं?

उत्तर इन चार गुणस्थानों में (क्षपक श्रेणी में) चारित्र मोहनीय के क्षय की अपेक्षा क्षायिक भाव होते हैं।

प्र.920 सयोगकेवली, अयोग केवली और सिद्धों की अपेक्षा कौन-से भाव होते हैं?

उत्तर इन अवस्थाओं में कर्मक्षय की अपेक्षा क्षायिक भाव होते हैं।

प्र.921 गुणस्थानों में औदयिक भाव कहाँ तक पाये जाते हैं?

उत्तर गुणस्थानों में कर्म-उदय की अपेक्षा औदयिक भाव प्रथम गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक पाये जाते हैं।

प्र.922 गुणस्थानों में क्षायोपशमिक भाव कहाँ तक पाये जाते हैं?

उत्तर गुणस्थानों में कर्म-क्षयोपशम की अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव प्रथम गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक पाये जाते हैं।

प्र.923 गुणस्थानों में क्षायिक भाव कहाँ तक पाये जाते हैं?

उत्तर गुणस्थानों में कर्म-क्षय की अपेक्षा क्षायिक भाव चतुर्थ गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक तथा गुणस्थानीत सिद्धों में भी पाये जाते हैं।

प्र.924 गुणस्थानों में औपशमिक भाव कहाँ तक पाये जाते हैं?

उत्तर गुणस्थानों में कर्म उपशम की अपेक्षा औपशमिक भाव चतुर्थ गुणस्थान से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक पाये जाते हैं।

प्र.925 गुणस्थानों में पारिणामिक भाव कहाँ तक पाये जाते हैं?

उत्तर गुणस्थानों में कर्मनिरपेक्ष पारिणामिक भावों में से जीवत्व और अभव्यत्व भाव मात्र प्रथम गुणस्थान तक, जीवत्व और भव्यत्व भाव चौदहवें गुणस्थान तक पाये जाते हैं।

प्र.926 सिद्धों में कौन-सा पारिणामिक भाव पाया जाता है?

उत्तर सिद्धों में कर्म-निरपेक्ष पारिणामिक भावों में से मात्र, जीवत्व-भाव पाया जाता है। (गो.क.का.गा. ८२१)

प्र.927 किसी मत में सिद्धों के जीवत्व भाव क्यों नहीं माना गया? और आगम से कैसे माना गया है?

उत्तर किसी मत से द्रव्य रूप दस प्राणों के अभाव में सिद्धों के जीवत्व भाव को स्वीकार नहीं किया गया है परंतु आगम में सिद्धों के ज्ञान-दर्शन रूप भाव प्राणों का सद्भाव होने से जीवत्व रूप पारिणामिक भाव को स्वीकार किया गया है। अर्थात् मुख्य नय से भी सिद्ध भगवान जीव हैं। इसमें कोई दोष नहीं है, क्योंकि ज्ञान-दर्शन रूप भाव प्राणों का अनुभव करने से वर्तमान में भी जीवत्व से युक्त हैं।

प्र.928 मिथ्यादृष्टि जीव के श्रद्धान में विपरीतता किस तरह की होती है?

उत्तर मिथ्यादृष्टि जीव समीचीन गुरुओं के पूर्वापर विरोधादि दोषों से रहित और हित के करने वाले वचनों का भी यथार्थ श्रद्धान नहीं करता। किन्तु इसके विपरीत आचार्याभासों (मिथ्या आचार्यों) के द्वारा उपदष्टि या अनुपदिष्ट असद्भाव का अर्थात् पदार्थ के विपरीत स्वरूप का इच्छानुसार श्रद्धान करता है। (गो.सा.जी.का.गा.१८)

प्र.929 मिथ्यादृष्टि के कितने भेद हैं?

उत्तर मिथ्यादृष्टि के दो भेद हैं। 1. स्वस्थान मिथ्यादृष्टि 2. सातिशय मिथ्यादृष्टि। जो जीव मिथ्यात्व में लवलीन है उसे स्वस्थान मिथ्यादृष्टि कहते हैं। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के सम्मुख जीव के जो अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रूप परिणाम होते हैं उससे युक्त जीव को सातिशय मिथ्यादृष्टि कहते हैं। (क.दी.भा-१)

प्र.930 अधःकरण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रूप परिणाम किस तरह के होते हैं?

उत्तर जहाँ सम-समयवर्ती जीवों के परिणाम भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणामों से समान और असमान दोनों तरह के हों उसे अधःप्रवृत्तकरण, जहाँ सम-समयवर्ती जीवों के परिणाम समान और असमान दोनों तरह के और भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम असमान ही हों उसे अपूर्वकरण तथा जहाँ एक समयवर्ती अनेक जीवों के परिणामों में (विशुद्धि की अपेक्षा) निवृत्ति-भेद नहीं पाया जावे, परन्तु

भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणामों में सर्वथा भेद ही पाया जावे उसे अनिवृत्तिकरण जानना चाहिए।

प्र.931 जीव को सासादन गुणस्थान कब प्राप्त होता है?

उत्तर प्रथमोपशम सम्यक्त्व अथवा द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के अंतमुहूर्त्त मात्र काल में से जब जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट छ: आवली प्रमाण काल शेष रहे, उतने काल में अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ में से किसी के भी उदय में आने से सम्यक्त्व की विराधना होने पर सम्यग्दर्शन की जो अव्यक्त अतत्व-श्रद्धान रूप परिणति होती है, उसे सासादन गुणस्थान कहते हैं। अथवा अनंतानुबंधी कषाय में से किसी एक का उदय आने पर सम्यक्त्व परिणामों के छूटने पर और मिथ्यात्व प्रकृति का उदय न होने से, मिथ्यात्व परिणाम न होने पर मध्य के काल में जो परिणाम होते हैं उसे सासादान गुणस्थान कहते हैं।(क.दी.भा-१)

प्र.932 चारित्रमोहनीय के भेद रूप अनन्तानुबन्धी कषाय सम्यक्त्व का घात कैसे करती है?

उत्तर अनन्तानुबन्धी कषाय में सम्यक्त्व और चारित्र दोनों के घात करने का स्वभाव है अर्थात् वह द्वि-स्वभाव वाली है। यह कषाय सम्यक्त्व का घात भी करती है और अप्रत्याखनावरणादि कषायों का अनन्त प्रवाह भी बनाये रखती है, इस तरह अनन्तानुबन्धी कषाय का द्विस्वभावपना सिद्ध होने से सासादान गुणस्थान की पृथक् सिद्धि होती है।

प्र.933 सम्यग्मिथ्यात्व (मिश्र) गुणस्थानवर्ती जीव द्वारा प्राप्ति के अयोग्य स्थान कौन-से हैं?

उत्तर मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव सकलसंयम या देशसंयम को धारण नहीं कर सकता। मिश्र गुणस्थान में नवीन आयु का बंध नहीं होता तथा मिश्र गुणस्थानवर्ती का मारणान्तिक समुद्घात और मरण भी नहीं होता है।

प्र.935 असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में श्रद्धान की अपेक्षा क्या विशेषता है?

उत्तर सम्यग्दृष्टि जीव आचार्यों के द्वारा उपदिष्ट प्रवचन का श्रद्धान करता है किन्तु स्वयं के अज्ञानवश गुरु के उपदेश से, विपरीत अर्थ का भी श्रद्धान कर लेता है, तो भी वह सम्यग्दृष्टि ही है।

सूत्र के आश्रय से आचार्यादि के द्वारा आगम दिखाकर समीचीन पदार्थ के समझाने पर भी यदि वह जीव पूर्व में अज्ञान से किये हुए अतत्त्व श्रद्धान को न छोड़े तो वह जीव उसी काल से मिथ्यादृष्टि कहा जाता है।(गो.सा.जी.का.गा.२७, २८)

प्र.935 क्षायोपशमिक या वेदक सम्यग्दर्शन के प्रकरण में जो उदयाभावीक्षय कहा जाता है, उसका अर्थ क्या है?

उत्तर उदयाभावी क्षय का अर्थ है कि बिना फल दिये ही सर्वघाति (अनन्तानुबंधी चतुष्क, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व) प्रकृतियों के वर्तमान निषेकों की बिना फल दिये ही निर्जरा होना है।

प्र.936 प्रमाद के पन्द्रह भेद कौन-से होते हैं?

उत्तर चार विकथाएँ-स्त्रीकथा, भक्त (भोजन) कथा, राष्ट्रकथा, अवनिपाल (राजा) कथा। चारकषाएँ-क्रोध, मान, माया, लोभ। पंचइन्द्रिय-स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र। एक निद्रा (पांच निद्राओं में

से कोई एक)। एक प्रणय (स्नेह) इस तरह कुल पन्द्रह- प्रमाद होते हैं।

प्र.937 अप्रमत्तविरत गुणस्थान के कितने भेद हैं?

उत्तर अप्रमत्तविरत गुणस्थान के स्वस्थान अप्रमत्त और सातिशय अप्रमत्त रूप दो भेद होते हैं।

प्र.938 स्वस्थान अप्रमत्त किसे कहते हैं?

उत्तर जो प्रमाद रहित साधु धर्म-ध्यान में लवलीन (षट्-आवश्यक आदि मूलगुणों एवं स्वाध्याय-तत्त्वचिंतवनादि में तत्पर) रहते हैं उन्हें स्वस्थान अप्रमत्त विरत गुणस्थानवर्ती कहते हैं।

प्र.939 सातिशय अप्रमत्त किसे कहते हैं?

उत्तर जो अप्रमत्तविरत उपशमश्रेणी अथवा क्षपक श्रेणी चढ़ने के अभिमुख होता हुआ चारित्र मोह की इक्कीस प्रकृतियों का उपशम या क्षय करने में निमित्तभूत तीन करणों में सर्व प्रथम अधःकरण परिणाम को करता है वह साधु; सातिशय अप्रमत्तवर्ती गुणस्थान वाला कहलाता है।

प्र.940 श्रेणी चढ़ने वाला पात्र कौन होता है?

उत्तर सातवें गुणस्थानवर्ती क्षायिक सम्यग्दृष्टि और द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि ही श्रेणी चढ़ सकते हैं।

प्र.941 कौन-से सम्यग्दृष्टि कौन-सी श्रेणी चढ़ सकते हैं और कौन-से सम्यग्दृष्टि श्रेणी नहीं चढ़ सकते हैं?

उत्तर क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशमश्रेणी भी चढ़ सकता है और क्षपक श्रेणी भी चढ़ सकता है किन्तु द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि केवल उपशम श्रेणी ही चढ़ सकता है, क्षपक श्रेणी नहीं चढ़ सकता तथा प्रथमोपशम सम्यग्दृष्टि और क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि श्रेणी नहीं चढ़ सकते हैं।

प्र.942 पुनः प्रथमोपशम सम्यक्त्व अथवा क्षायोपशमिक सम्यक्त्व वाला जीव किस विधि से श्रेणी चढ़ने का पात्र बन सकता है?

उत्तर सर्व प्रथम; प्रथमोपशम सम्यक्त्व वाला प्रथमोपशम सम्यक्त्व को छोड़कर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व को ग्रहण करे। फिर अधःकरण; अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रूप परिणामों के द्वारा पहले अनन्तानुबन्धी कषाय का विसंयोजन करे और अन्तर्मुहूर्त्तकाल तक विश्राम लेकर पुनः अधःकरण आदि रूप परिणामों के द्वारा या तो दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों का उपशम करके द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि हो जाये या उनका क्षय करके क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो जाये। तब श्रेणी चढ़ने का पात्र हो सकता है।

प्र.943 विसंयोजन किसे कहते हैं?

उत्तर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ के कर्म परमाणुओं को अन्य बारह और नोकषाय रूप परिणमाने (बदलने) को विसंयोजन कहते हैं।

प्र.944 मुनिराज द्वारा उपशमश्रेणी अधिक से अधिक कितनी बार प्राप्त की जा सकती है?

उत्तर मुनिराज द्वारा उपशम श्रेणी अधिक से अधिक चार बार प्राप्त की जा सकती है, परन्तु एक भव में दो बार ही प्राप्त की जाती है। पाँचवी बार नियम से मोक्ष प्राप्त करने वाली क्षपक श्रेणी ही होती है।

प्र.945 भव्यात्माओं के अपूर्वकरण परिणामों द्वारा कौन-कौन-से आवश्यक कार्य होते हैं?

उत्तर भव्यात्माओं के अपूर्वकरण परिणामों द्वारा चार आवश्यक कार्य होते हैं। प्रथम गुणश्रेणी निर्जरा, द्वितीय गुणसंक्रमण, तृतीय स्थिति खण्डन और चतुर्थ अनुभाग खण्डन ये चारों ही कार्य पूर्वबद्ध कर्मों में होते हैं। इन परिणामों के द्वारा जीव मोहनीय कर्म की इक्कीस प्रकृतियों का क्षपण, उपशमन करने के लिए उद्यत होते हैं।

प्र.946 गुणश्रेणी निर्जरा का स्वरूप क्या है?

उत्तर जीवों के गुणित रूप से उत्तरोत्तर समयों में कर्म परमाणुओं का झरना (निर्जरित होना) गुणश्रेणी निर्जरा कहलाती है। जैसे किसी जीव के पहले समय में दस कर्म परमाणु उदय में आये, फिर दूसरे समय में दस × असंख्यात परमाणु उदय में आये इसी तरह तीसरे, चौथे आदि समयों में लगातार असंख्यातगुणे असंख्यातगुणे कर्मपरमाणुओं का उदय में आना गुणश्रेणी निर्जरा है।

प्र.947 चतुर्थ गुणस्थान में क्या निरन्तर असंख्यात गुणी निर्जरा होती है?

उत्तर नहीं, चतुर्थ असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में असंख्यात गुणी निर्जरा कदापि नहीं होती, बल्कि कहते हैं कि करणलब्धि के काल मात्र में असंख्यात गुणी निर्जरा होती है।

प्र.948 असंख्यात गुणी निर्जरा का प्रारम्भ कौन-से स्थान से होता है?

उत्तर असंख्यात गुणी निर्जरा का प्रारम्भ संयम (व्रत) से होता है। सिद्धांत ग्रन्थों के अनुसार पंचम गुणस्थान (देशसंयत स्थान) से निरन्तर गुण-श्रेणी रूप असंख्यातगुणी निर्जरा प्रारम्भ होती है। (धवल पु.८/८३, ज.ध.पु.१२)

प्र.949 गुणसंक्रमण किसे कहते हैं?

उत्तर जहाँ पर प्रति समय असंख्यात गुणश्रेणीक्रम से परमाणु प्रदेश अन्य प्रकृति रूप परिणमें, उसे गुणसंक्रमण कहते हैं।

प्र.950 स्थितिखण्डन किसे कहते हैं?

उत्तर कर्मों की स्थिति के उपरिम अंश, खण्ड या पोरों को खरोंचकर नष्ट कर देने को स्थिति-खण्डन या स्थिति काण्डकघात कहते हैं।

प्र.951 अनुभाग खण्डन किसे कहते हैं?

उत्तर कर्मों के अनुभाग के उपरिम अंश, खण्ड या पोरों को खरोंचकर नष्ट कर देने को अनुभाग खण्डन या अनुभाग काण्डकघात कहते हैं।

प्र.952 स्थितिखण्डन या अनुभाग खण्डन से जीवों को क्या लाभ है?

उत्तर विशुद्ध परिणामों द्वारा स्थिति खण्डन या अनुभाग खण्डन करने से जीवों का स्थिति सत्त्व व अनुभाग सत्त्व हीन हो जाता है।

प्र.953 पूर्व स्पर्धक किन्हें कहते हैं?

उत्तर जो स्पर्धक अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के पूर्व में पाये जाते हैं, उनको पूर्व स्पर्धक कहते हैं।

प्र.954 अपूर्वस्पर्धक किन्हें कहते हैं?

उत्तर अनिवृत्तिकरण रूप परिणामों के निमित्त से जिनका अनुभाग अनन्तगुणा क्षीण कर दिया जाता है उनको अपूर्व स्पर्धक कहते हैं।

प्र.955 बादरकृष्टि किन्हें कहते हैं?

उत्तर जिनका अनुभाग अपूर्वस्पर्धक से भी अनन्तगुणा क्षीण हो जाता है उनको बादरकृष्टि कहते हैं।

प्र.956 सूक्ष्मकृष्टि किन्हें कहते हैं?

उत्तर जिनका अनुभाग बादरकृष्टि से भी अनन्तगुणा क्षीण हो जाता है उनको सूक्ष्मकृष्टि कहते हैं। (ये सभी कार्य नवम गुणस्थान में होते हैं।)

प्र.957 अनुभाग किसे कहते हैं?

उत्तर कर्मों के फल देने की शक्ति को अनुभाग कहते हैं।

प्र.958 अविभाग प्रतिच्छेद किसे कहते हैं?

उत्तर अनुभाग शक्ति के सबसे छोटे अंश को अविभाग प्रतिच्छेद कहते हैं।

प्र.959 समय प्रबद्ध किसे कहते हैं?

उत्तर संसारावस्था में प्रतिसमय बँधने वाले कर्म या नोकर्म के समस्त परमाणुओं के समूह को समयप्रबद्ध कहते हैं।

प्र.960 वर्ग किसे कहते हैं?

उत्तर विवक्षित समयप्रबद्ध में सबसे कम अनुभाग शक्ति के अंश अर्थात् अविभाग प्रतिच्छेद जिस परमाणु में पाये जाते हैं, उसे वर्ग कहते हैं।

प्र.961 वर्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर समान संख्या वाले अविभाग प्रतिच्छेद जिनमें पाये जायें, उन सब वर्गों के समूह को वर्गणा कहते हैं।

प्र.962 स्पर्धक किसे कहते हैं?

उत्तर जिनमें अविभागी प्रतिच्छेदों की समान वृद्धि पायी जाये उन वर्गणाओं के समूह को स्पर्धक कहते हैं।

प्र.963 उपशान्त-कषाय और क्षीणकषाय गुणस्थान में क्या अन्तर है?

उत्तर उपशान्त-कषाय जीव के यद्यपि मोह का उदय नहीं है फिर भी मोहनीय कर्म की सत्ता है किन्तु क्षीणकषाय जीव के मोहनीय कर्म का उदय भी नहीं है और अस्तित्व भी नहीं है। फिर भी दोनों के ही परिणामों में कषायों का अभाव है अतः दोनों के यथाख्यात चारित्र होता है और दोनों ही बाह्य और अभ्यन्तर परिग्रहों से रहित होने के कारण निर्ग्रन्थ कहे जाते हैं।

प्र.964 तेरहवें गुणस्थान में केवली भगवान को कौन-सी नव लब्धियों का अपूर्व लाभ होता है?

उत्तर केवली भगवान को क्षायिक-सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक-ज्ञान, क्षायिक-दर्शन, क्षायिक-दान, क्षायिक-लाभ, क्षायिक-भोग, क्षायिक-उपभोग और क्षायिक-वीर्य (शक्ति) इन नव लब्धियों का अपूर्व लाभ प्राप्त होता है।

प्र.965 गुणस्थानों में संसारी जीव किस क्रम-रीति से चढ़ता-उतरता है?

उत्तर 1. अनादि मिथ्यादृष्टि जीव करणलब्धि के प्रभाव से सम्यक्त्वघातक प्रकृतियों के उपशम से असंयत सम्यग्दृष्टि नामक चतुर्थ गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

2. सादि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से चतुर्थ गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

3. सादि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से मिश्र नामक तीसरे गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

4. सादि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्व एवं पाँच पापों के एकदेश त्याग रूप परिणामों से देशविरत नामक गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

5. सादि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्व एवं प्रत्याख्यानावरण चतुष्क के अनुदय से होने वाले चारित्र रूप परिणाम से अप्रमत्तविरत नामक सप्तम गुणस्थान को प्राप्त करते हैं।

(तात्पर्य यह है कि मिथ्यादृष्टि जीव सीधे सासादन और प्रमत्तविरत गुणस्थानों को प्राप्त नहीं करते हैं।)

6. सासादन गुणस्थानवर्ती जीव ऊपर सम्बन्धी किसी भी गुणस्थान को प्राप्त नहीं होते बल्कि नियम से मिथ्यात्व गुणस्थान को ही प्राप्त करते हैं।

7. मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव सम्यक्त्व-प्रकृति के उदय से चतुर्थ गुणस्थान को प्राप्त होते हैं अथवा मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

8. अविरत सम्यक्त्व गुणस्थानवर्ती उपशम सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्व प्रकृति के उदय से वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं।

9. वेदक सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना और दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियों का अर्थात् सप्त प्रकृतियों का क्षय होने पर क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं।

10. चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क के अनुदय से पंचम गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

11. चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव प्रत्याख्यानावरण चतुष्क के अनुदय से सप्तम गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

12. चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव मिश्र प्रकृति के उदय से तीसरे गुणस्थान को, अनन्तानुबन्धी के उदय से दूसरे गुणस्थान को और मिथ्यात्व के उदय से प्रथम गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

13. पंचम गुणस्थानवर्ती जीव प्रत्याख्यानावरण चतुष्क के अनुदय से सप्तम गुणस्थान को प्राप्त करते हैं। इस गुणस्थानवर्ती जीव अविशुद्धि के योग से नीचे के चारों गुणस्थानों को भी प्राप्त हो सकते हैं।

14. षष्ठ-गुणस्थानवर्ती जीव नीचे के पाँचों गुणस्थानों को प्राप्त होते हैं।

15. षष्ठ-गुणस्थानवर्ती जीव अप्रमत्तविरत गुणस्थान पर्यन्त जाते हैं, उससे ऊपर नहीं जाते हैं।

16. सप्तम गुणस्थानवर्ती जीव अपूर्वकरण को, छठे गुणस्थान को और मरण की अपेक्षा देवगति

सम्बन्धी चतुर्थ गुणस्थान को (इस तरह तीन गुणस्थानों) को प्राप्त होते हैं। उपशम श्रेणी वाले आठवें नौवें एवं दसवें गुणस्थानवर्ती जीव चढ़ने की अपेक्षा अनन्तर ऊपर के ग्यारहवें गुणस्थान तक, गिरने की अपेक्षा अनन्तर नीचे (दसवें आदि) और मरण की अपेक्षा देवगति सम्बन्धी चतुर्थ गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

17. ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीव गिरने की अपेक्षा दसवें आदि निचले और मरण की अपेक्षा चौथे गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

18. क्षपकश्रेणी वाले जीव आठवें और नौवें गुणस्थानवर्ती जीव चढ़ने की अपेक्षा अनन्तर ऊपर के दसवें गुणस्थान को प्राप्त होते हैं।

19. क्षपक क्षेणी वाले जीव दसवें गुणस्थानवर्ती जीव नियम से बारहवें गुणस्थानों को प्राप्त होते हैं और वहाँ से क्रम से आगे के गुणस्थानों को प्राप्त होते हुए मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

प्र.966 मरण किन गुणस्थानों में होता है?

उत्तर तृतीय गुणस्थान तथा क्षपकश्रेणी के चारों गुणस्थान और तेरहवें गुणस्थान को छोड़कर शेष गुणस्थानों में मरण होता है।

प्र.967 किस गुणस्थान में मरणकर जीव, किस गति को प्राप्त होता है?

उत्तर प्रथम और चतुर्थ गुणस्थान से मरणकर जीव चारों गतियों में से किसी भी गति में जा सकता है। सासादन गुणस्थान में मरणकर जीव नरक गति में नहीं जाता। चौदहवें गुणस्थान से निर्वाण होता है (अर्थात् पण्डित-पण्डित मरण होता है) और शेष सात गुणस्थानों से मरण कर जीव नियम से देवगति में जन्म लेता है।

प्र.968 किन-किन अवस्थाओं में जीव मरण को प्राप्त नहीं होते हैं?

उत्तर 1. मिश्र गुणस्थान वाले जीव मरण को प्राप्त नहीं होते हैं।

2. निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्था को धारण करने वाले मिश्रकाययोगी जीव मरण को प्राप्त नहीं होते हैं।

3. क्षपकश्रेणी सम्बन्धी आठवें, नौवें, दसवें एवं बारहवें गुणस्थानवर्ती जीव मरण को प्राप्त नहीं होते।

4. उपशम श्रेणी चढ़ते हुए जीव अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग वाले (जब तक निद्रा और प्रचला की बन्ध-व्युच्छित्ति नहीं होती है) मरण को प्राप्त नहीं होते हैं।

5. प्रथमोपशम सम्यक्त्व वाले जीव मरण को प्राप्त नहीं होते हैं।

6. तेरहवें गुणस्थान वाले जीव (केवली) मरण को प्राप्त नहीं होते हैं।

7. सातवें नरक के द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ गुणस्थान वाले जीव मरण को प्राप्त नहीं होते हैं।

8. अनन्तानुबन्धी कषाय की विसंयोजना करके मिथ्यात्व को प्राप्त होने वाले जीव अन्तर्मुहूर्त्त तक मरण को प्राप्त नहीं होते हैं।

9. क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के सम्मुख जीव जब तक मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्क का क्षय नहीं कर देता है अर्थात् जब तक कृतकृत्यता (या कृतकृत्य वेदकता)

रहती है तब तक मरण को प्राप्त नहीं होते हैं। (जयधवला पु.२, २१५ से २२०)

१०. सिद्ध जीव सांसारिक जन्म मरण से रहित होते हैं। (गुणस्थान चार्ट देखिये जै.सं.अ.१८ पृ.१८६)

प्र.969 कौन-से मत से कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि का मरण होता है?

उत्तर लब्धिसार के मत से कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि का मरण होता है।

प्र.970 कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर कहाँ-कहाँ उत्पन्न नहीं होते हैं?

उत्तर कृतकृत्य वेदक सम्यक्त्व का काल अन्तर्मुहूर्त्त है, जिस काल के व्यतीत होते ही जीव क्षायिक सम्यग्दृष्टि बन ही जाता है। उस अन्तर्मुहूर्त्त के चार भागों में से प्रथम भाग में मरण प्राप्त जीव देवों में, दूसरे भाग में मरण प्राप्त जीव देवों और मनुष्यों में, तीसरे भाग में मरण प्राप्त जीव देव, मनुष्य और तिर्यञ्चों में तथा चौथे भाग में मरण प्राप्त जीव चारों गतियों में से किसी भी गति में उत्पन्न होते हैं।

प्र.971 चौदह गुणस्थानों में आयुकर्म को छोड़कर अन्य सातकर्मों की गुणश्रेणी निर्जरा (असंख्यात गुणी निर्जरा) किस प्रकार होती है?

उत्तर सम्यक्त्व उत्पत्ति काल अर्थात् सातिशय मिथ्यादृष्टि, श्रावक, विरत, अनन्तानुबन्धी कर्म का विसंयोजन करने वाला, दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय करने वाले, कषायों का उपशम करने वाले ८, ९, १०वें गुणस्थानवर्ती जीव, उपशान्त कषाय, कषायों का क्षपण करने वाले ८, ९, १० वें गुणस्थानवर्ती जीव, क्षीणमोह, सयोग केवली और अयोग केवली जिन, इन ग्यारह स्थानों में द्रव्य की अपेक्षा कर्मों की निर्जरा क्रम से असंख्यातगुणी असंख्यातगुणी (गुणश्रेणी) अधिक अधिक होती जाती है।

प्र.972 क्या आगे-आगे के गुणस्थानों में निर्जरा के समान निर्जरा का काल भी अधिक-अधिक है?

उत्तर नहीं, निर्जरा से निर्जरा होने का काल विपरीत है। क्रम से उत्तरोत्तर संख्यात गुणा-संख्यातगुणा हीन है।

प्र.973 अयोगकेवली गुणस्थान में केवली भगवान की क्या विशेषता है?

उत्तर जो अठारह हजार शीलों के स्वामी हैं, जिनके कर्मों के आश्रव का द्वार बंद हो गया है तथा सत्त्व और उदय रूप अवस्था को प्राप्त कर्म रूप रज की सर्वथा निर्जरा होने से जो उस कर्म से सर्वथा मुक्त होने के सम्मुख हैं, ऐसे योग रहित केवली; चौदहवें गुणस्थानवर्ती केवली भगवान होते हैं।

प्र.974 गुणस्थानातीत सिद्ध भगवान का स्वरूप कैसा है?

उत्तर जो ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों से रहित हैं, अनन्तसुख रूपी अमृत का अनुभव करने वाले शांतिमय हैं, नवीन कर्मबंध के कारणभूत मिथ्यादर्शनादि भाव कर्म रूपी अंजन से जो रहित हैं, जो नित्य हैं, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, अव्याबाध, अवगाहन, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघु ये आठ मुख्य गुण जिनके प्रकट हो चुके हैं, जो कृतकृत्य हैं अर्थात् जिनको कोई कार्य करना शेष नहीं है और जो लोक के अग्रभाग में निवास करने वाले हैं उसको सिद्ध भगवान कहते हैं।

अध्याय - 10. जीवसमास व मार्गणादि

प्र.975 जीवसमास किन्हें कहते हैं?

उत्तर जिनमें जीव तथा जीव के भेद-प्रभेद समाहित किये जाते हैं वे जीवसमास कहलाते हैं।

प्र.976 जीवसमास के मुख्यतः कितने भेद हैं?

उत्तर जीवसमास अनेक भेद वाले होते हुए भी मुख्यतः चौदह, उन्तीस, सत्तावन और अण्ठानवे भेदों से विशेष प्रचलित हैं।

प्र.977 जीवसमास के चौदह भेद कौन-से हैं?

उत्तर एकेन्द्रिय जीव के दो भेद-बादर और सूक्ष्म। विकलत्रय जीव के तीन भेद-द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय। पंचेन्द्रिय जीव के दो भेद- सैनी और असैनी। इस प्रकार इन सातों भेदों के पर्याप्त और अपर्याप्त की अपेक्षा दो-दो भेद और करने पर जीवसमास के चौदह भेद कहे जाते हैं।

प्र.978 जीवसमास के उन्नीस भेद कौन-से हैं?

उत्तर स्थावर के पृथिवी, जल, अग्नि और वायु कायिक एवं नित्य निगोद तथा इतरनिगोद इन छह प्रकार के जीवों के बादर और सूक्ष्म की अपेक्षा दो-दो भेद, प्रत्येक वनस्पति के सप्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित की अपेक्षा दो भेद इस प्रकार एकेन्द्रिय जीव के चौदह भेद हुए। उनमें त्रस सम्बन्धी द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सैनी और असैनी पंचेन्द्रिय के पाँच भेद मिलाने पर जीवसमास के उन्नीस भेद कहे जाते हैं।

प्र.979 जीवसमास के सत्तावन भेद कौन-से हैं?

उत्तर उपर्युक्त उन्नीस जीवसमासों के पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा तीन-तीन भेद गिनने पर सभी सत्तावन जीवसमास होते हैं।

प्र.980 जीवसमास के अण्ठानवे भेद कौन-से हैं?

उत्तर जीवों के एकेन्द्रिय के उपर्युक्त 14 भेदों के पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा तीन-तीन भेद हैं, अतः एकेन्द्रिय सम्बन्धी $14 \times 3 = 42$ भेद होते हैं।

विकलत्रय के पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा तीन-तीन भेद हैं, अतः विकलत्रय के $3 \times 3 = 9$ भेद होते हैं। कर्मभूमिज पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के संज्ञी और असंज्ञी की अपेक्षा दो भेद हैं। इन दोनों के जलचर, थलचर और नभचर की अपेक्षा तीन-तीन भेद होने से छः भेद होते हैं। ये ही छः प्रकार के जीव गर्भजन्म और सम्मूर्च्छन जन्म की अपेक्षा दो प्रकार के होते हैं। गर्भ जन्म वाले छः प्रकार के जीवों के पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त की अपेक्षा दो-दो भेद हैं अतः $6 \times 2 = 12$ भेद होते हैं। सम्मूर्च्छन जन्म वाले छह प्रकार के जीवों के पर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा तीन-तीन भेद अतः $6 \times 3 = 18$ भेद होते हैं।

इस तरह कर्मभूमिज तिर्यंचों के $12 + 18 = 30$ भेद होते हैं। भोगभूमिज पंचेन्द्रिय तिर्यंचों और

निर्वृत्यपर्याप्त की अपेक्षा दो-दो भेद हैं अत: $2 \times 2 = 4$ भेद होते हैं।

आर्यखण्ड के मनुष्यों के पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा तीन भेद होते हैं।

म्लेच्छखण्ड के मनुष्य के पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त की अपेक्षा दो भेद होते हैं।

भोगभूमिज और और कुभोगभूमिज मनुष्य के पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त की अपेक्षा दो-दो भेद हैं।

देव और नारकियों के पर्याप्त और निर्वृत्यपर्याप्त की अपेक्षा दो-दो भेद होते हैं।

इस प्रकार तिर्यंचों के $42 + 5 + 12 + 18 + 4 = 85$ भेद, मनुष्यों के $3 + 2 + 4 = 9$ भेद, देव में 2 भेद और नारकी में 2 भेद, ये सब मिलाकर जीवसमास के $85 + 9 + 4 = 98$ भेद होते हैं। (गो.सा.जी.का. गाथा ७०-८०/क.प्र.भा.१, पृ.१२-१३)

प्र.981 योनि किसे कहते हैं?

उत्तर जीवों के उत्पत्ति स्थान को योनि कहते हैं। (आकार योनि, गुणयोनि का वर्णन देखिये गो.सा.गाथा ८१ से ८९ तक)

प्र.982 गुणयोनि के चौरासी लाख भेद कौन से हैं?

उत्तर नित्य-निगोद, इतर-निगोद एवं पृथिवी, जल, अग्नि और वायुकायिक इन छह प्रकार के जीवों में से प्रत्येक की सात-सात लाख, प्रत्येक वनस्पति की दस लाख, विकलत्रयों में प्रत्येक की दो-दो लाख, देव-नारकी और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में प्रत्येक की चार-चार लाख और मनुष्यों की चौदह लाख- इस तरह सब मिलाकर जीवों के उत्पत्ति-स्थान रूप गुणयोनि के चौरासी लाख भेद आगम में बतलाये गये हैं।

प्र.983 कुल किसे कहते हैं?

उत्तर भिन्न-भिन्न शरीरों की उत्पत्ति में कारण भूत नोकर्म वर्गणा के भेदों को कुल कहते हैं।

प्र.984 आगम दृष्टि से किस जीव के कितने कुल होते हैं?

उत्तर विभिन्न जीवों के कुल-पृथिवीकायिक के २२ लाख कोटि, जलकायिक के ७ लाख कोटि, अग्निकायिक के ३ लाख कोटि, वायुकायिक के ७ लाख कोटि, वनस्पतिकायिक के २८ लाख कोटि, द्वीन्द्रिय के ७ लाख कोटि, त्रीन्द्रिय के ८ लाख कोटि, चतुरिन्द्रिय के ९ लाख कोटि, पंचेन्द्रिय जलचर के १२ १/२ लाख कोटि, पंचेन्द्रिय (छाती के सहारे चलने वाले) के ९ लाख कोटि, देव के २६ लाख कोटि, नारकी के २५ लाख कोटि और मनुष्य के १४ लाख कोटि।

प्र.985 समस्त संसारी जीवों के कुलों की संख्या का जोड़ कितना है?

उत्तर समस्त कुलों अथवा कुलकोटियों की संख्या का जोड़ एक कोड़ा-कोड़ी निन्यानवे लाख पचास हजार कोटि है। कहीं-कहीं मनुष्यों के कुलों की संख्या १२ लाख कोटि बतलायी गई है, अत: उनके मत से समस्त कुलों का परिमाण एक कोड़ा-कोड़ी सत्तानवे लाख पचास हजार कोटि जानना

चाहिए। (पर्याप्तियों का वर्णन देखें जैनागम संस्कार अ .१७, पृ.१७१)

प्र.986 लब्ध्यपर्याप्तक जीव एक अन्तर्मुहूर्त्त में अधिक-से-अधिक कितने भवधारण कर सकता है?

उत्तर एक लब्ध्यपर्याप्तक जीव यदि निरन्तर जन्म-मरण करे तो एक अन्तर्मुहूर्त्त में अधिक-से-अधिक ६६३३६ बार जन्म और उतने ही मरण कर सकता है। इन भवों में प्रत्येक भव का काल क्षुद्रभव प्रमाण है अर्थात् एक श्वास का अठारहवाँ भाग है।

प्र.987 एक अन्तर्मुहूर्त्त में कौन-कौन से लब्धपर्याप्तकों के कितने-कितने भव होते हैं?

उत्तर पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और साधारण वनस्पतिकायिक के बादर और सूक्ष्म तथा प्रत्येक वनस्पतिकायिक इन ग्यारह प्रकार के लब्ध्यपर्याप्तक जीवों में से प्रत्येक के ६०१२-६०१२ उत्कृष्ट भव की अपेक्षा एकेन्द्रियों के उत्कृष्ट भव ६०१२ × ११ = ६६१३२ भव होते हैं। द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट ८० भव, त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट ६० भव, चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट ४० भव, असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट ८ भव, संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चों लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट ८ भव और मनुष्य लब्ध्यपर्याप्तक के उत्कृष्ट ८ भव इस तरह सभी मिलाकर एक अन्तर्मुहूर्त्त काल में उत्कृष्ट भव ६६३३६ होते हैं।

प्र.988 लब्ध्यपर्याप्त, निर्वृत्यपर्याप्त और पर्याप्त अवस्था किन-किन गुणस्थानों में होती हैं।

उत्तर लब्ध्यपर्याप्त अवस्था मात्र मिथ्यात्व गुणस्थान में होती है। वह भी सम्मूर्च्छन जन्म से उत्पन्न होने वाले मनुष्यगति और तिर्यञ्चगति के जीवों के होती है, अन्य जीवों के नहीं।

निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था मिथ्यात्व, सासादनसम्यक्त्व, अविरतसम्यक्त्व, आहारक शरीर की अपेक्षा प्रमत्तविरत और सयोगकेवली जिन के समुद्घात के काल में कपाट, प्रतर और लोकपूरण अवस्था की अपेक्षा होती है।

पर्याप्त अवस्था सभी गुणस्थानों में होती है।

प्र.989 प्राण किसे कहते हैं?

उत्तर जिससे जीव की पहचान होती है उसे प्राण कहते हैं।

प्र.990 जीव की पहचान कौन-कौन से प्राणों से होती है?

उत्तर जीव की पहचान द्रव्य और भाव प्राणों से होती है।

प्र.991 द्रव्य प्राण किन्हें कहते हैं?

उत्तर संसार में जिनके संयोग से जीव जीवित और जिनके वियोग से मृत कहलाता है उन्हें द्रव्य प्राण कहते हैं।

प्र.992 भाव प्राण किन्हें कहते हैं?

उत्तर चेतन रूप ज्ञान और दर्शन आदि गुणों को भाव प्राण कहा जाता है, ये प्राण सिद्ध अवस्था में भी मौजूद रहते हैं।

प्र.993 द्रव्य प्राण कितने होते हैं और कौन-कौन-से होते हैं?

उत्तर द्रव्य प्राण दस होते हैं- ५ इन्द्रियाँ, ३ बल, आयु और श्वासोच्छ्वास ।

प्र.994 कौन-से जीव के कितने प्राण होते हैं ?

उत्तर एकेन्द्रिय जीव के स्पर्शेन्द्रिय, कायबल, आयु और श्वासोच्छ्वास इस तरह ४ प्राण होते हैं।

द्वीन्द्रिय जीव के स्पर्शन, रसना, कायबल, वचन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास इस तरह ६ प्राण होते हैं।

त्रीन्द्रिय जीव के स्पर्शन, रसना, घ्राण, कायबल, वचन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास इस तरह ७ प्राण होते हैं।

चतुरिन्द्रिय जीव के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कायबल, वचनबल, आयु और श्वासोच्छ्वास इस तरह ८ प्राण होते हैं।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत, कायबल, वचनबल, आयु और श्वासोच्छ्वास इस तरह ९ प्राण होते हैं।

संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, कायबल, वचन बल, मन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास इस तरह १० प्राण होते हैं।

प्र.995 अपर्याप्त अवस्था में जीवों के कितने प्राण होते हैं?

उत्तर अपर्याप्त अवस्था में वचनबल, मनबल और श्वासोच्छ्वास ये तीन प्राण नहीं होते, अतः अपर्याप्तक एकेन्द्रिय आदि जीवों के क्रमशः तीन, चार, पाँच, छह, सात और सात होते हैं। (अपर्याप्त अवस्था में मिश्रकाययोग रूप बल और भाव इन्द्रिय जानना चाहिए)

प्र.996 कौन-कौन से कर्म से कौन-से प्राण उत्पन्न होते हैं?

उत्तर मनोबल-प्राण और इन्द्रिय-प्राण वीर्यान्तिराय कर्म और मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम रूप अंतरंग कारण से उत्पन्न होते हैं। काय-बलप्राण शरीर नामकर्म के उदय से उत्पन्न होता है। श्वासोच्छ्वास प्राण श्वासोच्छ्वास और शरीर नामकर्म के उदय से उत्पन्न होता है। वचन बल स्वर नामकर्म के साथ शरीर नामकर्म का उदय होने पर उत्पन्न होता है।

प्र.997 संज्ञा किसे कहते हैं?

उत्तर जिन आहार, भय, मैथुन और परिग्रह रूप निमित्तों से संक्लेशित होकर जीव इस भव में जिनके विषय का सेवन करने से जीव पर-भव में भी दारुण दुःख को प्राप्त होते हैं वे संज्ञायें कहलाती हैं।

प्र.998 कौन-कौन-सी संज्ञा कौन-कौन-से गुणस्थान तक होती है?

उत्तर आहार संज्ञा छठे गुणस्थान तक, भय संज्ञा आठवें गुणस्थान तक, मैथुन संज्ञा नवम गुणस्थान के सवेद भाग तक और परिग्रह संज्ञा दसवे गुणस्थान तक होती है।

प्र.999 अप्रमत्तादि गुणस्थानों में आहार संज्ञा क्यों नहीं होती है?

उत्तर अप्रमत्तादि गुणस्थानों में आहार संज्ञा इस कारण नहीं होती क्योंकि वहाँ आहार संज्ञा उत्पन्न होने का कारण असाता वेदनीय कर्म का तीव्र उदय या उसकी उदीरणा का नहीं पाया जाना है।

प्र.1000 सप्तम आदि गुणस्थानों में जो भय आदि तीन संज्ञायें बतलायी गई हैं उसका कारण क्या है?

उत्तर सप्तम आदि गुणस्थानों में शेष संज्ञाओं का कथन उपचार से है क्योंकि तत्तत्कर्मों का उदय वहाँ पाया जाता है, फिर भी उनका वहाँ पर कार्य नहीं हुआ करता, जिसका कारण परम वैराग्य और ध्यान है।

प्र.1001 मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर प्रत्यक्ष ज्ञान में देखे गये जीवादि पदार्थों का जिनभावों के द्वारा अथवा जिन पर्यायों में विचार-अन्वेषण किया जाय (या खोजा जाय) उनको मार्गणा कहते हैं। (मृग्यतेति मार्गणा)

प्र.1002 मार्गणा के भेद कितने होते हैं?

उत्तर मार्गणा के भेद चौदह हैं- १. गति, २.इन्द्रिय, ३. काय, ४.योग, ५.वेद, ६.कषाय, ७.ज्ञान, ८. संयम, ९. दर्शन, १०. लेश्या, ११. भव्यत्व, १२. सम्यक्त्व, १३. संज्ञी और १४. आहार।

प्र.1003 गति मार्गणा किसको कहते हैं?

उत्तर गति नामक नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुई जीव की पर्याय विशेष को गति कहते हैं। जिसके चार भेद हैं- नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति।

प्र.1004 इन्द्रिय मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर संसारी आत्मा के शारीरिक चिह्न विशेष को इन्द्रिय कहते हैं। जिसके द्रव्य और भाव रूप से दो भेद हैं।

प्र.1005 काय मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर त्रस, स्थावर नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुई जीव की त्रस, स्थावर पर्याय विशेष को कायमार्गणा कहते हैं। एकेन्द्रिय स्थावर और द्वीन्द्रियादि त्रस कहलाते हैं।

प्र.1006 योग मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर पुद्गल विपाकी शरीर और अंगोपांग नामकर्म के उदय से मनोवर्गणा, वचनवर्गणा और कायवर्गणा के अवलम्बन से युक्त आत्मा को जो शक्ति; पुद्गल स्कन्धों को कर्म और नोकर्मरूप परिणमाने में समर्थ है, उसे भावयोग कहते हैं और उस शक्ति के धारी आत्मा के प्रदेशों में जो हलन-चलन होती है वह द्रव्ययोग है।

प्र.1007 योगों के कितने भेद हैं?

उत्तर सत्य, असत्य, उभय और अनुभय के भेद से मनोयोग और वचन योग के चार-चार भेद इस तरह आठ-भेद तथा औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्मणकाय योग के भेद से काययोग के सात भेद तथा सम्पूर्ण रूप से पन्द्रह भेद हैं।

प्र.1008 वेद मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर पुरुषवेद, स्त्रीवेद और नपुंसक वेद नामक नोकषाय के उदय से जो रमण की इच्छा होती है वह भाववेद है। तथा अंगोपांग नामकर्म के उदय से चिह्नविशेष की रचना का होना द्रव्य वेद कहलाता है।

प.1009 कषाय मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर जो मुख्यत: सम्यक्त्व व चारित्र गुणों का घात करती है (रोकती है) उसे कषाय कहते हैं।

प्र.1010 कषाय के कितने भेद हैं?

उत्तर कषाय के मूल में चार भेद हैं क्रोध, मान, माया और लोभ। इनके उत्तर भेद पच्चीस हैं। (विशेष देखें जै.सं. पृष्ठ १६३)

प्र.1011 ज्ञान मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर जिसके द्वारा जीव; त्रिकाल विषयक द्रव्य, गुण और उसकी अनेक प्रकार की पर्यायों को जाने, उसे ज्ञान कहते हैं। (पंचज्ञान देखें जैनागम सं.अ.१०, पृष्ठ ७९/ मतिज्ञान के भेद आगे कहेंगे।)

प्र.1012 ज्ञान मार्गणा के आठ भेद कौन-से हैं?

उत्तर मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवलज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत और कुअवधि ज्ञान।

प्र.1013 सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष, सकल प्रत्यक्ष और विकल प्रत्यक्ष ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर मतिज्ञान को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष, केवलज्ञान को सकल प्रत्यक्ष तथा अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान को विकल प्रत्यक्षज्ञान कहते हैं।

प्र.1014 संयम मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर अहिंसादि व्रतों का धारण, ईर्यादि समिति पालन, क्रोधादि कषाय निग्रह, त्रि-गुप्तियों की साधना और पंच इंद्रिय विजय संयम कहलाता है।

प्र.1015 संयम मार्गणा के कितने भेद हैं?

उत्तर सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म साम्पराय, यथाख्यात, संयमासंयम और असंयम ऐसे सात भेद हैं। (विशेष आगे कहेंगे।)

प्र.1016 दर्शन मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ के विशेष अंश को ग्रहण न करके सामान्य अंश का जो निर्विकल्प ग्रहण होता है, उसे दर्शन कहते हैं।

प्र.1017 दर्शन मार्गणा के चार भेद कौन-से हैं?

उत्तर चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

प्र.1018 लेश्या मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर कषाय से अनुरंजित मन, वचन और काय की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं।

प्र.1019 लेश्या के छह भेद कौन-से हैं?

उत्तर कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल।

प्र.1020 भव्य मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर मुक्ति (मोक्ष) प्राप्ति की योग्यता वाला भव्य और उससे विपरीत अभव्य कहलाता है।

प्र.1021 सम्यक्त्व मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर जिनवर कथित; द्रव्य, पञ्चास्तिकाय और नव पदार्थों पर श्रद्धान करना सम्यक्त्व कहलाता है।

प्र.1022 सम्यक्त्व मार्गणा के छह भेद कौन-से हैं?

उत्तर औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व, मिश्र, सासादन और मिथ्यात्व।

प्र.1023 संज्ञी मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर नोइन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से जो जीव शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलाप (भाषादि) को मन के अवलम्बन से ग्रहण करता है उसे संज्ञी कहते हैं और इससे विपरीत असंज्ञी कहलाता है। इस मार्गणा के ऐसे दो ही भेद हैं।

प्र.1024 आहार मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर औदारिकादि तीन शरीर और छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल वर्गणा को आहार कहते हैं। उसे जो ग्रहण करता है वह आहारक है। उससे रहित अनाहारक कहलाता है। इस मार्गणा के ऐसे दो भेद हैं। (इन मार्गणाओं का विशेष विषय आगे कहा जावेगा।)

प्र.1025 कौन-सी मार्गणाओं में किस अपेक्षा से जीवसमास का अन्तर्भाव होता है?

उत्तर इन्द्रिय और कायमार्गणाओं में स्वरूप-स्वरूपवत् सम्बन्ध की अपेक्षा अथवा सामान्य विशेष की अपेक्षा जीवसमास का अन्तर्भाव सम्भव है। क्योंकि इन्द्रिय तथा काय जीवसमास के स्वरूप हैं और जीवसमास स्वरूपवान हैं। तथा इन्द्रिय और काय विशेष हैं और जीवसमास सामान्य हैं।

प्र.1026 इन्द्रिय मार्गणा में पर्याप्ति का अन्तर्भाव किस अपेक्षा से होता है?

उत्तर धर्म और धर्मी संबंध की अपेक्षा पर्याप्ति का इन्द्रिय में अन्तर्भाव होता है क्योंकि इन्द्रिय धर्मी है, और पर्याप्ति धर्म है।

प्र.1027 श्वासोच्छ्वास प्राण, वचनबल प्राण तथा मनोबल प्राण का पर्याप्ति में अन्तर्भाव किस अपेक्षा संभव है?

उत्तर कार्यकारण संबंध की अपेक्षा श्वासोच्छ्वास प्राण, वचनबल प्राण तथा मनोबल प्राण का पर्याप्ति में अन्तर्भाव हो सकता है क्योंकि प्राण कार्य है और पर्याप्ति कारण है। पर्याप्तियाँ; इन्द्रिय और काय में अन्तर्भूत हैं, अतएव श्वासोच्छ्वास, वचनबल और मनोबल प्राण भी उन्हीं में अंतर्भूत हो जाते हैं।

प्र.1028 कायबल प्राण योग में किस अपेक्षा अन्तर्भूत हो जाता है?

उत्तर कायबल प्राण विशेष है और योग सामान्य है इसलिए सामान्य-विशेष की अपेक्षा योग मार्गणा में कायबल प्राण अंतर्भूत हो जाता है।

प्र.1029 ज्ञानमार्गणा में इन्द्रियों का अन्तर्भाव किस अपेक्षा से सम्भव होता है?

उत्तर कार्यकारण सम्बंध की अपेक्षा ज्ञानमार्गणा में इन्द्रियों का अन्तर्भाव हो जाता है क्योंकि ज्ञान कार्य के प्रति लब्धीन्द्रिय कारण है।

प्र.1030 गति मार्गणा में आयु प्राण का अन्तर्भाव किस अपेक्षा से सम्भव है?

उत्तर गति मार्गणा में आयु प्राण का अन्तर्भाव साहचर्य संबन्ध की अपेक्षा हो सकता है क्योंकि इन दोनों ही कर्मों का उदय सहचर है साथ-साथ ही हुआ करता है।

प्र.1031 संज्ञाओं का अन्तर्भाव किस अपेक्षा से किस मार्गणा में होता है?

उत्तर आहार रतिपूर्वक होता अर्थात् आहार संज्ञा राग विशेष होने से राग का ही स्वरूप है और माया तथा लोभ कषाय ये दोनों ही राग विशेष होने से स्वरूपवान हैं। इसलिए स्वरूपवत् सम्बंध की अपेक्षा माया और लोभ कषाय में आहार संज्ञा का अन्तर्भाव होता है। इसी अपेक्षा से क्रोध तथा मान कषाय में भय संज्ञा का अन्तर्भाव होता है। कार्यकारण संबंध की अपेक्षा वेद कषाय में मैथुन संज्ञा का और लोभ कषाय में परिग्रह संज्ञा का अन्तर्भाव होता है। क्योंकि वेदकषाय तथा लोभकषाय कारण है और मैथुन संज्ञा तथा परिग्रह संज्ञा उनके क्रम से कार्य हैं।

प्र.1032 उपयोग का दर्शन मार्गणा में अन्तर्भाव किस अपेक्षा से होता है?

उत्तर आगम में उपयोग; साकार और अनाकार रूप से दो भेद रूप है। यह घट है, यह पट है ऐसा विशेष रूप प्रतिभासित होना साकार उपयोग है जो कि ज्ञान रूप है, अत: इसका अन्तर्भाव ज्ञान मार्गणा में होता है। जिसमें कोई भी विशेष पदार्थ प्रतिभासित न होकर केवल महा सामान्य रूप ही विषय प्रतिभासित हो उसको अनाकार उपयोग कहते हैं जो दर्शन रूप है, अत: इसका अन्तर्भाव दर्शन मार्गणा में हो जाता है। (अन्तर्भाव प्रकरण गो.जी.गा.५,६,७)

प्र.1033 साकार उपयोग रूप ज्ञानोपयोग के कितने भेद हैं?

उत्तर साकार उपयोग रूप ज्ञानोपयोग के पूर्व कथित रूप से मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, केवलज्ञान, कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधिज्ञान अथवा विभंगज्ञान, इस तरह आठ भेद हैं। (ज्ञान के लक्षण-जै.सं. पृ.७९)

प्र.1034 अनाकार उपयोग रूप दर्शनोपयोग के कितने भेद हैं?

उत्तर अनाकार उपयोग रूप दर्शनोपयोग के पूर्व कथित रूप से चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन, इस प्रकार चार भेद होते हैं।

प्र.1035 सान्तर और निरन्तर मार्गणा किसे कहते हैं?

उत्तर जिन मार्गणाओं में अन्तर-विरह या विच्छेद पड़ता है, उन्हें सान्तर मार्गणा कहते हैं और इससे विपरीत मार्गणाओं को निरन्तर मार्गणा कहते हैं।

प्र.1036 यहाँ अन्तर से क्या तात्पर्य है?

उत्तर किसी भी विवक्षित गुणस्थान या मार्गणास्थान को छोड़कर पुन: उसी स्थान को प्राप्त करने में जीव को बीच में जो समय लगता है उसको अन्तर-विरह या विच्छेद कहते हैं।

प्र.1037 सान्तर मार्गणाएँ कौन-सी हैं?

उत्तर सान्तर मार्गणाएँ आठ हैं- १. उपशम सम्यक्त्व, २. सूक्ष्मसाम्पराय संयम, ३. आहारक काययोग, ४.आहारक मिश्रकाययोग, ५. वैक्रियिक मिश्रकाययोग, ६.लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य, ७. सासादन सम्यक्त्व और ८.मिश्र।

प्र.1038 आठ अन्तर मार्गणाओं का उत्कृष्ट और जघन्य अन्तर काल कितना होता है?

उत्तर नाना जीवों की अपेक्षा आठ अन्तर मार्गणाओं के उत्कृष्ट अन्तर काल क्रमशः १. सात दिन, २. छह महीना, ३. पृथक्त्व वर्ष, ४. पृथक्त्ववर्ष, ५.बारह मुहूर्त्त, ६. पल्य का असंख्यातवाँ भाग, ७. पल्य का असंख्यातवाँ भाग और ८. पल्य का असंख्यातवाँ भाग है। तथा सर्व आठों का जघन्य अन्तर काल एक समय है।

प्र.1039 प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित पंचम, छट्‌ठे और सातवें गुणस्थान का उत्कृष्ट विरह-अन्तर काल कितना होता है?

उत्तर प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित पंचम गुणस्थान का उत्कृष्ट अन्तर काल चौदह दिन है, और छट्‌ठे, सातवे गुणस्थान का उत्कृष्ट अन्तर काल पन्द्रह दिन जानना चाहिए।

प्र.1040 वनस्पति काय में साधारण वनस्पति कायिक का लक्षण क्या है?

उत्तर जिन जीवों का शरीर साधारण नामकर्म के उदय के कारण निगोद रूप होता है, जहाँ एक शरीर में अनन्तानन्त जीव रहते हैं और जिनका आहार, श्वासोच्छ्‌वास, जीवन तथा मरण समान (एक साथ) होता है उन्हें साधारण वनस्पति कहते हैं।

प्र.1041 साधारण वनस्पति के भेद एवं उनमें विशेषता क्या है?

उत्तर साधारण वनस्पति के बादर और सूक्ष्म की अपेक्षा दो भेद होते हैं। एक बादर निगोद शरीर में या एक सूक्ष्म निगोद शरीर में साथ ही उत्पन्न होने वाले अनन्तानन्त साधारण जीव या तो पर्याप्तक ही होते हैं या अपर्याप्तक ही होते हैं, किन्तु मिश्र रूप नहीं होते, क्योंकि उनके एक समान कर्मोदय का नियम है। (क.दी.पृ.२८)

प्र.1042 प्रत्येक वनस्पति के भेद कौन-से हैं?

उत्तर प्रत्येक वनस्पति के १.सप्रतिष्ठित प्रत्येक और २. अप्रतिष्ठित प्रत्येक रूप दो भेद होते हैं।

प्र.1043 सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक का लक्षण क्या है?

उत्तर जिनके आश्रय से बादर निगोदिया जीव रहते हैं तथा जिनकी शिरा, सन्धि तथा पर्व आदि प्रकट न हुए हों, जिनका भंग करने पर समान भंग होता हो, तोड़ने पर जिनमें परस्पर तन्तु न लगे रहें एवं छेद (काटने) करने पर भी जिनकी पुनः वृद्धि हो जावे और जिसके स्कन्ध की छाल मोटी हो उनको सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक कहते हैं। (इन्हें उपचार से साधारण वनस्पति भी कहते हैं।)

प्र.1044 सप्रतिष्ठित प्रत्येक और साधारण वनस्पति में क्या अन्तर है?

उत्तर सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति के आश्रित रहने वाले बादर निगोदिया जीव अपने शरीर का स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं। साधारण वनस्पति में रहने वाले अनंतानंत जीव अपने शरीर का स्वतन्त्र अस्तित्व न रखकर एक शरीर के ही स्वामी होते हैं।

प्र.1045 अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक का लक्षण क्या है?

उत्तर जिनके आश्रय से बादर निगोदिया जीव नहीं रहते हैं तथा जिनकी शिरा, सन्धि और पर्व आदि की रेखाएँ प्रकट हो चुकी हैं, तोड़ने पर जिनका समान भंग नहीं होता है एवं छिन्न हो जाने पर जो पुनः

उत्पन्न नहीं होती हैं और जिनके स्कन्ध की छाल पतली होती है, उनको अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक कहते हैं।

प्र.1046 अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति की विशेषता क्या है?

उत्तर अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कायिक अपनी उत्पत्ति के प्रथम समय से लेकर अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त सप्रतिष्ठित प्रत्येक ही रहती है।

प्र.1047 काय, कायिक आदि से क्या तात्पर्य है?

उत्तर वनस्पति सामान्य (सर्व जगह प्रयुक्त शब्द) है, जैसे वनस्पति।

काय- अर्थात् जिससे जीव निकल चुका है, जैसे-वनस्पतिकाय।

कायिक- अर्थात् जिसमें जीव रह रहा है जैसे-वनस्पतिकायिक।

वनस्पति जीव- अर्थात् जो वनस्पति नामकर्म के साथ अन्य गति से मरण कर वनस्पति में जन्म लेने आ रहा है, अभी विग्रह गति में है। इस तरह पाँचों ही स्थावरों में चार-चार प्रकार पाये जाते हैं।

प्र.1048 एक निगोद शरीर में द्रव्य की अपेक्षा जीवों का प्रमाण कितना है?

उत्तर एक निगोद-शरीर में समस्त सिद्ध राशि का और सम्पूर्ण अतीत काल के समयों का जितना प्रमाण है, द्रव्य की अपेक्षा उनसे अनन्तगुणे जीव एक निगोद शरीर में पाये जाते हैं।

प्र.1049 नित्य निगोद और इतर निगोद का लक्षण क्या है?

उत्तर जो कभी भी या आज तक निगोद अवस्था से नहीं निकले हैं, उन्हें नित्य निगोद कहते हैं। जो निगोद से निकलकर तथा अन्य पर्यायों में जन्म लेकर पुनः निगोद में ही जन्म लेते हैं, उन्हें इतर निगोद कहते हैं।

प्र.1050 नित्य निगोदिया और इतरनिगोदिया जीवों के संसार-भ्रमण का काल कितना होता है?

उत्तर नित्य निगोदिया जीवों के संसार-भ्रमण का काल अनादि अनन्त और अनादि सान्त होता है। तथा इतर निगोदिया जीवों के संसार भ्रमण का काल सादिसान्त और सादि अनन्त होता है।

प्र.1051 सादि, अनादि सान्त और अनन्त से क्या तात्पर्य है?

उत्तर 1. सादि अर्थात् किसी विवक्षित अवस्था का प्रारम्भ होना है।

2. अनादि अर्थात् किसी विवक्षित अवस्था का प्रारम्भ नहीं हुआ वह अवस्था अनादि (हमेशा) काल से है।

3. सान्त अर्थात् कोई विवक्षित अवस्था जो अन्त (समापन) सहित होती है।

4. अनन्त अर्थात् कोई विवक्षित अवस्था जो कदापि अन्त-समापन को प्राप्त नहीं होती है।

प्र.1052 सिद्धान्तानुसार निगोदिया जीव किस कायिक में गर्भित किये जाते हैं?

उत्तर सिद्धान्तानुसार निगोदिया जीव वनस्पति कायिक में गर्भित किये जाते हैं।

प्र.1053 बादर निगोदिया जीव कहाँ-कहाँ पाये जाते हैं?

उत्तर पृथिवी, जल, अग्नि और वायु इन चार स्थावरों में, आहारक शरीर, देव, नारकियों का शरीर और

केवली भगवान का शरीर इन आठ स्थानों में बादर निगोदिया जीव नहीं रहते हैं।

प्र.1054 कौन-से जीवों का शरीर निगोदिया जीवों से प्रतिष्ठित होता है?

उत्तर वनस्पतिकायिक जीवों का शरीर तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों का शरीर निगोदिया जीवों से प्रतिष्ठित (युक्त) होता है।

प्र.1055 स्थावर और त्रस काय वाले जीवों के कौन-से गुणस्थान होते हैं?

उत्तर स्थावरकायिक जीवों के एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है और त्रस कायिक जीवों के चौदह गुणस्थान होते हैं।

प्र.1056 सत्य मनोयोग आदिक का क्या स्वरूप है?

उत्तर उदाहरणार्थ- घट को घट जानना या कहना सत्य है। घट को पट (चित्र) जानना या कहना असत्य है। कमण्डलु को घट कहना या जानना उभय है क्योंकि कमण्डलु भी घट के समान जल भरने के काम आता है अत: सत्य है और कमण्डलु का आकार घट जैसा नहीं है अत: असत्य है। तथा सत्य और असत्य के निर्णय से रहित पदार्थ अनुभय है। सत्य, असत्य, उभय और अनुभय रूप पदार्थों में जो मन और वचन की प्रवृत्ति होती है अर्थात् चार प्रकार के पदार्थों को जानने या कहने के लिए जीव जो प्रयत्न करता है, वह सत्य आदि पदार्थों के सम्बन्ध से चार प्रकार का मनोयोग और चार का प्रकार का वचन योग कहलाता है। (क.प्र.)

प्र.1057 मनोयोग किन गुणस्थानों में होता है?

उत्तर असत्य मनोयोग और उभय मनोयोग बारहवें गुणस्थान तक होते हैं और सत्य मनोयोग तथा अनुभय मनोयोग सयोग केवली नामक तेरहवें गुणस्थान तक होते हैं।

प्र.1058 केवली भगवान के मनोयोग कैसे सम्भव है?

उत्तर इन्द्रियज्ञान से रहित होने के कारण अतीन्द्रिय सयोग केवली भगवान के मुख्य (भाव) रूप से तो मनोयाग नहीं है किन्तु अंगोपांग नामकर्म का उदय होने से हृदय में स्थित द्रव्यमन के लिए मनोवर्गणा के स्कन्ध निरन्तर आते रहते हैं, अत: मनोयोग को उपचार से माना गया है।

प्र.1059 वचनयोग किन गुणस्थानों में होता है?

उत्तर असत्य वचनयोग और उभय वचनयोग बारहवें गुणस्थान तक होते हैं और सत्य वचनयोग तथा अनुभय वचनयोग तेरहवें गुणस्थान तक होते हैं।

प्र.1060 औदारिक मिश्र काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर विग्रहगति के बाद मनुष्य अथवा तिर्यञ्च गति में जब तक शरीरपर्याप्ति पूर्ण नहीं हो जाती तब तक अर्थात् अपर्याप्त अवस्था में उस जीव के कार्मण शरीर और औदारिक शरीर के निमित्त से आत्मप्रदेशों का जो परिस्पन्दन होता है, उसे औदारिक मिश्र काययोग कहते हैं।

प्र.1061 औदारिक-मिश्र काययोग किन गुणस्थानों में होता है?

उत्तर औदारिक मिश्र काययोग प्रथम मिथ्यादृष्टि गुणस्थान, दूसरे सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान, चौथे

असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान और तेरहवें सयोग केवली गुणस्थान में होता है।

प्र.1062 औदारिक काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था के अन्तर्मुहूर्त्त बाद पर्याप्त हो जाने पर औदारिक शरीर के निमित्त से जो आत्मप्रदेशों का परिस्पन्दन होता है उसे औदारिक काययोग कहते हैं। (साथ ही यथावसर मनोयोग और वचन भी होता है।)

प्र.1063 औदारिक काययोग के कितने गुणस्थान होते हैं?

उत्तर औदारिक काययोग के प्रथम से लेकर तेरह गुणस्थान होते हैं। (गो.सा.क.का.(आ.म.)पृ.२६६)

प्र.1064 वैक्रियिक मिश्र काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर विग्रहगति के बाद देवगति और नरकगति में अपर्याप्त अवस्था के अन्तर्मुहूर्त्त पर्यन्त कार्मण शरीर और वैक्रियिक शरीर के निमित्त से आत्मप्रदेशों का जो परिस्पन्दन होता है उसे वैक्रियिक मिश्र काययोग कहते हैं।

प्र.1065 वैक्रियिक-मिश्र काययोग में कौन-से गुणस्थान होते हैं?

उत्तर वैक्रियिक मिश्र काययोग में मिथ्यात्व, सासादन और असंयत सम्यग्दृष्टि ये तीन गुणस्थान होते हैं।

प्र.1066 वैक्रियिक काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर पर्याप्त अवस्था में वैक्रियिक शरीर के निमित्त से आत्मप्रदेशों में जो परिस्पन्दन होता है उसे वैक्रियिक काययोग कहते हैं। (साथ ही यथावसर वचनयोग और मनोयोग भी होता है।)

प्र.1067 वैक्रियिक काययोग में कितने गुणस्थान होते हैं?

उत्तर वैक्रियिक काययोग में मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र और असंयत सम्यग्दृष्टि ये चार गुणस्थान होते हैं।

प्र.1068 कोई-कोई औदारिक काय वाले भी विक्रिया करते देखे जाते हैं, उनका यहाँ से क्या सम्बन्ध है?

उत्तर बादर तेजकायिक और वायुकायिक तथा संज्ञी पर्याप्तक पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च एवं मनुष्य तथा भोगभूमिज तिर्यञ्च-मनुष्य भी अपने औदारिक शरीर के द्वारा; जिनके कि शरीर में यह योग्यता पायी जाती है विक्रिया किया करते हैं, परन्तु उनका वैक्रियिक शरीर से सम्बन्ध नहीं है। अतः उनका यहाँ ग्रहण नहीं किया गया है।

प्र.1069 आहारक मिश्र काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर छठे गुणस्थानवर्ती जिन मुनियों के मस्तक से जो श्वेत रंग का पुतला निकलने वाला है, उनके प्रथम अन्तर्मुहूर्त्त में जब तक आहारक शरीर पर्याप्त नहीं हो जाता तब तक औदारिक शरीर और आहारक शरीर के निमित्त से आत्मप्रदेशों में जो परिस्पन्दन होता है, उसे आहारक मिश्र काययोग कहते हैं।

प्र.1070 आहारक मिश्र और आहारक काययोग में कौन-सा गुणस्थान होता है?

उत्तर उपर्युक्त दोनों योगों में एक मात्र प्रमत्त संयत नामक छठा गुणस्थान होता है।

प्र.1071 आहारक काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के मस्तक से जो श्वेत रंग का पुतला निकलता है वह केवली के पास जाकर सूक्ष्म-पदार्थों का आहरण-ग्रहण करता है, अत: इस आहारक शरीर के द्वारा आत्मप्रदेशों में जो परिस्पन्दन होता है, उसे आहारक काययोग कहते हैं।

प्र.1072 कार्मण काययोग किसे कहते हैं?

उत्तर यह जीव जब मरणोपरान्त नवीन शरीर की प्राप्ति हेतु विग्रह गति में जाता है तब कार्मण शरीर के निमित्त से आत्मप्रदेशों का जो परिस्पन्दन होता है, उसे कार्मण काययोग कहते हैं।

प्र.1073 कार्मण काययोग में कौन-कौन से गुणस्थान होते हैं?

उत्तर कार्मण काययोग में प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ गुणस्थानों की विग्रह गति की अवस्था तथा तेरहवें गुणस्थानवर्ती की समुद्घात के समय प्रतर और लोकपूरण अवस्था होती है।

प्र.1074 शरीरों के पाँच भेद कौन-से हैं?

उत्तर १. औदारिक, २.वैक्रियिक, ३.आहारक, ४.तैजस और ५.कार्मण।

प्र.1075 औदारिक शरीर का लक्षण क्या है?

उत्तर जिस शरीर की उत्पत्ति गर्भ और सम्मूर्च्छन जन्म से होती है, ऐसे मनुष्य और तिर्यञ्चों के शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं।

प्र.1076 वैक्रियिक शरीर का लक्षण क्या है?

उत्तर जिस शरीर की उत्पत्ति उपपाद जन्म से होती है, ऐसे देव और नारकियों के शरीर को वैक्रियिक शरीर कहते हैं।

प्र.1077 आहारक शरीर का लक्षण क्या है?

उत्तर प्रमत्त संयत (मुनि) के संदेह निवारणार्थ एवं असंयम का परिहार करने हेतु निकलने वाला एक हस्त प्रमाण, शुभ्र, विशुद्ध जो पुतला होता है उसे आहारक शरीर कहते हैं।

प्र.1078 आहारक शरीर किस तरह की अधिक विशेषता वाला होता है?

उत्तर आहारक शरीर रसादि धातु रहित, संहननों से रहित होता हुआ समचतुरस्रसंस्थान से युक्त एवं चन्द्रकांत मणि के समान श्वेत तथा शुभ नामकर्म के उदय से शुभ अवयवों से युक्त हुआ करता है।

प्र.1079 आहारक शरीर के सम्बन्ध में संदेह निवारण से क्या तात्पर्य है?

उत्तर प्रमत्त-विरत किसी मुनिराज के लिए किसी सूक्ष्म पदार्थ के विषय में संदेह हो जाने पर आहारक शरीर उत्पन्न होता है और वह शरीर अन्तर्मुहूर्त्त मात्र में ढाई द्वीप स्थित किन्हीं केवली के दर्शन मात्र से या किन्हीं श्रुतकेवली के स्पर्श मात्र से संदेह (शंका) का समाधान पाकर लौट आता है और मुनिराज संतृप्त हो जाते हैं।

प्र.1080 आहारक शरीर के साथ तीर्थवंदना या वंदन से क्या प्रयोजन है?

उत्तर किसी छठे गुणस्थानवर्ती मुनिराज का जब किसी तीर्थंकर के तप, ज्ञान और मोक्ष कल्याणक देखने का मन करता है या किसी केवली अथवा श्रुतकेवली की वंदना अथवा ढाई द्वीपस्थ अकृत्रिमादि

जिनालयों, सिद्धादि क्षेत्रों की वंदना (दर्शन) करने का तीव्र भाव उत्पन्न होता है तब ऋद्धि सदृश आहारक पुतला निकलता है और उनके अभिप्रायनुसार अन्तर्मुहूर्त्त में दर्शन, वंदनादि कर उनके शरीर में प्रवेश कर जाता है और वे मुनिराज अतिसंतुष्टि का अनुभव करते हैं।

प्र.1081 आहारक शरीर के साथ असंयम के परिहार इस हेतु से क्या तात्पर्य है?

उत्तर आहारक शरीर से असंयम के परिहार के निम्न कारण हो सकते हैं–

(१) प्रासुक-अप्रासुक मार्ग का ज्ञान करना।

(२) मिथ्यादृष्टियों या असंयमीजनों का परीक्षण करना।

(३) चर्या के योग्य स्थल का या मार्ग का अवलोकन करना।

(४) निर्विकल्प समाधि (ध्यान) के या सल्लेखना के योग्य वातावरण का ज्ञान करना।

(५) तीर्थ या पूज्य आयतनों की जानकारी लेना इत्यादि।

उपर्युक्त बातें अनुकूल होगी तो असंयम का परिहार होगा और संयम की सुरक्षा हो सकेगी।

प्र.1082 आहारक शरीर क्या बाधित या व्याघात को प्राप्त नहीं होता?

उत्तर नहीं! यह आहारक शरीर दोनों ओर से व्याघात रहित है। न तो इस शरीर के द्वारा किसी अन्य पदार्थ का व्याघात होता है। और न ही किसी दूसरे पदार्थ के द्वारा इस शरीर का व्याघात होता है। क्योंकि यह इतना सूक्ष्म हुआ करता है कि वज्रपटल को भी भेदकर यह शरीर चला जाये इसमें संदेह नहीं, यह इसकी सामर्थ्य है।

प्र.1083 आहारक शरीर की स्थिति कितने काल की होती है और क्या आहारक शरीर के काल में मरण भी सम्भव है?

उत्तर आहारक शरीर की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण ही है। आहारक शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने पर अर्थात् पूर्ण निर्मित होने पर कदाचित् आहारक ऋद्धि वाले मुनि का मरण भी हो सकता है। अर्थात् आहारक शरीर के काल में आयु का क्षय- या उसकी पूर्णता सम्भव है।

प्र.1084 तैजस शरीर का लक्षण क्या है?

उत्तर जिस शरीर के निमित्त से औदारिक आदि शरीरों में एक विशिष्ट प्रकार का तेज(दीप्ति) होता है, उसे तैजस शरीर कहा जाता हैं।

प्र.1085 कार्मण शरीर का लक्षण क्या है?

उत्तर अष्ट कर्मों के समूह को कार्मण शरीर कहते हैं।

प्र.1086 कार्मण शरीर और कार्मण काय में क्या अन्तर है?

उत्तर कार्मण शरीर कर्म क्षय के पूर्व सर्व संसारी जीवों के पाया जाता है, जबकि कार्मण काययोग विग्रह गति में या केवली समुद्घात में जब आत्मा के प्रदेशों का लोक में अधिक फैलाव होता है ऐसी प्रतर और लोकपूरण अवस्था में उपलब्ध होता है।

प्र.1087 विग्रह गति किसे कहते हैं?

उत्तर विग्रह अर्थात् शरीर, ऐसे नवीन शरीर-धारण हेतु जो गति होती है उसे विग्रह गति कहते हैं। अथवा विग्रह अर्थात् नोकर्म पुद्गलों के ग्रहण करने के निरोध के साथ जो गति होती है उसे विग्रह गति कहते हैं। अथवा विग्रह अर्थात् मोड़ा और ऐसे मोड़े के साथ जो गति होती है उसे विग्रह गति कहते हैं।

प्र.1088 विग्रहगति कितने प्रकार की होती है?

उत्तर विग्रहगति चार प्रकार की होती है, इषुगति या ऋजुगति, पाणिमुक्तागति, लांगलिकागति और गोमूत्रिका गति।

प्र.1089 इषुगति किसे कहते हैं?

उत्तर इषु अर्थात् बाण, धनुष से छूटे हुए बाण के सदृश मोड़ा रहित गति को इषुगति कहते हैं।

प्र.1090 ऋजुगति का अर्थ क्या है?

उत्तर ऋजु अर्थात् सरल सीधा और जिसकी बिना मोड़ा लिए सीधी गति होती है वह इषुगति के समान ऋजुगति है। इषु या ऋजुगति मात्र एक समय वाली होती है।

प्र.1091 पाणिमुक्ता गति किसको कहते हैं?

उत्तर जैसे अञ्जुली के आगे-किनारे से नीचे गिरती हुई चीज की गति होती है वैसे ही संसारी जीवों की एक मोड़े वाली गति को पाणिमुक्ता गति कहते हैं। यह गति दो समय वाली होती है।

प्र.1092 लांगलिका गति किसे कहते हैं?

उत्तर जैसे हल दो मोड़े वाला होता है वैसे ही दो मोड़े वाली गति को लांगलिका गति कहते हैं। यह गति तीन समय वाली होती है।

प्र.1093 गोमूत्रिका गति किसे कहते हैं?

उत्तर जैसे चलती हुई गाय का मूत्र अनेक मोड़े बना देता है वैसे ही तीन मोड़े वाली गति को गोमूत्रिका गति कहा जाता है। यह गति चार समय वाली होती है।

प्र.1094 कौन-से क्षेत्र में पहुँचने या उत्पन्न होने वाले जीव के लिए तीन मोड़े लेना आवश्यक होता है?

उत्तर निष्कुट (कोणा) क्षेत्र में उत्पन्न होने वाले जीव के लिए तीन मोड़े लेना आवश्यक होता है। लोक शिखर का कोण भाग निष्कुट क्षेत्र कहलाता है।

प्र.1095 विग्रह गति वाला जीव अधिक से अधिक कितने समय में आहारक (आहार पर्याप्ति योग्य) हो जाता है?

उत्तर विग्रह गतिवाला जीव एक अथवा दो अथवा तीन समय तक अनाहारक रहता हुआ चौथे समय में नियम से आहारक हो जाता है। अर्थात् आहार ग्रहण करते लगता है।

प्र.1096 विग्रह गति वाले आहार का क्या लक्षण है?

उत्तर तीन शरीर और षट् पर्याप्तियों के योग्य पुद्गल वर्गणाओं का ग्रहण आहार कहा जाता है।

प्र.1097 तीन शरीर और षट् पर्याप्तियों के नाम कौन-से हैं?

उत्तर औदारिक, वैक्रियिक और आहारक ये तीन शरीर तथा आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन ये षट् पर्याप्तियाँ होती हैं।

प्र.1098 विग्रहगति चार मोड़े वाली क्यों नहीं होती है?

उत्तर लोक मध्य से लेकर ऊपर, नीचे और तिरछे क्रम से विद्यमान आकाश के प्रदेशों की पंक्ति को श्रेणी कहते हैं। इस श्रेणी के अनुसार ही जीवों का गमन होता है। श्रेणी का उल्लंघन करके गमन नहीं होता। अतः ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ पर पहुँचने के लिए चार मोड़े लेने पड़े। (क.प्र.)

प्र.1099 देव और नारकियों के अतिरिक्त और कौन-से जीव पृथक् विक्रिया भी कर सकते हैं?

उत्तर देव और नारकियों के अतिरिक्त भोगभूमिज तिर्यंच और मनुष्य तथा चक्रवर्ती पृथक् विक्रिया भी कर सकते हैं।(क.दी.भा.१,पृ.३३)

प्र.1100 तैजस शरीर कितने प्रकार का होता है?

उत्तर तैजस शरीर दो प्रकार का होता है, निस्सरणात्मक और अनिस्सरणात्मक।

प्र.1101 निस्सरणात्मक तैजस शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर जो छठे गुणस्थानवर्ती ऋद्धिधारी मुनि से उत्पन्न होता है उसे निस्सरणात्मक तैजस शरीर कहते हैं। (विशेष-समुद्घात के वर्णन में कहेंगे।)

प्र.1102 अनिस्सरणात्मक तैजस शरीर किसे कहते हैं?

उत्तर जो सर्व संसारी जीवों के तेज या दीप्ति रूप में पाया जाता है उसे अनिस्सरणात्मक तैजस शरीर कहते हैं। अथवा जो खाए गए अन्न-पान का पाचक होकर शरीर में भीतर स्थित रहता है वह अनिस्सरणात्मक तैजस कहलाता है।

प्र.1103 समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर मूल शरीर को बिना छोड़े जीव के प्रदेशों का बाहर निकलना समुद्घात कहलाता है।

प्र.1104 समुद्घात के कितने भेद हैं?

उत्तर समुद्घात के सात भेद हैं- १.वेदनासमुद्घात, २.कषाय समुद्घात, ३.विक्रिया समुद्घात, ४.मारणान्तिक समुद्घात, ५.तैजस समुद्घात, ६. आहारक समुद्घात, और ७. केवली समुद्घात।

प्र.1105 वेदना समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर बहुत पीड़ा के कारण आत्म-प्रदेशों के बाहर निकलने को वेदना समुद्घात कहते हैं।

प्र.1106 कषाय समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर क्रोध, मानादि कषायों के निमित्त से आत्मप्रदेशों के बाहर निकलने को कषाय समुद्घात कहते हैं।

प्र.1107 विक्रिया समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर विक्रिया के हेतु आत्मप्रदेशों के बाहर निकलने को विक्रिया समुद्घात कहते हैं।

प्र.1108 मारणान्तिक समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर मरण होने से पूर्व (अन्तर्मुहूर्त्त पहले) नवीन पर्याय धारण करने के क्षेत्र पर्यन्त आत्मप्रदेशों के बाहर

निकलने को मारणान्तिक समद्घात कहते हैं।

प्र.1109 तैजस समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर शुभ या अशुभ तैजसऋद्धि के द्वारा तैजस शरीर के साथ आत्म प्रदेशों का बाहर निकलना तैजस समुद्घात कहलाता है। अथवा जीवों के अनुग्रह और विनाश में समर्थ तैजस शरीर की रचना के लिए तैजस समुद्घात होता है।

प्र.1110 अशुभ तैजस समुद्घात का स्वरूप कैसा है?

उत्तर उग्रचारित्र वाले मुनि के अति-क्रोध को प्राप्त होने पर बाएँ कंधे से बारह योजन लम्बा, नौ योजन चौड़ा और सूच्यांगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण मोटा, जपा-पुष्प या सिंदूर के ढेर जैसे रंग वाला शरीर निकलकर और बायीं प्रदक्षिणा कर अपने क्षेत्र में स्थित हुए जीवों का विनाश करके (भस्म करके) पुनः प्रवेश करते हुए उसी मुनि को (अशुभ तैजस के स्वामी को) जो व्याप्त करता है (घेरे में लेता है) वह अशुभ तैजस समुद्घात कहलाता है। (कहते हैं ऐसे मुनि मिथ्यात्व में जाकर मरण को प्राप्त हो जाते हैं।)

प्र.1111 शुभ तैजस समुद्घात का स्वरूप कैसा है?

उत्तर रोग, दुर्भिक्ष आदि से पीड़ित जगत् के प्राणियों को देखकर जिनको दयापूर्वक अनुकम्पा प्रकट हुई है ऐसे उग्रतपस्वी, सकल संयमधारी, महाऋषि, मुनिवर के मूल शरीर न त्यागकर पूर्वोक्त देह के प्रमाण सौम्य आकृति वाला हंस व शंख के रंग वाला शरीर दायें कंधे से निकलकर दक्षिण प्रदक्षिणा देकर रोग, दुर्भिक्ष आदि को दूर कर (जलादि वर्षाकर) पुनः अपने स्थान में आकर मुनि शरीर में प्रवेश करे और इस ऋद्धिधारी मुनि को परम शांति व तृप्ति का कारण बने वह शुभ तैजस समुद्घात कहलाता है। (ऐसे मुनिराज स्वपर रक्षक होते हैं।)

प्र.1112 अशुभ तैजस के कारणस्वरूप द्वैपायन मुनि को क्या फल मिला था?

उत्तर क्रोध-रूपी अग्नि के द्वारा जिनका तप-रूप धन भस्म हो चुका था ऐसे द्वैपायन मुनि मरण कर अग्निकुमार नामक मिथ्यादृष्टि भवन-वासी देव हुए। (ह.पु./६१/६९, ध.पु.१२/४,२,७, १९/२१/४)

प्र.1113 आहारक समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर आहारक ऋद्धिधारक प्रमत्त संयत गुणस्थानवर्ती मुनिराज के मस्तक से निकलने वाले आहारक शरीर के द्वारा आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना आहारक समुद्घात कहलाता है।

प्र.1114 केवली समुद्घात किसे कहते हैं?

उत्तर केवली भगवान की आयु स्थिति के समान शेष तीन अघाती कर्मों की स्थिति करने के लिए दण्ड, कपाट, प्रतर एवं लोकपूरण क्रिया में आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना केवली समुद्घात कहलाता है।

प्र.1115 केवली समुद्घात में कितना समय व्यतीत होता है?

उत्तर केवली समुद्घात में आठ समय सम्पूर्ण होते हैं- प्रथम समय में आत्मप्रदेशों को फैलाकर दण्डाकार

लम्बे करते हैं। दूसरे समय में कपाटाकार चौड़े करते हैं, तीसरे समय में प्रतर रूप तिकोने करते हैं और चौथे समय में आत्मप्रदेशों से लोक को पूर देते हैं। पाँचवे समय से लोकपूरण से प्रतर रूप, छठे समय में प्रतर से कपाट रूप, सातवें समय में कपाट से दण्ड रूप और आठवें समय में पुनः शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं।

प्र.1116 केवली समुद्घात के द्वारा आत्म-प्रदेशों के बाहरी गमन से किस तरह चारों कर्मों में समानता प्राप्त हो जाती है?

उत्तर जिस तरह कपड़े को धोकर मात्र निचोड़ कर रख देने से कपड़ा देर से सूख पाता है, परन्तु कपड़े को धोकर, निचोड़ कर झटकार देने (झटके से फैला देने) से वह शीघ्र ही सूख जाता है, उसी तरह केवली समुद्घात के द्वारा आयुकर्म के अलावा नाम, गोत्र और वेदनीय कर्म की शीघ्र ही विशिष्ट निर्जरा होकर आयुकर्म से समानता प्राप्त हो जाती है।

प्र.1117 सर्व ही केवली समुद्घात करते हैं क्या?

उत्तर यतिवृषभ आचार्य के मत से सर्व ही केवली समुद्घात करके ही मुक्त होते हैं। परन्तु अन्य आचार्य के मत् से कुछ केवली; जिनके आयु कर्म से अन्य कर्मों की स्थिति अधिक है वे समुद्घात करते हैं, अन्यथा नहीं करते हैं।

प्र.1118 कौन-से केवली समुद्घात करते हैं कौन-से नहीं करते हैं?

उत्तर जो अधिक-से-अधिक छह महीने की आयु शेष रहने पर केवली होते हैं वे अवश्य ही समुद्घात करते हैं और जो छह महीने से अधिक आयु रहते हुए केवली होते हैं उनका कोई नियम नहीं है वे समुद्घात करें और न भी करें। (स्वा.का., गा.४८६, टीका)

प्र.1119 समुद्घात के काल में आत्मप्रदेशों का गमन एक ही दिशा में होता है या सर्व दिशाओं में होता है?

उत्तर आहारक और मारणान्तिक समुद्घात-अवस्था में आत्म-प्रदेशों का गमन एक ही दिशा में होता है। बाकी पाँच समुद्घातों में आत्म-प्रदेशों का गमन दसों दिशाओं में हुआ करता है।

प्र.1120 कर्म और नोकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर कार्मण शरीर नामकर्म के उदय से होने वाले ज्ञानावरणादि अष्टकर्मों के समूह को कार्मणशरीर या कर्म कहते हैं। औदारिक, वैक्रियिक, आहारक और तैजस नामकर्म के उदय से होने वाले चार शरीरों को नोकर्म कहते हैं।

प्र.1121 विस्रसोपचय का लक्षण क्या है?

उत्तर समस्त आत्मप्रदेशों से बंधे कर्म नोकर्म के प्रत्येक परमाणु पर जीवराशि से अनन्तगुणे विस्रसोपचय रूप परमाणु सम्बद्ध हैं, जो कर्म या नोकर्म रूप तो नहीं हैं, परन्तु कर्म या नोकर्म होने के लिए उम्मीदवार हैं, उन परमाणुओं को विस्रसोपचय कहा जाता है।

प्र.1122 कर्म और नोकर्म का संचय कब और कैसे हुआ करता है?

उत्तर उत्कृष्ट योग को आदि लेकर जो-जो सामग्री उस-उस कर्म या नोकर्म के उत्कृष्ट संचय में कारण है तत्-तत् सामग्री के मिलने पर औदारिकादि पाँचों ही शरीर वालों के उत्कृष्ट स्थिति के अन्त समय में अपने-अपने कर्म और नोकर्म का उत्कृष्ट संचय (तद्योग्य परमाणुओं का मिलना) होता है।

प्र.1123 कर्मों के उत्कृष्ट संचय में छह आवश्यक कारण कौन-से होते हैं?

उत्तर कर्मों के उत्कृष्ट संचय में छह आवश्यक कारण-

१.भवाद्धा-भव या पर्याय सम्बन्धी परिभ्रमण का उत्कृष्ट काल भवाद्धा है।

२. आयुष्य- भुज्यमान (वर्तमान) आयु या स्थिति आयुष्य है।

३. योग- मन, वचन और काय योग है।

४. संक्लेश- कषाय विशेष रूप परिणाम संक्लिष्ट या संक्लेश है।

५. अपकर्षण- कर्म प्रदेशों की स्थिति और अनुभाग का अपवर्तन या घटना अपकर्षण है।

६. उत्कर्षण- कर्म प्रदेशों की स्थिति और अनुभाग का बढ़ना उत्कर्षण है।

प्र.1124 औदारिक आदि पाँच शरीरों की उत्कृष्ट स्थिति कितनी-कितनी है?

उत्तर उत्कृष्ट स्थिति क्रमश: औदारिक शरीर की तीन पल्योपम, वैक्रियिक शरीर की तेतीस सागरोपम, आहारक शरीर की अन्तर्मुहूर्त्त, तैजस शरीर की छ्यासठ सागरोपम और कार्मण शरीर की उत्कृष्ट स्थिति सामान्यतया सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। (क्योंकि अधिक स्थिति में कम समाहित हैं) किन्तु विशेष रूप से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ा कोड़ी सागरोपम है। नाम, गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागरोपम है। आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति मात्र तेतीस सागरोपम है।

प्र.1125 औदारिक शरीर का उत्कृष्ट संचय कहाँ और कब होता है?

उत्तर औदारिक शरीर का उत्कृष्ट संचय तीन पल्योपम की आयु वाले देवकुरु तथा उत्तरकुरु में उत्पन्न होने वाले तिर्यंच और मनुष्यों के चरम (अंतिम), द्विचरम (उपान्त्य) समय में होता है।

प्र.1126 वैक्रियिक शरीर का उत्कृष्ट संचय कहाँ होता है?

उत्तर वैक्रियिक शरीर का उत्कृष्ट संचय, बाईस सागरोपम की आयु वाले आरण और अच्युत स्वर्ग के ऊपर के विमानों में रहने वाले देवों के ही होता है।

प्र.1127 अन्य देवों में उत्कृष्ट संचय क्यों नहीं होता है?

उत्तर क्योंकि वैक्रियिक शरीर का उत्कृष्ट योग तथा उसके योग्य अन्य सामग्रियाँ अन्यत्र अनेक बार उपलब्ध नहीं होती हैं।

प्र.1128 आहारक शरीर का उत्कृष्ट संचय कब होता है?

उत्तर आहारक शरीर का उत्कृष्ट संचय आहारक शरीर का उत्थान (वृद्धि) करने वाले प्रमत्त विरत के ही होता है।

प्र.1129 कार्मण शरीर का उत्कृष्ट संचय कब होता हे?

उत्तर कार्मण शरीर का उत्कृष्ट संचय अनेक बार नरकों में भ्रमण करके सप्तम पृथिवी में उत्पन्न होने वाले जीव के होता है।

प्र.1130 प्रमत्तयोगियों के कौन-से योग में सबसे कम योगियों का प्रमाण है?

उत्तर एक समय में आहारक काययोग वाले जीव अधिक से अधिक चौवन होते हैं और आहारक मिश्र काययोग वाले अधिक से अधिक सत्ताईस होते हैं।

प्र.1131 तैजस शरीर का उत्कृष्ट संचय कहाँ और कब होता है?

उत्तर तैजस शरीर का उत्कृष्ट संचय सप्तम पृथिवी में दूसरी बार उत्पन्न होने वाले जीव के होता है।

प्र.1132 कौन-सी गति में कौन-से वेद वाले होते हैं?

उत्तर नरक गति में नपुंसक वेद, देवगति में पुरुष और स्त्रीवेद, मनुष्यगति में भोगभूमिजों के स्त्री-पुरुषवेद, कर्मभूमिजों के तीनों वेद, तिर्यञ्चगति में भोगभूमिजों के स्त्री-पुरुषवेद, कर्मभूमिजों के तीनों वेद पाये जाते हैं।

प्र.1133 कौन-से जीवों में द्रव्य व भाव वेद सम ही पाया जाता है?

उत्तर देव, नारकियों और भोगभूमिज मनुष्यों एवं तिर्यञ्चों में द्रव्यवेद और भाववेद की समानता पाई जाती है।

प्र.1134 कौन-से जीवों में द्रव्य व भाव वेद विषम भी पाया जाता है?

उत्तर कर्मभूमिज मनुष्य और तिर्यञ्चों में वेद विषमता भी पायी जाती है। अर्थात् किन्हीं में तो जैसा द्रव्यवेद होता है वैसा ही भाव वेद होता है, और किन्हीं में द्रव्यवेद अन्य और भाव वेद अन्य हुआ करता है।

प्र.1135 एक ही पर्याय में भाववेद का परिवर्तन सम्भव है क्या?

उत्तर नहीं! जिस जीव के जिस-किसी विवक्षित पर्याय में जो भाववेद प्राप्त हुआ है, वहीं भाववेद जीवन भर तक रहता है, बदलता नहीं है। (धवला.पु. १/३४८)

प्र.1136 तीनों वेदों की बाधाओं से सम्बन्धित आगमिक उदाहरण कौन-से हैं?

उत्तर पुरुषवेद की बाधा तृण की आग सदृश है। स्त्रीवेद की बाधा करीष (कंडे) की आग सदृश है और नपुंसक वेद की बाधा ईंट पकाने वाले अवे की आग सदृश होती है। (अर्थात् उत्तरोत्तर वृद्धि को लिए हुए हैं)

प्र.1137 द्रव्यवेद कौन-से गुणस्थान तक पाया जाता है?

उत्तर द्रव्यवेद की अपेक्षा स्त्रीवेद और नपुंसकवेद पाँचवें गुणस्थान तक तथा पुरुषवेद चौदहवें गुणस्थान तक पाया जाता है।

प्र.1138 भाववेद कौन-से गुणस्थान तक पाया जाता है।

उत्तर भाववेद की अपेक्षा तीनों वेदों का सद्भाव नवम गुणस्थान के पूर्वार्ध तक रहता है। इसके आगे वाले जीव वेद रहित होते हैं।

प.1139 वेदों पर वैराग्य का क्या प्रभाव होता है?

उत्तर वैराग्य भावना के बल से वेद सत्ता में रहते हुए भी उनका कार्य नहीं देखा जाता है।

प्र.1140 कषायों का उदय कौन-कौन से गुणस्थानों तक पाया जाता है?

उत्तर अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय दूसरे गुणस्थान तक, अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय चौथे गुणस्थान तक, प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय पाँचवें गुणस्थान तक और संज्वलन कषाय का उदय दसवें गुणस्थान तक पाया जाता है। हास्यादि छह नोकषायों का उदय आठवें गुणस्थान तक और शेष तीन वेदरूप कषायों का उदय नवम गुणस्थान के सवेद भाग तक पाया जाता है। ग्यारहवें गुणस्थान से कषाय रहित अकषाय अवस्था होती है।

अध्याय - 11. ज्ञान और सम्यक्त्वादि

प्र.1141 मतिज्ञान के तीन सौ-छत्तीस भेद किस तरह बनते हैं?

उत्तर अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा ये मतिज्ञान के भेद हैं इनमें प्रत्येक के बारह विषय हैं- बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनिःसृत, अनुक्त, ध्रुव, एक, एक विध, अक्षिप्र, निःसृत, उक्त और अध्रुव। इस तरह ४ × १२ = ४८ भेद होते हैं। पाँच इन्द्रिय और मन की सहायता से होने के कारण ४ ×१२ ×६ = २८८ भेद हो जाते हैं। अवग्रह दो तरह का होता है अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह। उपर्युक्त भेद अर्थावग्रह की अपेक्षा से बनते हैं। व्यञ्जनावग्रह चक्षु और मन के बिना होता है, उसमें ईहा, अवाय और धारणा ज्ञान नहीं होता अत: बारह विषयों के चक्षु और मन के बिना होने वाला अवग्रह मात्र की अपेक्षा १२ × ४ = ४८ भेद व्यञ्जनावग्रह के हो जाने से सब मिलाकर (२८८ + ४८= ३३६) तीन सौ छत्तीस भेद हो जाते हैं।

प्र.1142 श्रुतज्ञान के मुख्य दो भेद कौन-से हैं?

उत्तर श्रुतज्ञान के मुख्य दो भेद एक अक्षरात्मक दूसरा अनक्षरात्मक रूप से कहे गये हैं।

प्र.1143 अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान किसको कहते हैं?

उत्तर जो ज्ञान; अक्षर के निमित्त से उत्पन्न नहीं होता किन्तु लिंग (चिह्न) के निमित्त से उत्पन्न होता है, उसे अनक्षरात्मक अथवा लिंगज श्रुतज्ञान कहते हैं। जैसे- शीतल वायु का स्पर्श होने पर शीतल वायु जानना तो मतिज्ञान है और उसके पश्चात् ही वात प्रकृति वाले को यह शीतलवायु हानिकारक है, ऐसा जानना अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

प्र.1144 अक्षरात्मक श्रुतज्ञान किसको कहते हैं?

उत्तर अक्षर रूप शब्द के निमित्त से उत्पन्न होने वाले श्रुतज्ञान को अक्षरात्मक श्रुतज्ञान कहते हैं। जैसे-जीव है ऐसा कहने पर श्रोत्रेन्द्रिय के निमित्त से जो शब्द का ज्ञान हुआ वह तो मतिज्ञान है और उस ज्ञान के अनन्तर यह जीव नामक पदार्थ है, ऐसा जो ज्ञान हुआ वह अक्षरात्मक श्रुतज्ञान है।

प्र.1145 श्रुतज्ञान के बीस भेद कौन-से हैं?

उत्तर श्रुतज्ञान के बीस भेद इस प्रकार हैं- पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास, पद, पदसमास, संघात, संघातसमास, प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिकसमास, अनुयोग, अनुयोगसमास, प्राभृत-प्राभृत, प्राभृत-प्राभृतसमास, प्राभृत, प्राभृतसमास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व और पूर्वसमास। (गो.सा.जी.का.गा.३१७)

प्र.1146 पर्याय-ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के जो सबसे जघन्य ज्ञान होता है उसको पर्यायज्ञान कहते हैं।

प्र.1147 सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के किस काल में पर्यायज्ञान पाया जाता है?

उत्तर सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के अपने-अपने जितने भव अर्थात् एक अन्तर्मुहूर्त्त में अधिक

से अधिक छह हजार बारह भव सम्भव हैं। उनमें भ्रमण करके अन्त के अपर्याप्त शरीर को तीन मोड़ों के द्वारा ग्रहण करने वाले जीव के प्रथम मोड़े के समय में यह सर्व जघन्य ज्ञान होता है।

प्र.1148 पर्यायज्ञान में क्या विशेषता है?

उत्तर पर्यायज्ञान के आवरण करने वाले कर्म के उदय का फल पर्यायज्ञान में नहीं होता, किन्तु इसके अनन्तर वाले पर्यायसमास ज्ञान में होता है। उस जीव में पर्याय रूप इतना जघन्य ज्ञान हमेशा निरावरण तथा प्रकाशमान रहता है।

प्र.1149 पर्यायज्ञान पर आवरण स्वीकार करने में क्या बाधा है?

उत्तर पर्यायज्ञान पर आवरण मानने से जीव के ज्ञानोपयोग का अभाव होने से जीव का ही अभाव हो जावेगा। अत: सूक्ष्म निगोदिया जीवन का पर्यायज्ञान निरावरण माना गया है। (गो.सा.जी.का.गा. ३१९,३२०)

प्र.1150 लब्ध्यक्षर रूप श्रुतज्ञान का आधार क्या है?

उत्तर सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के उत्पन्न होने के प्रथम समय में उत्पन्न होने वाले लब्ध्यक्षर रूप पर्याय ज्ञान का आधार स्पर्शन इन्द्रियजन्य मतिज्ञान है। (जी.का.गा.३२२)

प्र.1151 अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के कितने भेद हैं?

उत्तर अक्षरात्मक श्रुतज्ञान के दो भेद हैं एक अंगप्रविष्ट और दूसरा अंगबाह्य।

प्र.1152 अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान किसको कहते हैं?

उत्तर तीर्थंकर भगवान ने सर्वज्ञत्व रूप अपने केवलज्ञान के द्वारा विश्व के सर्व पदार्थों को ज्ञातकर अपनी दिव्य ध्वनि के द्वारा जो समवशरण में स्थित जीवों को उपदेश दिया, उस जिनवाणी को उनके साक्षात् शिष्य मुनीश्वर गणधर परमेष्ठी ने स्मृतिपूर्वक बारह अंगों में संकलित (गूँथित) किया, जिसका नाम अंगप्रविष्ट हुआ।

प्र.1153 अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान के बारह भेद कौन-से हैं?

उत्तर अंगप्रविष्ट श्रुतज्ञान के बारह भेद-१. आचारांग, २. सूत्रकृतांग, ३.स्थानांग, ४. समवायांग, ५. व्याख्याप्रज्ञप्तिांग, ६. धर्मकथांग, ७. उपासकाध्ययनांग, ८. अन्तकृद्दशांग, ९. अनुत्तरोप-पादिकदशांग, १०. प्रश्नव्याकरणांग, ११. विपाक सूत्रांग और १२. दृष्टिवादांग।

प्र.1154 बारहवें दृष्टिवादांग के कितने भेद हैं?

उत्तर **दृष्टि वादांग के पाँच भेद हैं**- १. परिकर्म, २. सूत्र,३. प्रथमानुयोग, ४. पूर्वगत और ५. चूलिका।

इसमें परिकर्म के पाँच भेद हैं- १. चंद्रप्रज्ञप्ति, २. सूर्यप्रज्ञप्ति, ३. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, ४. द्वीपसागर प्रज्ञप्ति और ५. व्याख्याप्रज्ञप्ति।

पूर्वगत के भी चौदह भेद हैं- १. उत्पादपूर्व, २. आग्रायणीय पूर्व, ३. वीर्यप्रवाद पूर्व, ४. अस्तिनास्तिप्रवाद पूर्व, ५. ज्ञानप्रवाद पूर्व, ६. सत्यप्रवाद पूर्व, ७. आत्मप्रवाद पूर्व, ८. कर्मप्रवाद पूर्व, ९. प्रत्याख्यान पूर्व, १०. वीर्यानुवाद पूर्व, ११. कल्याणवाद पूर्व, १२. प्राणावाद पूर्व, १३. क्रिया

विशालपूर्व और १४. त्रिलोक बिन्दुसार पूर्व।

चूलिका के भी पाँच भेद हैं- १. जलगता, २. स्थलगता, ३. मायागता, ४. आकाशगता और ५. रूपगता। (विशेष वर्णन-ज.ध., भा.१, पृ. १२२-१३२)

प्र.1155 अंगबाह्य श्रुतज्ञान किसको कहते हैं?

उत्तर आर्ष परम्परा के आचार्यों ने, अल्पबुद्धि वाले शिष्यों पर अनुकम्पा कर उन अंग-पूर्वों के आधार पर जो ग्रन्थ रचे वे अंगबाह्य ग्रन्थ; अंगबाह्य श्रुत कहलाते हैं।

प्र.1156 अंगबाह्य श्रुतज्ञान के चौदह भेद कौन-से हैं?

उत्तर अंगबाह्य श्रुतज्ञान के चौदह भेद- १. सामायिक, २. चतुर्विंशतिस्तव, ३. वन्दना, ४. प्रतिक्रमण, ५. वैनयिक, ६. कृतिकर्म, ७. दशवैकालिक, ८. उत्तराध्ययन, ९. कल्पव्यवहार, १०. कल्पाकल्प, ११. महाकल्प्य, १२. पुण्डरीक, १३. महापुण्डरीक और १४. निषिद्धिका।

प्र.1157 द्वादशांग में वर्णित एवं अपुनरुक्त अक्षरों के कारण स्वरूप चौसठ मूल वर्ण कौन-से होते हैं?

उत्तर तेतीस व्यञ्जन, सत्ताईस स्वर और चार योगवाह इस तरह कुल चौंसठ वर्ण द्वादशांग में वर्णित हैं।

तेतीस व्यञ्जन- क् ख् ग् घ् ङ् त् थ् द् ध् न्
च् छ् ज् झ् ञ् प् फ् ब् भ म्
ट् ठ् ड् ढ् ण य् र् ल् व्, श् ष् स् ह्

सत्ताईस स्वर ह्रस्व- अ इ उ ऋ लृ ए ऐ ओ औ

दीर्घ- आ ई ऊ ॠ ॡ ३ ए ऐ ओ औ

प्लुत- आ ३, ई ३, ऊ ३, ऋ ३, ॡ ३, ए ३, ओ ३, औ ३

(गोम्मटसार जीव काण्ड गा.३५२ में ए, ऐ ओ, औ को ह्रस्व भी माना है तथा दीर्घ स्वरों के आगे तीन (३) का अंक लिखकर प्लुत की संज्ञा दी है)।

चार योगवाह- अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय, उपध्मानीय। (उदा.-कं, कः, क़, ﹀प)

प्र.1158 द्वादशांग के एक पद में कितने अक्षर होते हैं?

उत्तर द्वादशांग के एक पद में सोलह सौ चौंतीस कोटि, तिरासी लाख, सात हजार, आठ सौ अठासी (१६३४,८३,०७८८८) अक्षर होते हैं।

प्र.1159 द्वादशांग के समस्त पदों का प्रमाण कितना है?

उत्तर द्वादशांग के समस्त पद एक सौ बारह कोटि बयासी लाख अट्ठावन हजार पाँच (११२, ८२, ५८००५) हैं।

प्र.1160 अंगबाह्य के अक्षरों का प्रमाण कितना है?

उत्तर अंगबाह्य के अक्षरों का प्रमाण आठ करोड़ एक लाख आठ हजार एक सौ पचहत्तर (८०१०८१७५) हैं।

प्र.1161 अवधिज्ञान के दो भेद कौन-से हैं?

उत्तर अवधिज्ञान के १.भवप्रत्यय और २.गुणप्रत्यय रूप से दो भेद हैं।

प्र.1162 भव प्रत्यय अवधिज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर जिस ज्ञान के उत्पन्न होने में भव ही निमित्त हो अर्थात् जन्म लेते ही जो अवधिज्ञान प्रकट हो जाता है उसे भवप्रत्यय अवधिज्ञान कहते हैं।

प्र.1163 भव प्रत्यय अवधिज्ञान किन जीवों के प्रकट होता है और किससे प्रकट होता है?

उत्तर भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव, नारकियों और तीर्थंकरों को प्रकट होता है और सर्वाङ्ग से प्रकट होता है।

प्र.1164 गुणप्रत्यय अवधिज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर जो अवधिज्ञान सम्यग्दर्शन और तपश्चरणादि गुणों या क्षयोपशम के निमित्त से उत्पन्न होता है, उसे गुणप्रत्यय या क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान कहते हैं।

प्र.1165 गुणप्रत्यय अवधिज्ञान किन जीवों के किससे उत्पन्न होता है?

उत्तर गुणप्रत्यय अवधिज्ञान किन्हीं-किन्हीं पर्याप्त मनुष्यों तथा संज्ञी-पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के उत्पन्न होता है सभी के नहीं होता है और यह ज्ञान शङ्खादि चिह्नों से उत्पन्न होता है।

प्र.1166 गुणप्रत्यय या क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान के छह भेद कौन-से हैं?

उत्तर गुणप्रत्यय अवधिज्ञान के छह भेद-

१.अनुगामी- जो अवधिज्ञान अपने स्वामी (अवधिज्ञानधारक जीव) के साथ जाये उसे अनुगामी अवधिज्ञान कहते हैं। इसके क्षेत्र, भव और उभय के भेद से तीन प्रकार होते हैं। (क) जो अवधिज्ञान दूसरे क्षेत्र में भी अपने स्वामी के साथ जाता है वह क्षेत्रानुगामी अवधिज्ञान है। (ख) जो दूसरे भव में भी साथ जाये वह भवानुगामी है। (ग) जो क्षेत्र तथा भव दोनों में साथ जाये वह उभयानुगामी है।

२. **अननुगामी**- जो अवधिज्ञान अपने स्वामी के साथ न जाये उसे अननुगामी अवधिज्ञान कहते हैं। इसके भी क्षेत्राननुगामी, भवाननुगामी, उभयाननुगामी के भेद से तीन प्रकार होते हैं।

३.वर्धमान- जो शुक्लपक्ष के चन्द्रमा की तरह अपने अन्तिम स्थान तक बढ़ता जाये उसे वर्धमान अवधिज्ञान कहते हैं।

४. हीयमान- जो कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की तरह अपने अन्तिम स्थान तक घटता जाये उसे हीयमान अवधिज्ञान कहते हैं।

५.अवस्थित-जो सूर्यमण्डल के समान न घटे न बढ़े उसे अवस्थित अवधिज्ञान कहते हैं।

६.अनवस्थित- जो चन्द्रमण्डल की तरह कभी कम हो, कभी अधिक हो उसे अनवस्थित अवधिज्ञान कहते हैं।

प्र.1167 अवधिज्ञान के अन्य तरह से तीन भेद कौन-से हैं?

उत्तर अवधिज्ञान के अन्य विशिष्ट तरह के १. देशावधि, २.परमावधि और ३. सर्वावधि रूप से तीन भेद हैं।

प्र.1168 देशावधि ज्ञान किस गति में और किन जीवों के हो सकता है?

उत्तर देशावधि ज्ञान चारों गति के जीवों को हो सकता है और होकर छूट भी जाता है। अत: प्रतिपाति कहा जाता है।

प्र.1169 परमावधि और सर्वावधि अवधिज्ञान किन जीवों के होता है?

उत्तर परमावधि और सर्वावधि अवधिज्ञान चरम शरीरी (तद्‌भवमोक्षगामी) मुनिराजों के ही होता है, और यह अप्रतिपाति होता है।

प्र.1170 जघन्य देशावधिज्ञान अत्यल्प कितने क्षेत्र को जानता है?

उत्तर जघन्य देशावधिज्ञान सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के उत्पन्न होने के तृतीय समय में जो जघन्य अवगाहना होती है, उतने प्रमाण क्षेत्र को जानता है। अर्थात् मानव की दृष्टि को अगोचर है।

प्र.1171 उत्कृष्ट देशावधिज्ञान कितने क्षेत्र व कितने काल को जानता है?

उत्तर उत्कृष्ट देशावधिज्ञान सम्पूर्ण लोक को क्षेत्र की अपेक्षा जानता है तथा एक समय कम एक पल्योपम की बात को काल की अपेक्षा जानता है।

प्र.1172 सर्वावधिज्ञान का जघन्य, उत्कृष्ट द्रव्यादि का प्रमाण कितना है?

उत्तर सर्वावधिज्ञान का जघन्य द्रव्य किसी अपेक्षा से एक परमाणु है और किसी अपेक्षा से अनन्त परमाणुओं का स्कन्ध है तथा परमावधिज्ञान के उत्कृष्ट क्षेत्रादि से सर्वावधिज्ञान का क्षेत्रादि असंख्यात गुणा है।

प्र.1173 लोक के अधोभाग में अन्तिम नरक भूमि के नारकियों के अवधिज्ञान के विषय भूत क्षेत्र का प्रमाण कितना है?

उत्तर सातवी भूमि में नारकियों के अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्र का प्रमाण एक कोस है।

प्र.1174 लोक के ऊर्ध्वभाग में स्थित नव अनुदिश और पंच अनुत्तरों में स्थित देवों के अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्र का प्रमाण कितना है?

उत्तर नव अनुदिश और पंच अनुत्तरों में स्थित देवों के अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्र का प्रमाण सम्पूर्ण लोक (त्रस) नाड़ी है। (अवधिज्ञान के विषय का विशेष वर्णन देखिये इसी कृति में गति वर्णन)

प्र.1175 मन:पर्ययज्ञान के दो भेद कौन-से हैं?

उत्तर मन:पर्ययज्ञान के ऋजुमति और विपुलमति के भेद से दो भेद कहे जाते हैं।

प्र.1176 ऋजुमति मन:पर्ययज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर जो परकीय (अन्य के) अवक्र (सरल) मन स्थित रूपी पदार्थ को विषय करे उसे ऋजुमति मन:पर्ययज्ञान कहते हैं।

प्र.1177 विपुलमति मन:पर्ययज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर जो परकीय अवक्र या वक्र मन स्थित रूपी पदार्थ को जानता है और प्रश्न किये जाने पर या नहीं किये जाने पर भी मन:स्थित पदार्थ को विषय कर लेता है उसे विपुलमति मन:पर्ययज्ञान कहते हैं।

प्र.1178 मन:पर्ययज्ञान कहाँ से उत्पन्न होता है?

उत्तर शरीर में जहाँ द्रव्य मन होता है, उस स्थान पर आत्मा के जो प्रदेश हैं; वहाँ से मन:पर्ययज्ञान उत्पन्न होता है। (क.दी.,पृ.४७)

प्र.1179 मन:पर्ययज्ञान के स्वामी (धारक) कौन होते हैं?

उत्तर ऐसे मुनीश्वर जो सप्त ऋद्धियों में से किसी एक ऋद्धि के धारी हों और वर्धमान चारित्र रूप विशिष्ट चारित्र के धारी हों, वे मन:पर्ययज्ञान के स्वामी होते हैं।

प्र.1180 ऋजुमति और विपुलमति मन:पर्ययज्ञान में कौन-सी मौलिक विशेषताएँ हैं?

उत्तर ऋजुमति और विपुलमति मन:पर्ययज्ञान में १. विशुद्धता की तारतम्यता की अपेक्षा, २.प्रतिपात-अप्रतिपात की अपेक्षा, ३.वक्रता-अवक्रता की अपेक्षा और चिन्तवन की अपेक्षा बड़ी मौलिक विशेषता पायी जाती है।जैसे- १.ऋजुमति की अपेक्षा विपुलमति मन:पर्ययज्ञान में अधिक विशुद्धता होती है। २.ऋजुमति होकर छूट जाता है, अत: प्रतिपाति कहा है जबकि, विपुलमति छूटता नहीं है अर्थात् केवलज्ञानोपत्ति का भी कारण है अत: अप्रतिपाति कहा गया। ३. ऋजुमति परकीय सरल मन से चिन्तित पदार्थ को जानता है, जबकि विपुलमति परकीय चिन्तित, अचिन्तित और अर्धचिन्तित पदार्थ को विषय बना लेता है।

प्र.1181 ऋजुमति और विपुलमति मन:पर्ययज्ञान कितने-कितने क्षेत्र व भव के परकीय मनोगत पदार्थों को विषय करते हैं?

उत्तर ऋजुमति मन:पर्ययज्ञान का जघन्य क्षेत्र दो-तीन कोस और उत्कृष्ट सात-आठ योजन है तथा जघन्य काल दो-तीन भव और उत्कृष्ट काल सात-आठ भव है। विपुलमति मन:पर्ययज्ञान का जघन्य क्षेत्र आठ- नौ योजन तथा उत्कृष्ट क्षेत्र मनुष्य लोक प्रमाण (४५ लाख योजन) है। तथा जघन्य काल सात-आठ भव और उत्कृष्ट परकीय मनोगत विषय ग्रहण काल पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

प्र.1182 मन:पर्ययज्ञान का जो मनुष्यलोक विषय क्षेत्र बतलाया है वह वृत्त (गोल) रूप ग्रहण करता है या विष्कम्भ रूप?

उत्तर यहाँ मन:पर्यय ज्ञान के उत्कृष्ट विषय क्षेत्र मनुष्यलोक से मनुष्यलोक का विष्कम्भ ग्रहण करना चाहिए न कि वृत्त, क्योंकि मानुषोत्तर पर्वत के बाहर चारों कोणों में स्थित तिर्यंच और देवों के द्वारा चिन्तित त्रिकाल गोचर पदार्थ को भी विपुलमति मन:पर्ययज्ञानी जानते हैं। कारण यह है कि मन:पर्ययज्ञान का उत्कृष्ट क्षेत्र ऊँचाई में कम होते हुए भी समचतुरस्र घनप्रतर रूप ४५ लाख योजन प्रमाण है। (गो.सा.गा.४५६, धवल पु.१३/३४३-३४४, धवल ९/६८, ज.ध.१/१७-१९)

प्र.1183 जैनागम संस्कार में वर्णित केवलज्ञान की परिभाषा से अन्य शब्दों में और भी कोई केवलज्ञान की परिभाषा प्रस्तुत कीजिये?

उत्तर अपने प्रतिपक्षी-चार घातिया कर्मों के नाश हो जाने से इन्द्रिय और मन की सहायता के बिना निजात्मा से सम्पूर्ण पदार्थों के गुणों की त्रिकालवर्ती सर्व पर्यायों को जो एक ही क्षण में एक साथ जानता है,

उसे केवलज्ञान कहते हैं। (तुलना करें- जैनागम संस्कार अ.१०,पृ.७९)

प्र.1184 केवलज्ञान को असहाय क्यों कहते हैं?

उत्तर केवलज्ञानी अरिहंत भगवान अतिन्द्रिय होते हैं, वे विश्व के चराचर पदार्थों को इन्द्रिय और मन (अनिन्द्रिय) की सहायता के बिना जानते हैं अत: सर्वज्ञ कहलाते हैं तथा उनका केवलज्ञान इन्द्रिय और मन के बिना पदार्थों को विषय करने वाला होने से तथा अन्यज्ञानों में सूर्य सम अकेला प्रतिभाषित होने के कारण असहाय कहा जाता है।

प्र.1185 केवलज्ञान के लिये सकल-प्रत्यक्ष और अवधिज्ञान तथा मन:पर्ययज्ञान के लिए विकल-प्रत्यक्ष क्यों कहा जाता है?

उत्तर केवलज्ञान द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की सीमा से अतीत अर्थात् असीम को विषय करने वाला होने से सकल प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है और अवधि ज्ञान तथा मन:पर्यय ज्ञान द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव की सीमापूर्वक जानने वाले होने से विकल प्रत्यक्षज्ञान कहलाते हैं। केवलज्ञानी स्वआत्मा से रूपी और अरूपी सर्व पदार्थों को जानते हैं, परन्तु अवधि और मन:पर्ययज्ञानी स्वआत्मा से रूपी पर पदार्थों को जानते हैं।

प्र.1186 केवलज्ञान अकेला होता है यह बात ठीक है, परन्तु केवलज्ञान क्या अवधिज्ञान या मन:पर्ययज्ञान पूर्वक ही होता है ऐसा नियम है?

उत्तर नियम तो यह है कि केवलज्ञान; मति और श्रुतज्ञान पूर्वक भी हो सकता है, मति, श्रुत और अवधिज्ञान पूर्वक भी हो सकता है और मति, श्रुत, अवधि तथा मन:पर्ययज्ञान पूर्वक भी हो सकता है।

प्र.1187 कौन-कौन-से ज्ञान में कौन-कौन-से गुणस्थान होते हैं?

उत्तर कुमति, कुश्रुत और कुअवधिज्ञान प्रथम दो गुणस्थानों में होते हैं। किन्तु विशेषता यह है कि कुमति और कुश्रुतज्ञान एकेन्द्रिय आदि जीवों के भी पाये जाते हैं जबकि कुअवधिज्ञान संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के ही पाया जाता है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान चौथे से बारहवें गुणस्थानों तक होते हैं। मन:पर्ययज्ञान छठे से बारहवें गुणस्थान तक होता है और केवलज्ञान तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानों में होता है तथा गुणस्थानातीत सिद्धों में भी रहता है।

प्र.1188 सामायिक संयम किसे कहते हैं?

उत्तर सर्व सावद्य योग का जीवन पर्यन्त के लिए त्याग करना सामायिक संयम कहलाता है। जैसे- ''मैं सर्व प्रकार के सावद्य योग का त्याग करता हूँ''।

प्र.1189 सावद्ययोग किसे कहते हैं?

उत्तर मन, वचन और काय इन तीनों की हिंसा-जनक प्रवृत्ति को सावद्ययोग कहते हैं। अथवा असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, विद्या और शिल्प ये छह सावद्ययोग माने गये हैं। छह सावद्यकर्म करने वाले मनुष्य सावद्यकर्मार्य कहलाते हैं।

प्र.1190 सुयोग्य अल्पसावद्य कर्मार्य और महान असावद्य कर्मार्य कौन कहलाते हैं?

उत्तर अहिंसादि पंच अणुव्रतों को धारण करने वाले श्रावक-श्राविकाएँ सुयोग्य अल्प-सावद्य कर्मार्य कहलाते हैं तथा अहिंसादि पंच महाव्रतधारी दिगम्बर मुनिराज महान असावद्य कर्मार्य कहलाते हैं।

प्र.1191 सावद्य कर्मार्य के छह भेद कौन-से हैं?

उत्तर १.तलवार, धनुष आदि शस्त्र विद्या में निपुण असि कर्मार्य है। २. रुपये-पैसे की आमदनी, खर्च आदि के लेखे जोखे में निपुण मसि कर्मार्य है। ३. हल, कुलि (हाथ) दान्ती (नियंत्रण) आदि से कृषि करने वाले कृषि कर्मार्य है।४. चन्दनादि सुगन्धित पदार्थों का, घृतादि का या रस व धान्यादि का तथा कपास, वस्त्र, मोती आदि अनेक तरह के द्रव्यों का क्रय-विक्रय करने वाले अनेक प्रकार के वाणकि कर्मार्य हैं।५. बीजांकन या गणित आदि बहत्तर कलाओं में निपुण विद्या कर्मार्य हैं। तथा ६. धोबी, नाई, लुहार, कुम्हार और सुनार आदि शिल्प कर्मार्य हैं।

प्र.1192 सामायिक के विभिन्न प्रयुक्त प्रयोजनार्थ स्थान कौन-से हैं?

उत्तर मोक्षमार्ग में सामायिक का प्रयुक्त प्रयोजन तीन स्थानों पर होता है।

१. सर्व सावद्ययोग का त्याग कर अहो-रात्रिक (दिन-रात) के प्रत्येक धार्मिक आवश्यकों में सामायिक चारित्र या सामायिक संयम के रूप में सामायिक का प्रयोग होता है।

२. मुनियों के षट् आवश्यकों में त्रिकाल समता-समायिक जिसे निर्वृत्ति पूर्वक खड्गासन, पद्मासनादि में स्थित होकर किया जाता है उस काल के लिए सामायिक का प्रयोग होता है।

३. श्रावकों के सामायिक शिक्षा-व्रतों के पालन में या सामायिक प्रतिमा में त्रिकाल सामायिक हेतु सामायिक का प्रयोग होता है।

प्र.1193 छेदोपस्थापना संयम किसे कहते हैं?

उत्तर छेद अर्थात् अहिंसादि महाव्रत के भेद पूर्वक अपने आपको संयम में उपस्थित करना, अथवा छेद अर्थात् सामायिक चारित्र से चलित होने पर अपने आप को उपस्थापना अर्थात् पुन: उसी चारित्र में निज को उपस्थित या उपस्थापित करना छेदोपस्थापना संयम कहलाता है।

प्र.1194 परिहार विशुद्धि संयम किसे कहते हैं?

उत्तर जिस संयम में जीवहिंसा के परिहार के साथ विशिष्ट तरह की विशुद्धि पायी जाती है उसे परिहार विशुद्धि संयम कहते हैं।

प्र.1195 परिहार विशुद्धि संयम किसे प्राप्त होता है?

उत्तर जो भव्य जन्म से लेकर तीस वर्ष तक (गृहस्थ जीवन के) सुख से संतुष्ट होकर मुनि दीक्षा पूर्वक सामायिक, छेदोपस्थापना संयम धारण करते हैं तथा तीर्थंकर के पाद मूल में (समवसरण में) आठ वर्ष तक प्रत्याख्यानपूर्व का अध्ययन करते हैं, (जीवों की उत्पत्ति व स्थान आदि का ज्ञान कर लेते हैं) ऐसे मुनि के महान परिहारविशुद्धि नामक संयम प्रकट होता है। जिस संयम के फलस्वरूप उनके द्वारा किसी जीव का विघात नहीं होता है। ऐसे महान संयम के धारक मुनीश्वर तीन संध्याकालों को छोड़कर प्रतिदिन दो कोस विहार करते हैं।

प्र.1196 परिहार विशुद्धि संयम के धारक मुनीश्वर क्या रात्रि में भी गमन कर सकते हैं और वे वर्षायोग (चातुर्मास) करते हैं या नहीं?

उत्तर परिहार विशुद्धि संयम के धारक मुनि रात्रि में गमन नहीं करते हैं तथा उनके वर्षायोग में एक स्थल पर ठहरने का कोई नियम उपलब्ध नहीं होता है।

प्र.1197 सूक्ष्म साम्पराय संयम किसे कहते हैं?

उत्तर उपशम श्रेणी या क्षपक श्रेणी चढ़ने वाले मुनि के जहाँ संज्वलन लोभ का अत्यन्त सूक्ष्म उदय रहता है, उन मुनिराज के संयम को सूक्ष्म साम्पराय संयम कहते हैं।

प्र.1198 यथाख्यात संयम किसे कहते हैं?

उत्तर समस्त मोहनीय कर्म का उपशम या क्षय हो जाने से जहाँ वास्तविक रूप से कहा गया है वैसा यथावस्थित आत्म स्वभाव का प्राप्त हो जाना यथाख्यात संयम कहलाता है।

प्र.1199 संयमासंयम किसे कहते हैं?

उत्तर अप्रत्याख्यानावरण कषाय के क्षयोपशम और प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय की तरतमता (हीनाधिकाता) से जो एकदेश चारित्र होता है उसे संयमासंयम कहते हैं।

प्र.1200 संयम और असंयम दोनों एक साथ किस अपेक्षा से होते हैं?

उत्तर जब स्थूल रूप पाँच अणुव्रत और तीन गुणव्रत, तथा चार शिक्षाव्रतों का पालन होता है तब संयम कहलाता है और सूक्ष्मरूप महाव्रतों का पालन नहीं होता अतः असंयम कहलाता है। ऐसी दोनों अवस्था में युगपत् संयम और असंयम जहाँ घटित हों उसे संयमासंयम कहा जाता है। (व्रतों का वर्णन देखें जैनागम संस्कार अ.११,पृ.९२-९८)

प्र.1201 असंयम किसे कहते हैं?

उत्तर त्रस, स्थावर जीवों की हिंसा तथा पंच इन्द्रिय सम्बन्धी विषयों का त्याग न होना असंयम कहलाता है।

प्र.1202 संयममार्गणा में कौन-कौन-से गुणस्थान होते हैं?

उत्तर सामायिक और छेदोपस्थापना संयम छठे से लेकर नौवें गुणस्थान तक होते हैं। परिहार विशुद्धि संयम छठे और सातवें गुणस्थान में होता है सूक्ष्मसाम्पराय संयम दसवें गुणस्थान में होता है। यथाख्यातसंयम ग्यारहवें से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक होता है। संयमासंयम पाँचवें गुणस्थान में होता है। तथा असंयम, प्रारम्भ के चार गुणस्थानों में होता है।

प्र.1203 दर्शन कब होता है और ज्ञान कब होता है?

उत्तर सामान्य अवलोकन का नाम दर्शन है, जो छदमस्थों के ज्ञान के पूर्व में हुआ करता है और केवलियों के युगपत् अर्थात् ज्ञान के साथ ही हुआ करता है। छदमस्थों का दर्शन पूर्वक विशेष जानने पर ज्ञान होता है।

प्र.1204 दर्शन तो चक्षुओं से देखने जैसी क्रिया है लेकिन चक्षु (नेत्रों) के अलावा वह अन्य इन्द्रियों से

कैसे सम्भव है?

उत्तर सम्भव तो है; क्योंकि अन्य इन्द्रियाँ भी ज्ञान के पूर्व सामान्य को ग्रहण करती हैं जिसे दर्शन कहा जाता है, उसी दर्शन को ज्ञान के रूप में ग्रहण करते हुये कह दिया करते हैं कि मैंने स्पर्शनेन्द्रिय से हवा को देख लिया कि वह गर्म है या ठण्डी है। मैंने रसनेन्द्रिय से देख लिया कि कोई खाद्य वस्तु खट्टी है या मीठी है। मैंने घ्राणेन्द्रिय से देख लिया कि वस्तु सुगन्धित है या दुर्गन्धित तथा मैंने कर्णेन्द्रिय से देख लिया कि आवाज है कि नहीं है। या कोई किसी से कहता है कि बाहर देख कर आओ कि हवा चल रही है कि नहीं अथवा हवा ठण्डी है या गर्म है इत्यादि। सार यही है कि चक्षु व अन्य इन्द्रियों से भी देखने-जानने रूप कार्य हुआ करते हैं।

प्र.1205 चक्षु दर्शन का लक्षण क्या है?

उत्तर चक्षु इन्द्रिय से होने वाले ज्ञान से पूर्व पदार्थ का जो सामान्य प्रतिभास होता है, उसे चक्षु दर्शन कहते हैं।

प्र.1206 अचक्षुदर्शन का लक्षण क्या है?

उत्तर चक्षु इन्द्रिय के अलावा अन्य इन्द्रियों और मन से होने वाले ज्ञान के पूर्व पदार्थ का जो सामान्य प्रतिभास होता है, उसे अचक्षुदर्शन कहते हैं।

प्र.1207 अवधिदर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर अवधिज्ञान के पूर्व जो पदार्थ का सामान्य प्रतिभास होता है, उसे अवधिदर्शन कहते हैं।

प्र.1208 केवल दर्शन किसे कहते हैं?

उत्तर केवलज्ञान के साथ समस्त पदार्थों का जो सामान्य प्रतिभास होता है उसे केवलदर्शन कहते हैं।

प्र.1209 दर्शन मार्गणा में कौन-कौन-से गुणस्थान घटित होते हैं?

उत्तर चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन प्रथम से बारहवें गुणस्थान तक होते हैं। अवधिदर्शन चौथे से बारहवें गुणस्थान तक होता है। केवलदर्शन तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में तथा उसके बाद गुणस्थानातीत सिद्धों में भी होता है।

प्र.1210 षट् लेश्याओं के नाम किसके समान वर्णों पर आधारित हैं?

उत्तर कृष्ण लेश्या काजल सदृश काले रंग पर, नील लेश्या नीलमणि सम नीले रंग पर, कापोत लेश्या कबूतर सदृश कापोती रंग पर, पीत लेश्या स्वर्ण सदृश पीले रंग पर, पद्मलेश्या गुलाबी रंग के कमल सम गुलाबी रंग पर और शुक्ल लेश्या शंख सदृश श्वेत रंग पर आधारित है।

प्र.1211 लेश्या के दो भेद कौन-से हैं?

उत्तर द्रव्य और भाव के रूप में लेश्या के दो भेद होते हैं।

१. शारीरिक वर्ण की अपेक्षा द्रव्य लेश्या कहलाती है।

२. आत्मिक परिणामों की अपेक्षा भाव लेश्या कहलाती है।

प्र.1212 चतुर्गति में कौन-से जीवों की कौन-सी द्रव्य लेश्या होती है?

उत्तर * सम्पूर्ण नारकियों का कृष्ण वर्ण।

* कल्पवासी या विमानवासी देवों का तत्-तत् स्थान योग्य भाव लेश्या रूपवर्ण।
* भवनत्रिक देवों के छहों वर्ण।
* मनुष्य और तिर्यञ्चों के छहों वर्ण।
* देवों की विक्रिया का, छहों लेश्याओं में से किसी एक लेश्यारूप वर्ण।
* उत्तम भोगभूमि के मनुष्य और तिर्यञ्चों का सूर्य सदृश वर्ण।
* मध्यम भोगभूमि के मनुष्य और तिर्यञ्चों का चन्द्र सदृश वर्ण।
* जघन्य भोगभूमि के मनुष्य और तिर्यञ्चों का कदली(केले) सदृश हरित वर्ण।
* बादर जलकायिक जीवों का शुक्ल वर्ण
* बादर अग्नि कायिक जीवों का पीत वर्ण।
* घनोदधि वातवलय में वात कायिक जीवों का गोमूत्र सदृश वर्ण।
* घनवातवलय सम्बन्धित वातकायिक जीवों का मूंगा सदृश वर्ण।
* तनुवातवलय सम्बन्धित वात कायिक जीवों का अनेक वर्णों से समन्वित वर्ण।
* सम्पूर्ण सूक्ष्म जीवों के शरीर का कापोत वर्ण।
* विग्रहगति में सम्पूर्ण जीवों का शुक्ल वर्ण। और
* निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था वाले जीवों का कापोत वर्ण होता है। (क.दी.भा.१)

(नरक-गति और देव-गति के विवरण में उनकी भाव लेश्याओं का वर्णन किया जा चुका है।)

प्र.1213 मनुष्यों में कौन-सी भाव लेश्याएँ होती हैं?

उत्तर चतुर्थ गुणस्थान पर्यंत मनुष्यों में छहों लेश्याएँ, देशविरत, प्रमत्तविरत और अप्रमत्त विरत गुणस्थानवर्ती जीवों में तीन शुभ लेश्याएँ तथा अपूर्वकरण से सयोग केवली पर्यन्त मनुष्यों में एक शुक्ल लेश्या ही होती है। भोगभूमि में सम्यग्दृष्टि अथवा मिथ्यादृष्टि मनुष्यों के पर्याप्त अवस्था में पीत आदि तीन शुभ लेश्याएँ होती हैं और निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में कापोत लेश्या का जघन्य अंश होता है।

प्र.1214 तिर्यञ्चों में कौन-कौन-सी भाव लेश्याएँ होती हैं?

उत्तर एकेन्द्रिय और विकलत्रय जीवों में कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याएँ होती हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यञ्चों में एवं संज्ञी पञ्चेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यञ्चों में कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याएँ होती हैं। असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचों में कृष्ण आदि चार लेश्याएँ होती हैं। संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंचों में प्रथम से लेकर चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त छहों लेश्याएँ होती हैं। भोगभूमिस्थ पर्याप्त तिर्यंचों में पीत आदि तीन शुभ लेश्याएँ एवं निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में कापोत लेश्या का जघन्य अंश होता है।

प्र.1215 कौन-सी लेश्या किन गुणस्थानों में होती है?

उत्तर कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या चौथे गुणस्थान तक, तेजो लेश्या और पद्म लेश्या सातवें गुणस्थान तक और शुक्ल लेश्या तेरहवें गुणस्थान तक होती है।

प्र.1216 कृष्ण लेश्या वाले जीवों के परिणाम किस तरह के होते हैं?

उत्तर अत्यन्त क्रोधी होना, बैर भाव नहीं छोड़ना, भाण्डवचन बोलना, दयाधर्म से रहित होना, दुष्टस्वाभावी होना तथा किसी के वश न होना इत्यादि कृष्ण लेश्या के परिणाम हैं।

प्र.1217 नील लेश्या वाले जीवों के परिणाम किस तरह के होते हैं?

उत्तर कार्य करने में मन्दता, बुद्धिहीनता, विवेक शून्यता, मायाचारिता और परिग्रह में अति आसक्तता इत्यादि नील लेश्या के परिणाम हैं।

प्र.1218 कापोत लेश्या वाले जीवों के परिणाम किस तरह के होते हैं?

उत्तर दूसरों पर क्रोध करना, पर की निन्दा करना, अत्यधिक शोक करना, अत्यधिक भय करना, दूसरों से ईर्ष्या रखना, बहु-स्व-प्रशंसक होना, अविश्वास स्वभावी होना, निजगुण गायकों में संतोषी होना, हानि-लाभ में विवेक शून्यता होना, युद्ध में मरने का इच्छुक होना, आत्म प्रशंसकों को धन बाँटने वाला होना, और योग्य-अयोग्य का अविचारक होना इत्यादि कापोत लेश्या के परिणाम हैं।

प्र.1219 पीत लेश्या वाले जीवों के परिणाम किस तरह के होते हैं?

उत्तर योग्यायोग्य का सुविचारक होना, सेव्य-असेव्य में विवेकपना होना, सर्व-जीवों पर उपकार भाव होना, तथा दया और दान में तत्परता का होना पीत लेश्या के परिणाम हैं।

प्र.1220 पद्मलेश्या वाले जीवों के परिणाम किस तरह के होते हें?

उत्तर त्याग तपस्या में अभिरुचि, भद्रता रूप परिणाम, उत्तम विचार, उद्यमशीलता, क्षमाशीलता, साधु व गुरुजनों की भक्ति-पूजा तथा सद्गुणानुवाद में लगनशीलता का होना पद्मलेश्या के परिणाम हैं।

प्र.1221 शुक्ल लेश्या वाले जीवों के परिणाम किस तरह के होते हैं?

उत्तर सदा पक्षपात से रहितपना, निदान रहितपना, साम्य व्यवहारिकता, वीतराग-भाव में अभिरुचिता और पारिवारिक निर्मोहता इत्यादि शुक्ल लेश्या के परिणाम हैं।

प्र.1222 लेश्याओं के प्रसंग में कषायों की तरतमता का एक उदाहरण दीजियेगा।

उत्तर षट् लेश्याओं से संबन्धित एक वृक्ष के उदाहरण में वृक्ष से आम तोड़ने हेतु- १.वृक्ष को मूल से काटना, २.डाल काटना, ३.टहनी काटना, ४.कच्चे और पके आम वाले गुच्छे को तोड़ना, ५.मात्र पके हुये आमों को तोड़ना और ६.नीचे जमीन पर स्वयं गिरे हुए आमों को उठाना; क्रमशः कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल रूप लेश्याओं में होने वाली कषायों की तीव्रतम, तीव्रतर और तीव्र तथा मंद, मंदतर और मंदतम अवस्थाओं को दर्शाता है।

प्र.1223 भव्य कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर भव्य तीन प्रकार के होते हैं- १.निकट (आसन्न) भव्य, २.दूर भव्य और ३. दूरानुदूर (अभव्य सम) भव्य।

– जो कम से कम एक दो भव में और अधिक-से अधिक सात-आठ भवों में मोक्ष प्राप्त करने वाला हो, उसे निकट भव्य या आसन्न भव्य कहते हैं। जैसे– स्वर्ण पाषाण से स्वर्ण; पुरुषार्थ के माध्यम से प्राप्त हो जाता है।

–चिरकाल बाद अर्थात् जो अर्धपुद्गल परावर्तन (लघुअनन्तवत्) प्रमाण काल के भीतर मोक्ष प्राप्त करने वाला हो उसे दूर भव्य कहते हैं। जैसे– बन्ध्यापन के दोष से रहित स्त्री के बाह्य निमित्त के मिलने पर नियम से पुत्रोत्पत्ति होगी, वैसे ही इन जीवों को नियम से मोक्ष फल की प्राप्ति होगी।

–जो भव्य होने पर भी कभी मोक्ष प्राप्त न कर सके उसे दूरानुदूर (अभव्य सम) भव्य कहते हैं। ये दूरानुदूर भव्य जीव नित्यनिगोद में ही पाये जाते हैं। जैसे– बन्ध्यापने के दोष से रहित विधवा सती स्त्री में पुत्रोत्पत्ति की योग्यता होते हुए भी बाह्य निमित्त से दूर रहने पर कभी पुत्रोत्पत्ति नहीं होगी, वैसे ही नित्य निगोद में बाह्य सामग्री के अभाव होने से मोक्षफल की प्राप्ति नहीं होगी। और भी जैसे सिद्ध भगवान के निकट त्रिलोक को पलटाने की शक्ति होते हुए भी उस शक्ति की अभिव्यक्ति नहीं होती, उसी तरह दूरानुदूर भव्य की शक्ति प्रकट नहीं होती है।

प्र.1224 अभव्य किस तरह के कार्य के अयोग्य होते हैं?

उत्तर अभव्य जीव मोक्ष के साधन स्वरूप रत्नत्रय मय मोक्ष मार्ग के अयोग्य होते हैं। अत: उन्हें मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है। जैसे– बन्ध्यता स्त्री को पुत्रोत्पत्ति हेतु निमित्त मिले या न मिले परन्तु पुत्रोत्पत्ति नहीं होगी। वैसे ही अभव्य जीवों को कभी मोक्ष फल की प्राप्ति नहीं होगी। अभव्य जीव पानी में नहीं सीझने वाली ठर्रा मूंग सदृश हुआ करते हैं। उनमें धर्म के किसी भी निमित्त का प्रभाव कदापि नहीं पड़ता है।

प्र.1225 भव्य मार्गणा में कितने गुणस्थान होते हैं?

उत्तर भव्य जीव चौदह गुणस्थानों में रहते हैं और अभव्य जीवों का मात्र प्रथम गुणस्थान (मिथ्यात्व) ही रहता है।

प्र.1226 भव्यात्मा की क्या पहचान होती है?

उत्तर १. जिसे यह महसूस हो कि कहीं मैं अभव्य तो नहीं हूँ।

२. जो प्रीति चित्त के साथ धर्म-वार्ता उपदेशादि को सुनता है।

३. जिसका मन धार्मिक क्रियाओं में आह्लाद को प्राप्त है। और

४. जो धार्मिक कार्य स्वार्थ (संसार बढ़ाने) हेतु नहीं बल्कि परमार्थ (कर्म-निर्जरा और मोक्ष) हेतु करता है वह भव्यात्मा कहलाता है।

प्र.1227 अभव्यात्मा की पहचान क्या है?

उत्तर १. जिसे संसार खाली हो जाने की चिंता हो।

२. जो धर्म या धर्मकार्य से अतिदूर रहता हो।

३. जो धर्म या धर्मात्माओं की निंदा करता हो।

४. जो मात्र भोग व ख्याति के लिए धर्म करता हो।

५. जो दया भाव से रहित हो। और

६. जो उपकारक का उपकार न मानने वाला कृतघ्न हो, ऐसा जीव अभव्य हो सकता है।

प्र.1228 सर्व जीवों के मोक्ष होने पर यह संसार रिक्त (खाली) नहीं हो जावेगा क्या?

उत्तर नहीं! वैसे तो मोक्ष नहीं जाने वाले जघन्य युक्तानन्त अभव्य जीवों और अनन्तानन्त दूरानुदूर भव्य जीवों से यह संसार भरा रहेगा ही, परन्तु उन अनन्तानन्त जीवों से भी भरा रहेगा जो भव्य जीव अनन्तानंत राशि के रूप हैं, दूरभव्य हैं। एक निगोदिया के अन्दर अनंतनिगोद राशि अवगाहित है और ऐसे निगोदिया जीवों से यह लोक ठसाठस भरा हुआ है। अतः संसार जीव राशि से रिक्त होना असंभव है।

प्र.1229 निगोद राशि से निकलकर त्रसराशि में भ्रमण करने का काल अधिक-से अधिक कितना है?

उत्तर निगोद से निकलकर त्रस राशि में जन्म लेने काल साधिक (कुछ अधिक) दो हजार सागरोपम वर्ष है। इतने काल के बीच अगर मोक्ष नहीं हुआ तो पुनः निगोद में जन्म होता है, जहाँ एक श्वास में अठारह बार जन्म-मरण करते रहना पड़ता है।

प्र.1230 संसार-सागर से पार कराने वाला खेवटिया सदृश सम्यक्त्व का लक्षण करणानुयोग में किस रूप में बतलाया गया है?

उत्तर जिनेन्द्र भगवान के द्वारा उपदिष्ट या उपदेशित सप्ततत्त्व, नव-पदार्थ, षड् द्रव्य और पञ्चास्तिकायों के श्रद्धान करने को सम्यक्त्व कहते हैं। (सम्यक्त्व में सहायक कुछ विषयों का वर्णन द्रव्यानुयोग में भी किया जावेगा) [उपशम, वेदक या क्षायोपशमिक और क्षायिक सम्यक्त्व या सम्यग्दर्शन का वर्णन देखें जैनागम संस्कार अ.९, पृ ७५ पर तथा मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र या सम्यग्मिथ्यात्व का वर्णन देखें जैनागम सं.अ.१८, पृ.१८२]

प्र.1231 प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन किसको प्राप्त होता है?

उत्तर जो जीव चारों गतियों में से किसी एक गति का धारक तथा भव्य संज्ञी पंचेन्द्रिय, पर्याप्तक, विशुद्धि-सातादि के बन्ध के योग्य परिणति से युक्त, जागृत-स्त्यानगृद्धि आदि (स्त्यानगृद्धि, प्रचला-प्रचला, निद्रा-निद्रा) निद्राओं से रहित, साकार उपयोग युक्त और शुभ लेश्या-पीत, पद्म, शुक्ल का धारक होकर करणलब्धि से युक्त होता है वह अनादि अथवा सादि मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति करता है। (गो.सा.गा.६५२)

प्र.1232 लब्धियाँ कितनी और कौन-सी हैं?

उत्तर लब्धियाँ पाँच होती हैं- १.क्षयोपशम-लब्धि, २.विशुद्धि लब्धि, ३. देशना लब्धि, ४. प्रायोग्य लब्धि, और ५. करण लब्धि।

प्र.1233 क्षयोपशम लब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर जिस समय कर्मों का अनुभाग प्रतिसमय अनन्तगुणा घटता हुआ उदय में आता है तब क्षयोपशम

लब्धि होती है। क्योंकि उत्कृष्ट अनुभाग के अनन्तवें भाग मात्र देशघाती स्पर्द्धकों का उदयाभाव रूप क्षय और उदय को न प्राप्त सर्वघाती स्पर्द्धकों का सद् अवस्था रूप उपशम की प्राप्ति का नाम क्षयोपशम लब्धि है।

प्र.1234 विशुद्धि लब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर क्षयोपशम लब्धि की प्राप्ति होने पर साता-वेदनीय आदि प्रशस्त प्रकृतियों के बंध में कारण जो धर्मानुराग रूप शुभ परिणाम होता है उसकी प्राप्ति का नाम विशुद्धि लब्धि है।

प्र.1235 देशना-लब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर छह द्रव्यों और नौ पदार्थों के उपदेश का लाभ देशना है, उस देशना से परिणत आचार्य आदि की प्राप्ति, उपदिष्ट अर्थ के ग्रहण, धारण और विचारण की शक्ति के समागम को देशनालब्धि कहते हैं।

प्र.1236 प्रयोग्य-लब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर उपर्युक्त तीन लब्धियों से युक्त जीव प्रति समय विशुद्धि के बल से आयु के अलावा शेष सात कर्मों की स्थिति अन्त:कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण मात्र शेष कर देता है, तथा पूर्व में जो अनुभाग था, उसमें अनन्त का भाग देने पर बहुभाग प्रमाण अनुभाग को छोड़कर शेष एक भाग प्रमाण अनुभाग को कर देता है। इस कार्य को करने की योग्यता के लाभ को प्रायोग्यलब्धि कहते हैं।

प्र.1237 करणलब्धि किसे कहते हैं?

उत्तर पंचम लब्धि की प्राप्ति के समय आत्मा के अध:करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रूप परिणाम उत्पन्न होते हैं, जिस कारण सम्यक्त्व के योग्य भव्यात्मा की तीनों करणों में क्रमश: निर्मल, निर्मलतर और निर्मलतम अवस्था होकर सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जाती है, ऐसी सम्यक्त्व के पूर्व की अन्तिम लब्धि का नाम करण लब्धि कहलाता है।

प्र.1238 प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति किस तरह से होती है?

उत्तर अनिवृत्तिकरण का जो अन्तर्मुहूर्त्त काल है उसके व्यतीत होते हुए जब एक भाग काल शेष रहता है तब प्रथम सम्यक्त्व के अभिमुख हुआ अनादि मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व का अन्तरकरण करता है और सादि मिथ्यादृष्टि जीव दर्शन मोहनीय का अन्तरकरण करता है। वह सत्ता में स्थित मिथ्यात्व प्रकृति के द्रव्य को सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति रूप परिणमाता है, इस विधि से प्रथमोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। (क.प्र.)

प्र.1239 प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में क्या मरण होना सम्भव है?

उत्तर नहीं; प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में किसी जीव का मरण नहीं होता है।

प्र.1240 प्रथमोपशम सम्यक्त्व के छूटने पर क्या अवस्था होती है?

उत्तर उपशम सम्यक्त्व का अन्तर्मुहूर्त्त काल व्यतीत होने पर अनादि मिथ्यादृष्टि के तो मिथ्यात्व का उदय हो जाता है, तथा सादि मिथ्यादृष्टि या तो मिथ्यादृष्टि होकर वेदक (क्षायोपशामिक) सम्यक्त्व अथवा उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करता है या सम्यग्मिथ्यादृष्टि होकर वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त

करता है।

प्र.1241 अन्तरकरण किसको कहते हैं?

उत्तर जिस कर्म का अन्तरकरण करना हो उसकी प्रथम स्थिति और द्वितीय स्थिति को छोड़कर मध्यवर्ती अन्तर्मुहूर्त्त मात्र स्थिति के निषेकों का अभाव करने को अन्तरकरण कहते हैं।

प्र.1242 मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व का अन्तरकरण कैसे करता है और उसे कितना काल लगता है?

उत्तर मिथ्यादृष्टि जब मिथ्यात्व कर्म का अन्तरकरण करता है, तब उसे अन्तर्मुहूर्त्त काल लगता है। वह अनादिकाल से उदय में आने वाले मिथ्यात्व कर्म को अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण स्थिति सम्बन्धी निषेकों को छोड़कर उससे ऊपर के अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण स्थिति के निषेकों को अपने स्थान से उठाकर कुछ निषेकों को प्रथम स्थिति (नीचे की स्थिति) सम्बन्धी निषेकों में मिला देता है और कुछ निषेकों को द्वितीय स्थिति (ऊपर की स्थिति) सम्बन्धी निषेकों में मिला देता है। इस तरह वह तब तक करता रहता है जब तक अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण स्थिति के पूरे निषेक समाप्त न हो जावें। जब मध्यवर्ती समस्त निषेक ऊपर की अथवा नीचे की स्थिति में दे दिये जाते हैं और प्रथम स्थिति तथा द्वितीय स्थिति के बीच का अन्तरायाम मिथ्यात्व कर्म के निषेकों से सर्वथा शून्य हो जाता है तब अन्तरकरण पूर्ण हो जाता है।

प्र.1243 वेदक या क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर अनन्तानुबन्धी कषाय का अप्रशस्त उपशम अथवा विसंयोजन होने पर और मिथ्यात्व तथा सम्यक् मिथ्यात्व प्रकृति का प्रशस्त उपशम या अप्रशस्त उपशम अथवा क्षयोन्मुख होने पर तथा देशघाती सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होने पर जो तत्त्वार्थ श्रद्धान होता है उसे वेदक सम्यक्त्व कहते हैं। इसी को क्षायोपशमिक सम्यक्त्व भी कहते हैं। क्योंकि सर्वघाती अनन्तानुबन्धी कषाय मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व का उदयाभाव रूप क्षय तथा सदवस्था रूप उपशम होने पर और देशघाती सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होने पर वेदक सम्यक्त्व होता है। इससे इसी का दूसरा नाम क्षायोपशमिक सम्यक्त्व है।

प्र.1244 अप्रशस्त उपशम या देशोपशम किसे कहते हैं?

उत्तर जिसमें विवक्षित प्रकृति उदय आने योग्य तो न हो किन्तु उसका स्थिति अनुभाग घटाया बढ़ाया जा सके अथवा संक्रमण वगैरह किये जा सके उसे अप्रशस्त उपशम या देशोपशम कहते हैं।

प्र.1245 प्रशस्त उपशम या सर्वोपशम किसको कहते हैं?

उत्तर जिसमें विवक्षित प्रकृति न तो उदय आने योग्य ही हो और न उसका स्थिति, अनुभाग घटाया जा सके तथा न संक्रमण वगैरह ही किया जा सके उसे प्रशस्त उपशम या सर्वोपशम कहते हैं।

प्र.1246 वेदक सम्यग्दर्शन जीव के साथ कितने काल तक बना रह सकता है?

उत्तर वेदक सम्यग्दर्शन जीव के साथ जघन्य से अन्तर्मुहूर्त्त तक और उत्कृष्ट से छियासठ सागरोपम काल तक बना रह सकता है।

प्र.1247 क्षायिक सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का क्रम किस प्रकार है?

उत्तर असंयत, देशसंयत, प्रमत्तसंयत अथवा अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती वेदक सम्यग्दृष्टि मनुष्य सर्वप्रथम तो अध:करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के अन्त में अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का विसंयोजन करता है अर्थात् उन्हें बारह-कषाय और नव-नोकषाय रूप कर देता है। उसके पश्चात् दर्शन मोहनीय की क्षपणा का आरम्भ करता है।

प्र.1248 भव्यजीव दर्शन मोहनीय की क्षपणा का आरम्भ कहाँ करता है?

उत्तर इस विषय के समाधान में तीन मत उपस्थित हैं-

१. दर्शनमोहनीय कर्म के क्षय होने का प्रारम्भ केवली के मूल में कर्मभूमि का उत्पन्न होने वाला मनुष्य ही करता है तथा निष्ठापन सर्वत्र होता है। (गो.सा.जी.का.गाथा-६४८)

२. ढाई द्वीप-समुद्रों में स्थित पन्द्रह कर्म भूमियों में जहाँ जिस काल में केवली तीर्थंकर होते हैं वहाँ उस काल में कर्मभूमिया मनुष्य (पुरुष) ही दर्शन मोहनीय की क्षपणा का आरम्भ करता है। (ष.खं. ६/१,९-८/सू.१२)

३. दर्शन मोहनीय कर्म के क्षय का प्रारम्भ कर्म भूमिज मनुष्य; जिस काल में केवली होते हैं या श्रुतकेवली उनके पादमूल में ही करता है, किन्तु निष्ठापन चारों गतियों में हो सकता है। (ध.६/१,९-८,११/२४६/१)

प्र.1249 दर्शन मोहनीय की क्षपणा का प्रस्थापक कौन कहलाता है?

उत्तर दर्शन मोहनीय की क्षपणा के लिए किये गए अध:करण के प्रथम समय से लेकर जब तक जीव मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के द्रव्य को सम्यक्त्व प्रकृति रूप संक्रमण करता है तब तक उसे दर्शन मोहनीय की क्षपणा का प्रस्थापक कहते हैं।

प्र.1250 भव्यजीव दर्शन मोहनीय की क्षपणा का निष्ठापक कब कहलाता है?

उत्तर कृतकृत्य वेदक होने के प्रथम समय से लेकर आगे के समयों में दर्शनमोह की क्षपणा करने वाला जीव निष्ठापक कहलाता है।

प्र.1251 कृतकृत्य वेदक किसको कहते हैं?

उत्तर दर्शन मोहनीय की क्षपणा के लिए किये गये तीन करणों में से अनिवृत्तिकरण के अन्त समय में सम्यक्त्व प्रकृति के अन्तिम फालि के द्रव्य को नीचे के निषेकों में क्षेपण करने के पश्चात् अनन्तर समय से लगाकर अनिवृत्तिकरण काल के संख्यातवें भाग मात्र अन्तर्मुहूर्त्त कालपर्यन्त जीव कृतकृत्य वेदक कहा जाता है क्योंकि जिसने करने योग्य कार्य कर लिया है उसे कृतकृत्य कहते हैं सो दर्शन मोह की क्षपणा के योग्य कार्य अनिवृत्तिकरण काल के अन्त समय में हो ही जाता है। अत: वह कृतकृत्य वेदक कहा जाता है।

अथवा- क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के सम्मुख होता हुआ मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धि चतुष्क इन छह प्रकृतियों का क्षय कर चुकता है, मात्र सम्यक्त्व प्रकृति का उदय जब शेष रह जाता है तब वह कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि कहलाता है। यह सब कार्य

मात्र अन्तर्मुहूर्त्त में होता है।

प्र.1252 भव्यजीव दर्शन मोह की क्षपणा का निष्ठापन कहाँ करता है?

उत्तर दर्शन मोहनीय की क्षपणा का आरम्भ करने वाला मनुष्य कृतकृत्य वेदक होने के पश्चात् आयु का क्षय होने से यदि मरण को प्राप्त होता है तो सम्यक्त्व ग्रहण करने से पहले बाँधी हुई आयु के अनुसार चारों गतियों में उत्पन्न होकर दर्शनमोहनीय की क्षपणा को पूर्ण करता है। उसमें इतना विशेष है कि कृतकृत्य वेदक के काल के चार भाग करके उनमें से यदि प्रथम भाग में मरण करे तो नियम से देव पर्याय में ही जन्म लेता है, दूसरे भाग में मरण करे तो देव या मनुष्य पर्याय में उत्पन्न होता है, तीसरे भाग में मरण करे तो देव, मनुष्य या तिर्यञ्च पर्याय में उत्पन्न होता है और चौथे भाग में मरण करे तो चारों गतियों में से किसी भी गति में जन्म लेता है।

प्र.1253 क्षायिक सम्यग्दृष्टि की संसार में रहने की कितनी स्थिति होती है?

उत्तर क्षायिक सम्यग्दृष्टि की संसार में रहने रूप भवस्थिति जघन्य से अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट रूप से चार भव या आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त्त कम दो पूर्व कोटी और तैंतीस सागरोपम वर्ष है।

प्र.1254 क्षायिक सम्यग्दृष्टि की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति कैसे घटित होती है?

उत्तर उपशम या क्षयोपशम सम्यग्दर्शन की तरह क्षायिक सम्यग्दर्शन उत्पन्न होकर छूटता नहीं है। फिर भी क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न होने के पश्चात् क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव के संसार में रहने की अपेक्षा से क्षायिक सम्यक्त्व की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त कही है, क्योंकि क्षायिक सम्यग्दृष्टि बनते ही मुनि बन एवं केवलज्ञान को भी पाकर मोक्ष को पा लेता है तब अन्तर्मुहूर्त्त की भवस्थिति पूर्ण हो जाती है और क्षायिक सम्यक्त्व अखण्ड रहते हुए सिद्धों की अनन्तकालिक स्थिति प्रारम्भ हो जाती है।

उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त-आठवर्ष कम दो पूर्व कोटी और तैंतीस सागरोपम वर्ष है क्योंकि क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम तो उस ही भव से मोक्ष पा लेता है जिस भव से उसने दर्शन मोह का क्षय करके क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त किया है। यदि क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करने से पूर्व उसने परभव सम्बन्धी आयु बाँध ली हो तो वह तीसरे भव से मुक्त हो जाता है और यदि उसने मनुष्य या तिर्यञ्च की आयु बाँधी हो तो चौथे भव में अवश्य मुक्त हो जाता है। भव के साथ सम्यक्त्व की स्थिति पूर्ण होते हुये भी सम्यक्त्व मोक्षावस्था में साथ चला जाता है और कभी क्षायिक सम्यक्त्व का अभाव नहीं होता है।

प्र.1255 क्षायिक सम्यक्त्व किन गुणस्थानों में रहता है?

उत्तर क्षायिक सम्यक्त्व; चतुर्थ से चौदहवें गुणस्थान तक रहता है। (और गुणस्थानातीत सिद्धों में भी रहता है।)

प्र.1256 क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कितने गुणस्थानों में पाया जाता है?

उत्तर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक पाया जाता है।

प्र.1257 औपशमिक सम्यक्त्व कितने गुणस्थानों में रहता है?

उत्तर १. प्रथमोपशम सम्यक्त्व चौथे से सातवें गुणस्थान तक होता है।

२. द्वितीयोपशम सम्यक्त्व चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है।

प्र.1258 द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कब, किसको और कैसे उत्पन्न होता है?

उत्तर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व उपशम श्रेणी चढ़ने के सम्मुख जीव को सातवें गुणस्थान में उत्पन्न होता है एवं क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन के पश्चात् उत्पन्न होता है। दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों के उपशम के साथ-साथ चार अनन्तानुबन्धी कषायों के विसंयोजन अर्थात् अनन्तानुबन्धी का अप्रत्याख्यानादि रूप परिणमन होने से द्वितीयोपशम सम्यक्त्व प्रकट होता है।

प्र.1259 द्वितीयोपशम सम्यक्त्व जब श्रेणी चढ़ने के निमित्त सातवें गुणस्थान में उत्पन्न होता है और उपशम श्रेणी आठवें से ग्यारहवें गुणस्थान तक होती है तब द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को चौथे, पाँचवे और छठे गुणस्थान में क्यों बतलाया गया है?

उत्तर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व पूर्वक श्रेणी का आरोहण करके जब जीव ग्यारहवें गुणस्थान से नीचे की ओर गिरता है तब छठे, पाचवें एवं चौथे गुणस्थान में भी पाया जाता है। इस अपेक्षा से द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन चतुर्थ गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान पर्यन्त पाया जाता है।

प्र.1260 द्वितीयोपशम सम्यग्दर्शन में मरण कब नहीं होता तथा मरण जब होता है तब कौन-सी गति होती है?

उत्तर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सहित उपशम श्रेणी पर चढ़ने वाले जीवों का अपूर्वकरण गुणस्थान में प्रथम पाये में (भाग में) मरण नहीं होता है, सर्व गुणस्थानों (४ से ११ गु. तक) द्वितीयोपशम के काल में मरण होने पर जीव नियम से देवगति में जन्म लेता है।

प्र.1261 किस गति में कितने सम्यक्त्व होते हैं?

उत्तर प्रथम पृथ्वी में तीनों सम्यक्त्व पाये जाते हैं। किन्तु छह पृथ्वियों में क्षायिक सम्यक्त्व नहीं पाया जाता। तिर्यञ्चों, मनुष्यों और देवों में तीनों सम्यक्त्व पाये जाते हैं, किन्तु तिर्यंचनियों में क्षायिक सम्यक्त्व नहीं पाया जाता है। इसी तरह भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवों में तथा देवियों में क्षायिक सम्यक्त्व नहीं पाया जाता है।

प्र.1262 मिश्र सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से जहाँ ऐसे परिणाम हों जिन्हें न सम्यक्त्व रूप कह सकें और न मिथ्यात्व रूप अर्थात् जिस जीव के तत्त्व के विषय में श्रद्धान और अश्रद्धान रूप परिणाम हों, उसे मिश्र सम्यक्त्व कहते हैं। यह तीसरे गुणस्थान का नाम है।

प्र.1263 सासादन सम्यक्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में कम-से-कम एक समय और अधिक से अधिक छहआवली प्रमाण काल शेष रहने पर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ में से किसी एक प्रकृति का उदय आ जाने पर जिसने सम्यक्त्व की विराधना कर दी है, किन्तु मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं हुआ है उन आसादन रूप परिणामों को सासादन सम्यक्त्व कहते हैं। सासादन यह द्वितीय गुणस्थान का नाम है।

ऐसा जीव निश्चित ही मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त करता है।

प्र.1264 मिथ्यात्व मार्गणा क्या है और इस भेद को सम्यक्त्व मार्गणा के भेदों में क्यों कहा है?

उत्तर जो जीव जिनेन्द्र देव के द्वारा देशित आप्त, आगम और पदार्थ का श्रद्धान नहीं करता है, परन्तु मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से कुगुरुओं के कहे हुए या बिना कहे हुए भी पदार्थ का विपरीत श्रद्धान करता है उसे मिथ्यात्व कहते हैं। इसी का नाम मिथ्यात्व गुणस्थान है। यह मिथ्यात्व ही सम्यक्त्व की पूर्वापर (सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्व की व सम्यक्त्व छूटने के बाद की) अवस्था है अत: इसे भी उपचार से सम्यक्त्व मार्गणा में गर्भित किया गया है।

प्र.1265 संज्ञी जीव की पहचान हेतु जो शिक्षा, क्रिया, उपदेश और आलाप कहे जाते हैं उनका अर्थ क्या है?

उत्तर संज्ञी जीव की पहचान के चार हेतुओं का अर्थ हैं- १.शिक्षा-हित का ग्रहण और अहित का त्याग जिसके द्वारा किया जा सके उसको शिक्षा कहते हैं। २. क्रिया- इच्छापूर्वक हाथ पैर आदि के चलाने को क्रिया कहते हैं। ३. उपदेश- वचन अथवा चाबुकादि के द्वारा बताये हुए कर्त्तव्य को पर-उपदेश कहते हैं। और ४. आलाप- श्लोकादि के पाठ को आलाप कहते हैं। जो इन शिक्षादिकों को मन के अवलम्बन से ग्रहण-धारण करता है उसको संज्ञी कहते हैं और जिन जीवों में यह लक्षण घटित नहीं होता उनको असंज्ञी जीव कहते हैं।

प्र.1266 संज्ञी-असंज्ञी की पहचान और किस तरह से होती है?

उत्तर जो जीव प्रवृत्ति करने के पूर्व अपने कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का विचार कर तथा तत्त्व और कुतत्त्व या अतत्त्व का स्वरूप समझ सके और उसका जो नाम रखा गया हो उस नाम के द्वारा बुलाने पर आ सके, उन्मुख हो अथवा उत्तर दे सके उसको समनस्क या संज्ञी जीव कहते हैं और इससे जो विपरीत है उसको अमनस्क या असंज्ञी जीव कहते हैं।

प्र.1267 संज्ञी मार्गणा में कितने गुणस्थान होते हैं?

उत्तर संज्ञी जीव के प्रथम से बारह गुणस्थान तक होते हैं। तथा असंज्ञी जीव का प्रथम गुणस्थान ही होता है। केवली संज्ञी-असंज्ञी उपदेश से रहित है।

(विभिन्न आचार्यों ने असंज्ञी जीवों में भी निर्वत्यपर्याप्त अवस्था में दूसरा सासादन गुणस्थान भी माना है इस तरह उनके मत में असंज्ञी जीवों के दो गुणस्थान मिथ्यात्व और सासादन होते हैं। (गो.क. गा. ११३, पं.सं.पृ.७५)

प्र.1268 तेरहवें गुणस्थान के जीव संज्ञी मार्गणा में क्यों नहीं है?

उत्तर मन भी ईषत् (कथंचित्) इन्द्रिय है और तेरहवें गुणस्थानवर्ती केवली भगवान् अतिन्द्रिय हैं, वे सर्व पदार्थों को आत्मा के केवलज्ञान से जानते हैं उन्हें मन की आवश्यकता नहीं, वे इन्द्रियों के प्रयोग से रहित हैं अत: उन्हें संज्ञी मार्गणा में नहीं लिया गया है। किसी एक मत से पंचेन्द्रिय छदमस्थों के मन एक अस्थायी रचना है। प्रमाण- (१) जैनेन्द्र सि.को.भा. ४, देखें मन/(२) देखिये-रा.वा./५/१८/६/४६८/३०

प्र.1269 आहारक होते समय जीव किसके योग्य क्या ग्रहण करता है?

उत्तर शरीर नामक नामकर्म के उदय से देह (औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इनमें से यथासंभव अर्थात् जब आवश्यक हो, किसी भी शरीर तथा वचन और द्रव्यमन रूप) बनने योग्य नोकर्म वर्गणाओं का जो ग्रहण होता है उसको आहार कहते हैं। (जी.का.गा.६६४)

औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीरों में से किसी भी एक शरीर के योग्य वर्गणाओं को तथा वचन और मन के योग्य वर्गणाओं को यथा योग्य (आवश्यक) काल में जीव आहरण (ग्रहण) करता है अतः आहारक कहलाता है। (गो.सा.जी.का. ६६५)

प्र.1270 कौन-से जीव अनाहारक होते हैं, और कौन-से जीव आहारक होते हैं?

उत्तर विग्रहगति को प्राप्त होने वाले चारों गति सम्बन्धी जीव, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात करने वाले सयोग केवली, अयोगकेवली, समस्त सिद्ध इतने जीव तो अनाहारक होते हैं और इनको छोड़कर शेष सभी जीव आहारक होते हैं।

प्र.1271 आहार मार्गणा में कितने गुणस्थान होते हैं?

उत्तर आहारक जीव के प्रथम से तेरहवें गुणस्थान तक होते हैं। और अनाहारक जीव के प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ, त्रयोदश और चतुर्दशवाँ ऐसे पाँच गुणस्थान होते हैं।

प्र.1272 आहारक का जघन्य काल कितना है और वह कहाँ घटित होता है?

उत्तर आहारक का जघन्य काल तीन समय कम श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण है। विग्रह गति के तीन समय कम, श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण यह आहारक का जघन्य काल लब्ध्यपर्याप्तक सूक्ष्म निगोदिया जीव के घटित होता है।

प्र.1273 अनाहारक का जघन्य और उत्कृष्ट काल कितना है और वह कहाँ घटित होता है?

उत्तर अनाहारक का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तीन समय है। यह काल क्रमशः ऋजुगति में और तीन मोड़े वाली विग्रहगति में घटित होता है।

प्र.1274 सिद्ध गति में कौन-कौन-सी मार्गणाओं का अभाव है?

उत्तर सिद्धों में सिद्धगति के साथ केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक सम्यक्त्व और अनाहारक मार्गणाओं को छोड़कर शेष मार्गणाओं का अभाव है।

माडल-प्रश्न-पत्र

सम्यग्ज्ञान-भूषण व सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु त्रैमासिक धार्मिक प्रश्न-पत्र

समय : ...... दिन | अंक : 100

V 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। V सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। V उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। V उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. आगम किसे कहते हैं?

प्र. 2. आगम के छह विशेषण कौन-से हैं?

प्र. 3. आगम के उपदेश में नयार्थ का अर्थ क्या है?

प्र. 4. आगम पद्धति किसे कहते हैं?

प्र. 5. शास्त्र अध्ययन व वीतराग की देशना का पात्र कौन है?

प्र. 6. धर्मोपदेष्टा के कौन-कौन-से गुण होते हैं?

प्र. 7. श्रोता का लक्षण क्या है?

प्र. 8. जिनवाणी में उपदेश की पद्धति को क्या कहते हैं?

प्र. 9. एक पुरुष या त्रेसठ शलाका पुरुषों का कथन किस अनुयोग में होता है?

प्र.10. त्रेसठ शलाका पुरुष कब उत्पन्न होते हैं?

प्र.11. जो भव्य जीवों को संसार पार लगावे उसे क्या कहते हैं?

प्र.12. पुरुषार्थ का वास्तविक शाब्दिक अर्थ क्या है?

प्र.13. काम-पुरुषार्थ को पुरुष कैसे सार्थक बनाता है?

प्र.14. मोक्ष पाने के लिए कौन-सा पुरुषार्थ किस तरह करना चाहिए?

प्र.15. ऋषभ देव तीर्थंकर ने मनुष्यों को कौन-कौन-सी शिक्षाएँ दीं?

प्र.16. कल्पवृक्ष का लक्षण क्या है?

प्र.17. कुलकर या मनु किन्हें कहते हैं?

प्र.18. शलाका पुरुषों का मोक्ष-प्राप्ति सम्बन्धी नियम क्या है?

प्र.19. भोग-भूमि के जीव मरणोपरान्त कौन-सी गति को प्राप्त करते हैं?

प्र.20. धर्म-पुरुषार्थ में कौन-कौन-से प्रमुख कार्य करना चाहिए?

आधार:आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-'**आगम-अनुयोग**', (प्रश्नोत्तर प्रदीप)

प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन मंथन कर उत्तर पुस्तिका की पूर्ति करे।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....

पिता/माता/पति का नाम ....

पता ....

....

मोबाईल/फोन नं. ....

(माडल-प्रश्न-पत्र)

सम्यग्ज्ञान-भूषण व सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु त्रैमासिक धार्मिक प्रश्न-पत्र

समय : ... दिन | अंक : 100

❖ 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। ❖ सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। ❖ उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। ❖ उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. प्रथम तीर्थंकर के समय सौधर्मेन्द्र अयोध्या की रचना किस तरह से करता है?

प्र.2. निर्मल सम्यग्दृष्टि को किस तरह की भावना से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है?

प्र.3. तीर्थंकरों की जन्म-नगरी अयोध्या के विभिन्न नाम बतलाइये?

प्र.4. महाराजा वृषभदेव के निवास भवन का नाम क्या था?

प्र.5. महाराजा नाभिराज के निवासार्थ कौन-से भवन की रचना की गई थी?

प्र.6. ऋषभदेव ने मुनि-दीक्षा किस तरह के वैराग्य भाव से धारण की थी?

प्र.7. रत्नों से सम्पन्न तीर्थंकरों के लिए देवों द्वारा रत्नों की वर्षात् क्यों की गई?

प्र.8. तीर्थंकर मुनिराज के पास पिच्छिका और कमण्डलु क्यों नहीं होते?

प्र.9. दीक्षा धारण के पीछे ऋषभदेव तीर्थंकर का क्या प्रयोजन था?

प्र.10. तीर्थंकरों के जन्माभिषेक हेतु क्षीरसागर का जल ही क्यों सुयोग्य माना गया है?

प्र.11. स्वयंभू यह विशेषण तीर्थंकरों के लिए क्यों लगाया जाता है?

प्र.12. अकृत्रिम जिनालयों की प्रतिमायें कब-से व किन-से प्रतिष्ठित रहती हैं?

प्र.13. सुदर्शन मेरु पर्वत पर चारों वनों सम्बन्धी कितने-कितने प्रतिमायें होती हैं?

प्र.14. कौन-से परमेष्ठी की प्रतिमाएँ अकृत्रिम जिनालयों में रहती हैं?

प्र.15. पंच मेरु सम्बन्धी कितने जिनालयों में कितनी-कितनी प्रतिमायें होती हैं?

प्र.16. अकृत्रिम जिनालयों की प्रतिमायें किस आकार, रूपादि वाली होती हैं?

प्र.17. ऐरावत गज पर विराजित कर मेरु पर ले जाते समय प्रभु की इन्द्र किस तरह सेवा करता है?

प्र.18. शची इन्द्राणी तीर्थंकर प्रभु की किस तरह की सेवा कर सातिशय पुण्यार्जन करती है?

प्र.19. प्रथम मेरु पर्वत कहाँ पर स्थित है और किस विशेषता को धारण करता है?

प्र.20. तीर्थंकर को जन्म देने वाली माता की सेवा कितनी व कौन-कौन-सी देवियाँ करती हैं?

आधार:आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-**'आगम-अनुयोग'**, (प्रश्नोत्तर प्रदीप)

प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन-मंथन कर उत्तर-पुस्तिका की पूर्ति करें।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....

पिता/माता/पति का नाम ....

पता ....

....

मोबाईल/फोन नं. ....

सम्यग्ज्ञान-भूषण व सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु त्रैमासिक धार्मिक प्रश्न-पत्र

समय : .... दिन | अंक : 100

❖ 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। ❖ सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। ❖ उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। ❖ उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. तीर्थंकर ऋषभदेव के साथ कितने हजार राजाओं ने दीक्षा ली थी?

प्र.2. तीर्थंकर ऋषभदेव ने दीक्षा लेते ही कितने माह का योग धारण किया था?

प्र.3. भ. आदिनाथ के लिए विधिवत् आहार कितने दिनों के बाद कब प्राप्त हुआ ?

प्र.4. तीर्थंकर केवली की दिव्य-ध्वनि कितनी भाषाओं में खिरती है?

प्र.5. समवसरण में प्राणियों के लिए कौन-सी बाधाएँ उत्पन्न नहीं होती?

प्र.6. तीर्थंकर ऋषभदेव के समवसरण में कितने श्रुतकेवली विराजमान थे?

प्र.7. समवसरण में एक अपेक्षा से ग्यारह भूमियाँ कौन-सी होती हैं?

प्र.8. सौधर्मेन्द्र ने किस देव को ऐरावत गज बनने हेतु आज्ञा प्रदान की थी?

प्र.9. विदेह क्षेत्रस्थ तीर्थंकरों के समवसरण का विस्तार कितना होता है?

प्र.10. तीर्थंकर ऋषभदेव का कर्मभूमि की व्यवस्था में कितना गृहस्थ जीवन व्यतीत हुआ?

प्र.11. तीर्थंकर ऋषभदेव मुनीश्वर के छदमस्थ अवस्था में कितने वर्ष व्यतीत हुए?

प्र.12. केवलज्ञान होते ही तीर्थंकर धरातल से कितने ऊपर उठ जाते हैं?

प्र.13. साक्षात् तीर्थंकर केवली के दर्शन कौन-से जीवों को नहीं हो पाते?

प्र.14. सेविका रूप विद्याएँ गृहस्थों के जीवन में कौन-सी अवस्था तक रह सकती हैं?

प्र.15. संयमी जनों द्वारा असंयमी देवी-देवताओं को रखना कौन-सा अनर्थ है?

प्र.16. भ. आदिनाथ के लिए राजा श्रेयांस ने किन नव विधियों से आहार दिया था?

प्र.17. तीर्थंकर ऋषभदेव का प्रथमाहार किस नगर में किसके द्वारा सम्पन्न हुआ?

प्र.18. तीर्थंकर दीक्षा लेते ही कितनी ऋद्धियों के स्वामी हो जाते हैं?

प्र.19. भरत चक्रवर्ती ने राजाश्रेयांस को क्यों और कौन-से तीन विशेषणों से पुकारा था?

प्र.20. भ. आदिनाथ के साथ कितने मुनियों ने सिद्धालय की ओर गमन किया था?

आधार:आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-'**आगम-अनुयोग**', (प्रश्नोत्तर प्रदीप)

प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन-मंथन कर उत्तर-पुस्तिका की पूर्ति करें।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....

पिता/माता/पति का नाम ....

पता ....

....

मोबाईल/फोन नं. ....

सम्यग्ज्ञान-भूषण व सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु त्रैमासिक धार्मिक प्रश्न-पत्र

समय : .... दिन | अंक : 100

❖ 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। ❖ सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। ❖ उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। ❖ उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. भगवान बाहुबली के लिए मोक्ष की प्राप्ति किसके पूर्व व किसके बाद हुई थी?
प्र. 2. बलभद्र महापुरुष किन्हें कहते हैं?
प्र. 3. कामदेव बाहुबली और अनन्तवीर्य ने मोक्षपथ किस कारण अपनाया था?
प्र. 4. कामदेव महापुरुष किन्हें कहते हैं?
प्र. 5. नारायण और प्रतिनारायण में क्या विशेषता होती है?
प्र. 6. नारायण महापुरुष किन्हें कहते हैं?
प्र. 7. चक्रवर्ती महापुरुष कौन कहलाते हैं?
प्र. 8. चक्रवर्ती के दशांगभोग कौन-से हैं?
प्र. 9. चक्रवर्ती के चौदह रत्नों के नाम क्या हैं?
प्र.10. चक्रवर्ती के चूड़ामणि रत्न की क्या विशेषता है?
प्र.11. चक्रवर्तियों की नवनिधियाँ कौन-सी थीं?
प्र.12. चक्रवर्तियों की नव निधियों का आकार व प्रमाण कैसा था?
प्र.13. चक्रवर्ती की नवनिधियों की रक्षा कौन करता है?
प्र.14. चक्रवर्ती की सर्व-रत्न निधि क्या फल देती है?
प्र.15. राजाओं के चार कर्त्तव्य कौन-से होते हैं?
प्र.16. चक्रवर्ती के अधीनस्थ कितने देश होते हैं?
प्र.17. चक्रवर्ती के राज्य में कितनी गौ-शालाएँ होती हैं?
प्र.18. चक्रवर्ती के शंख, भेरी, पटहों की संख्या व उनकी शब्द-श्रवण दूरी कितनी होती है?
प्र.19. भरत चक्रवर्ती के कौन-से पुत्र ने मिथ्यामत के प्रचार से भवभ्रमण कर कब मोक्ष पाया था?
प्र.20. भरत चक्रवर्ती के 923 पुत्रों ने मोक्ष पुरुषार्थ को किस तरह सफल बनाया था?

आधार:आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-**'आगम-अनुयोग'**, (प्रश्नोत्तर प्रदीप)
प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन-मंथन कर उत्तर-पुस्तिका की पूर्ति करें।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....
पिता/माता/पति का नाम ....
पता ....
....
मोबाईल/फोन नं. ....

सम्यग्ज्ञान-भूषण व सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु त्रैमासिक धार्मिक प्रश्न-पत्र

समय : .... दिन | अंक : 100

❖ 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। ❖ सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। ❖ उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। ❖ उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. योजन किसे कहते हैं?
प्र.2. अंगुल के प्रकार बताइये?
प्र.3. सागरोपम और सागर किसे कहते हैं?
प्र.4. राजू की उपमा क्या है?
प्र.5. पल्य के कितने भेद हैं?
प्र.6. युग किसे कहते हैं?
प्र.7. पूर्व किसे कहते हैं?
प्र.8. अन्तर्मुहूर्त्त किसे कहते हैं?
प्र.9. अर्धपुद्गल परिवर्तन काल को अनन्त क्यों कहा है?
प्र.10. संख्यात, असंख्यात और अनन्त के उदाहरण क्या हैं?
प्र.11. समय किसे कहते हैं?
प्र.12. घन क्षेत्र फल किसे कहते हैं?
प्र.13. व्यास या परिधि किसे कहा जाता है?
प्र.14. घनमूल किसे कहते हैं?
प्र.15. वर्गमूल क्या कहलाता है?
प्र.16. परिकर्माष्टक किन्हें बोलते हैं?
प्र.17. गुणकार किसे कहते हैं?
प्र.18. भागहार किसे कहा जाता है?
प्र.19. करणानुयोग का लक्षण क्या है?
प्र.20. लोक और अलोक किसे कहा जाता है?

आधार:आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-'**आगम-अनुयोग**', (प्रश्नोत्तर प्रदीप)
प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन-मंथन कर उत्तर-पुस्तिका की पूर्ति करें।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....
पिता/माता/पति का नाम ....
पता ....
....
मोबाईल/फोन नं. ....

सम्यग्ज्ञान-भूषण व सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु त्रैमासिक धार्मिक प्रश्न-पत्र

समय : .... दिन | अंक : 100

❖ 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। ❖ सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। ❖ उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। ❖ उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. लोक का मध्यभाग कौन-सा कहलाता है ?

प्र.2. लोक कहाँ पर स्थित है?

प्र.3. लोक की ऊँचाई कितनी है?

प्र.4. सम्पूर्ण लोक को किसने बनाया?

प्र.5. त्रसनाड़ी में त्रस जीवों से रहित स्थान कौन-कौन-सा है?

प्र.6. त्रस नाड़ी कहाँ है और वह कितनी लम्बी, चौड़ी और ऊँची हैं?

प्र.7. नरक और नारकी किसे कहते हैं?

प्र.8. रत्नप्रभा नामक पृथ्वी के कितने भाग हैं?

प्र.9. कौन-कौन-से जीव कौन-कौन-सी नरक पृथ्वियों में जन्म ले सकते हैं?

प्र.10. कौन-कौन-से जीव नरकों में जन्म नहीं लेते?

प्र.11. तीर्थंकर प्रकृति-बंध करने वाला जीव किस कारण नरक में जाता है ?

प्र.12. नरकों का वातावरण कैसा है?

प्र.13. नरकों से निकले नारकी किन-किन अवस्थाओं में पैदा नहीं होते हैं?

प्र.14. तीर्थंकर प्रकृति बंध वाला जीव कौन-सी नरक-पृथ्वी तक जा सकता है?

प्र.15. नरक से निकला जीव कौन-से पदों को धारण नहीं कर सकता है?

प्र.16. मानुषोत्तर पर्वत किसे कहते हैं?

प्र.17. सर्व द्वीप और समुद्रों के बीच में कौन-सा द्वीप किस आकार में स्थित है?

प्र.18. तीर्थंकर के गर्भ में आने के छह माह पूर्व नरक में उसकी स्थिति क्या होती है?

प्र.19. ढाई द्वीप किसे कहते हैं?

प्र.20. सर्व द्वीप और समुद्रों का विस्तार कितना है?

आधार:आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-'**आगम-अनुयोग**', (प्रश्नोत्तर प्रदीप)

प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन-मंथन कर उत्तर-पुस्तिका की पूर्ति करें।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....

पिता/माता/पति का नाम ....

पता ....

....

मोबाईल/फोन नं. ....

सम्यग्ज्ञान-भूषण व सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु त्रैमासिक धार्मिक प्रश्न-पत्र

समय : .... दिन | अंक : 100

❖ 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। ❖ सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। ❖ उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। ❖ उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. स्वयंप्रभ पर्वत कहाँ पर स्थित है ?
प्र. 2. कहाँ, कौन, कब नंदीश्वर द्वीप में महापूजा किया करते हैं ?
प्र. 3. स्वयंभू रमण समुद्र में कौन-से जीव पाये जाते हैं ?
प्र. 4. ढाई द्वीप के बाहर स्वयंप्रभ पर्वत तक स्थित समुद्रों में कौन से जीव होते हैं ?
प्र. 5. कल्पकाल किसे कहते हैं ?
प्र. 6. युग का प्रारम्भ किस काल में होता है ?
प्र. 7. भोग भूमि के मनुष्य किस कार्य से रहित होते हैं ?
प्र. 8. दुषमा-सुषमा (वर्तमान काल) कब प्रारम्भ हुआ ?
प्र. 9. द्वादशांग के ज्ञाता पांच श्रुतकेवली कौन थे ?
प्र.10. भ. महावीर के उपरान्त हुए तीन अनुबद्ध केवली प्रभु के नाम क्या थे ?
प्र.11. अन्तिम अंगाशधर श्रुत ज्ञाता कौन-से आचार्य थे ?
प्र.12. भोग भूमिज मनुष्य कौन-सी कलाओं में निपुण होते हैं ?
प्र.13. पुष्पदन्त और भूतबली नामक महान आचार्यों द्वारा रचित ग्रन्थ कौन सा है ?
प्र.14. दुषमा नामक इस पंचम काल में अन्तिम अवधिज्ञानी मुनि कौन होंगे ?
प्र.15. इस पंचम काल में कौन-से अन्तिम मुकुटबद्ध राजा ने मुनि दीक्षा ली थी ?
प्र.16. विजयार्ध इस नाम की सार्थकता क्या है ?
प्र.17. म्लेच्छ खण्डों एवं विजयार्ध पर्वत पर काल परिवर्तन का क्या नियम है ?
प्र.18. विदेह क्षेत्र में कौन-सी अशुभ स्थितियों का अभाव होता है ?
प्र.19. तीर्थंकरों की एवं तीर्थंकर की माता की सेवा करने वाली देवियाँ कहाँ रहती हैं ?
प्र.20. भोग भूमि में प्राकृतिक सौन्दर्य किस तरह का होता है ?

आधार :आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-' **आगम-अनुयोग**', (प्रश्नोत्तर प्रदीप)
प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन-मंथन कर उत्तर-पुस्तिका की पूर्ति करें।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....
पिता/माता/पति का नाम ....
पता ....
....
मोबाईल/फोन नं. ....

सम्यग्ज्ञान-भूषण व सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु त्रैमासिक धार्मिक प्रश्न-पत्र

समय : .... दिन

अंक : 100

❖ 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। ❖ सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। ❖ उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। ❖ उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. वलयाकार स्वयंभूरमण समुद्र के आगे मध्यलोक में कौन-सी रचना व जीव होते हैं?
प्र.2. सम्मूर्च्छन जीव का लक्ष्य क्या है?
प्र.3. स्वयंभूरमण समुद्र में कौन-से एकेन्द्रिय जीव की कितनी उत्कृष्ट अवगाहना होती है?
प्र.4. सर्व जघन्य शरीर किन जीवों का होता है?
प्र.5. पृथक्त्व किसे कहते हैं?
प्र.6. स्वयंभूरमण समुद्र में सबसे जघन्य अवगाहना वाला जीव कौन-सा है?
प्र.7. बादर और सूक्ष्म जीवों का लक्षण क्या है?
प्र.8. जिह्वा इन्द्रिय का आकार किस तरह का होता है?
प्र.9. पृथ्वीकायिक जीवों का आकार किस तरह का होता है?
प्र.10. देवों में कौन-सा संस्थान पाया जाता है?
प्र.11. भवनवासी देवों का गमन किस निमित्त कहाँ तक होता है?
प्र.12. देव एक समय में कितनी दूरी तय कर सकता है?
प्र.13. असुरकुमार देव किस निमित्त कहाँ तक गमन करते हैं?
प्र.14. व्यन्तर देवों के निवास कहाँ पर होते हैं?
प्र.15. देवों का आहार किस तरह से और किस तरह का होता है?
प्र.16. भवनवासियों में असुरकुमार आदि देवों के मुकुटों में कौन-से चिह्न होते हैं?
प्र.17. देवगति के देव अत्यन्त शक्तिवान होते हैं तब वहाँ आत्मरक्ष क्यों होते हैं?
प्र.18. देवों के निवास स्थलों के नाम कौन-से होते हैं?
प्र.19. देवों की अपेक्षा मनुष्यों का शरीर उत्कृष्ट क्यों है?
प्र.20. देवों का दिव्य शरीर किस तरह निर्मित होता है?

आधार :आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-'**आगम-अनुयोग**', (प्रश्नोत्तर प्रदीप)
प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन-मंथन कर उत्तर-पुस्तिका की पूर्ति करें।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....
पिता/माता/पति का नाम ....
पता ....
....
मोबाईल/फोन नं. ....

सम्यग्ज्ञान-भूषण व सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु त्रैमासिक धार्मिक प्रश्न-पत्र

समय : .... दिन | अंक : 100

❖ 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। ❖ सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। ❖ उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। ❖ उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. ज्योतिषी देवों का गमन किस गति से होता है?
प्र.2. सूर्य, चन्द्रादि की किरणें किस स्वभाव वाली हैं?
प्र.3. सूर्य में रहने वाले देव की आयु कितनी होती है?
प्र.4. युग किसे कहते हैं, और युग का प्रारम्भ कब होता है?
प्र.5. स्वर्ग की दूरी मध्यलोक से कितनी है?
प्र.6. भरत क्षेत्र के तीर्थंकरों के आभूषण कौन-से स्वर्ग के मानस्तम्भ पर रहते हैं?
प्र.7. वैमानिक देवों सम्बन्धी पटलों की संख्या कितनी है?
प्र.8. स्वर्गों का सौधर्म आदि नाम क्यों है?
प्र.9. ग्रैवेयक क्यों कहते हैं? या ग्रैवेयक का अर्थ क्या है?
प्र.10. सौधर्म आदि इन्द्रों की प्रधानदेवी की सहयोगी देवियाँ कितनी होती हैं?
प्र.11. स्वर्गों में देव दर्शन की क्या व्यवस्था होती है?
प्र.12. देव पर्याय में एक भव में मोक्ष जाने वाले कौन-कौन से भव्य जीव हैं?
प्र.13. अनुदिश एवं अनुत्तर विमानों में क्या सम्यग्दृष्टि ही जन्म लेते हैं?
प्र.14. सुख कितने प्रकार का होता है? नाम बतलाये?
प्र.15. तिर्यञ्च पर्याय में कौन-से देव उत्पन्न नहीं होते हैं?
प्र.16. संक्षेप-ओघ किसकी संज्ञा है?
प्र.17. चतुर्थ गुणस्थान में कौन-से भाव होते हैं?
प्र.18. सर्वार्थसिद्धि विमान से सिद्ध शिला कितने ऊपर स्थित है?
प्र.19. अप्रमत्त गुणस्थान के कितने प्रकार हैं?
प्र.20. विसंयोजना किसे कहते हैं?

आधार :आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-'**आगम-अनुयोग**', (प्रश्नोत्तर प्रदीप)
प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन-मंथन कर उत्तर-पुस्तिका की पूर्ति करें।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....
पिता/माता/पति का नाम ....
पता ....
....
मोबाईल/फोन नं. ....

सम्यग्ज्ञान-भूषण व सिद्धान्त-भूषण पदवी हेतु त्रैमासिक धार्मिक प्रश्न-पत्र

समय : .... दिन | अंक : 100

❖ 20 प्रश्नों में से प्रत्येक प्रश्न पर 5-5 अंक समान हैं। ❖ सभी प्रश्नों के उत्तर लाइन वाले पेपर्स पर पेरा बनाकर लिखें। ❖ उत्तर राष्ट्र-भाषा हिन्दी में ही लिखें। ❖ उत्तर लिखकर काटे जाने या घिसे जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।

प्र.1. साकार उपयोग रूप ज्ञानोपयोग के कितने भेद होते हैं?
प्र. 2. दर्शनोपयोग के कितने भेद हैं?
प्र. 3. संज्ञी जीव की पहचान के चार हेतु कौन-से हैं?
प्र. 4. सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में निमित्त पाँच लब्धियाँ कौन-सी हैं?
प्र. 5. भव्य जीव कितने प्रकार के होते हैं?
प्र. 6. आहारक शरीर का क्या लक्षण क्या है?
प्र. 7. कौन-से जीवों के शरीर निगोदिया जीवों से प्रतिष्ठित होते हैं?
प्र. 8. कार्मण काययोग में कौन-कौन-से गुणस्थान होते हैं?
प्र. 9. एक निगोदिया जीव में कितने जीवों का निवास होता है?
प्र.10. नित्य निगोदिया और इतर निगोदिया जीवों के संसार भ्रमण का काल कितना होता है?
प्र.11. कौन-सी गति में कितने गुणस्थान होते हैं?
प्र.12. मार्गणा के कितने प्रकार हैं? नाम बताओ?
प्र.13. मार्गणा की परिभाषा क्या है?
प्र.14. भाव-प्राण कौन-से हैं?
प्र.15. प्राण की परिभाषा क्या है?
प्र.16. जीव की पहचान हेतु द्रव्य प्राण कौन-से हैं?
प्र.17. केवली भगवान कौन-सी नव लब्धियों के स्वामी होते हैं?
प्र.18. मुनिराज द्वारा उपशम श्रेणी कितनी बार प्राप्त की जा सकती है?
प्र.19. अनुभाग किसे कहते हैं?
प्र.20. सामायिक संयम किसे कहते हैं?

आधार :आचार्यश्री आर्जवसागर विरचित-'**आगम-अनुयोग**', (प्रश्नोत्तर प्रदीप)
प्रश्न पत्र के पूर्व में दिये गये प्रश्नोत्तरों को पढ़कर उनका चिंतवन-मंथन कर उत्तर-पुस्तिका की पूर्ति करें।

परीक्षार्थी परिचय

नाम.. उम्र ....

पिता/माता/पति का नाम ....

पता ....

....

मोबाईल/फोन नं. ....

सम्यग्ज्ञान-भूषण एवं सिद्धांत-भूषण पदवी हेतु परीक्षार्थी के लिए नियमावली

1. उपर्युक्त पदवी हेतु परीक्षार्थी की उम्र कम-से-कम 13 वर्ष पूर्ण और अधिक-से-अधिक आंखों की दृष्टि और लेखनी के स्थिर रहने तक रहेगी।
2. परीक्षार्थी अवश्य रूप से सप्त-व्यसनों अथवा मद्य, मधु, मांस का त्यागी एवं तीर्थंकर व उनकी जिनवाणी का श्रद्धालु होना चाहिए।
3. जो महानुभाव भाव-विज्ञान पत्रिका के सदस्य हैं उन्हें परीक्षा सामग्री प्रश्नोत्तर रूप में भाव-विज्ञान पत्रिका के साथ संलग्न रूप से सतत रूप से चार वर्षों तक प्राप्त होती रहेगी। आप आगम-अनुयोग प्रश्नोत्तरी Website: www.aarjavvani.com पर भी देख सकते हैं।
4. चारों अनुयोगों के शास्त्रों सम्बन्धी क्रमशः प्राप्त होने वाले प्रश्नोत्तरों तथा अंत में दिये गये प्रश्न-पत्र को स्वयं पढ़कर हल करें और प्रेषित करें तथा अन्य जनों तक भी परीक्षा में भाग लेने की जानकारी अवश्य देने का पूर्ण प्रयास करें। (इस कार्य हेतु इंटरनेट का भी उपयोग कर सकते हैं।)
5. जो महानुभाव पत्रिका के सदस्य नहीं हैं उन्हें प्रश्नोत्तर रूप सामग्री प्राप्त करने हेतु डाक व्यय का भुगतान स्वतः करना होगा।
6. परीक्षार्थी के लिए यह आवश्यक होगा कि वे प्रश्नोत्तरी व प्रश्नपत्र पाते ही एक माह के अन्तर्गत साफ-सुथरे रजिस्टर के पेपर्स पर पूर्ण शुद्धता और विनयपूर्वक उत्तर लिखकर निम्नलिखित पते पर भेजने का उपक्रम करें।
7. उत्तर पुस्तिका पर अंक (नम्बर) देने का भाव उत्तर-पुस्तिका में वर्णित उत्तरों की शुद्धता और लिखावट आदि पर निर्भर करेगा।
8. परीक्षार्थी से ऑनलाइन या फोन द्वारा उत्तर पूछने की पहल भी की जा सकती है अतः अपने पते के साथ ई-मेल एड्रेस या मोबाईल/फोन नं. अवश्य लिखें।
9. उत्तर लिखकर काट दिये जाने पर या घिस दिये जाने पर अंक नहीं दिये जावेंगे।
10. परीक्षार्थी प्रश्नों के उत्तर स्वतः अपनी लिखावट में ही लिखें, अन्य किसी के नाम से उत्तर पुस्तिका भरकर प्रेषित किये जाने पर हमारे परीक्षा बोर्ड द्वारा उसे पदवी हेतु मान्य नहीं किया जावेगा।
11. कदाचित् किसी भव्य द्वारा किसी विशेष परिस्थिति में परीक्षा न दे सकने के कारण और उनके आग्रह किये जाने पर उन्हें प्रश्नोत्तरी व प्रश्नपत्र उपलब्ध कराये जाने की व्यवस्था परीक्षा-बोर्ड द्वारा की जा सकेगी।
12. सम्यग्ज्ञानभूषण एवं सिद्धांतभूषण पदवी सम्बन्धी उत्तीर्णता प्राप्त करने वाले भव्य गणों को भगवान महावीर आचरण संस्था समिति के द्वारा दो या चार वर्षों में प्रमाण पत्र सह सम्मानित किया जावेगा।
13. प्रश्नोत्तरी व प्रश्न-पत्र मंगवाने हेतु परीक्षा-बोर्ड के निम्न लिखित पदवीधारी से सम्पर्क करें:-

भाव-विज्ञान पत्रिका के	भ. महावीर आचरण संस्था	भ.महावीर आचरण संस्था
प्रधान सम्पादक	समिति के मंत्री	समिति के अध्यक्ष
डॉ. अजित जैन	श्री राजेन्द्र जैन	श्री महेन्द्र जैन
मो. 7222963457	मो. 7049004653	मो. 7999246837

14. उत्तर पुस्तिका डाक/पोस्ट से निम्न पते पर प्रेषित करें:-
सम्पादक, भाव-विज्ञान, एम आई जी 8/4, गीतांजली कॉम्पलेक्स,
कोटरा सुल्तानाबाद, भोपाल 462003 (म.प्र.)

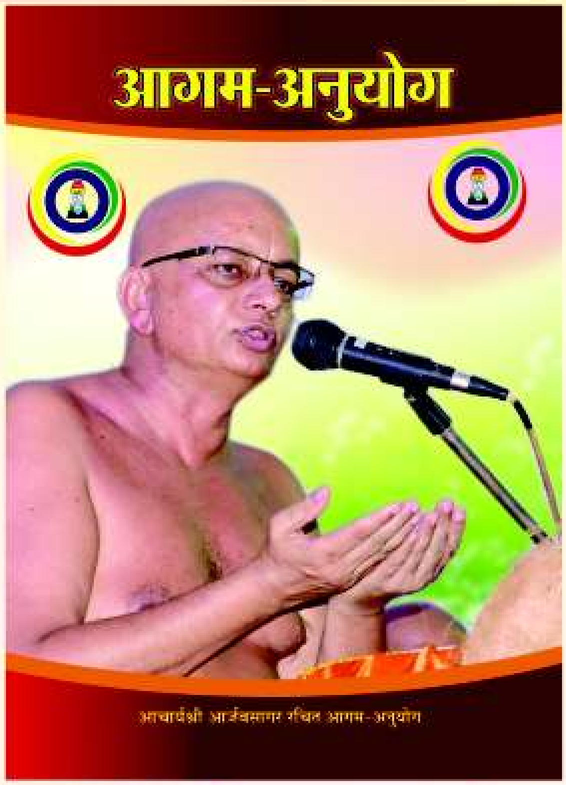

बहुमूल्य कृति : आगम-अनुयोग

'आगम-अनुयोग' एक ऐसी अनूठी, अद्वितीय (unique) कृति है; जिसमें जैन धर्म के चारों अनुयोगों का सार समाहित है। यह बहुमूल्य कृति पाठशालाओं एवं सामूहिक स्वाध्याय के लिये अत्यंत मूल्यवान एवं बहुपयोगी है। इस कृति में जैनधर्म की लोक-अलोक की विस्तृत जानकारी का समावेश है। 'आगम-अनुयोग' प्रश्नोत्तर प्रदीप कृति रूप में अत्यंत सरल शब्दों में आगम को सम्यग्ज्ञान वर्धिनी होकर कल्याणकारी रूप मोक्ष रूपी शिवालय को प्राप्त करने में नौका सदृश है।

इसके स्वाध्याय के माध्यम से भव्य लोग सम्यग्ज्ञान-भूषण सिद्धांत भूषण पदवी को भी प्राप्त कर सकते हैं।

हमारी परंपरा के प्रथमाचार्य

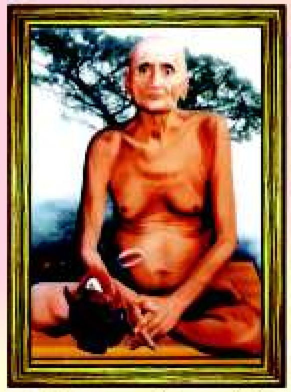

चारित्र चक्रवर्ती आचार्यश्री 108 शांतिसागरजी महाराज

हमारे दीक्षा गुरु

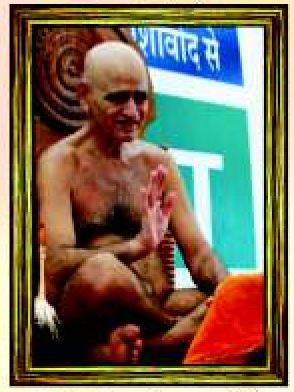

संत शिरोमणी आचार्यश्री 108 विद्यासागरजी महाराज

आचार्य पद प्रदाता

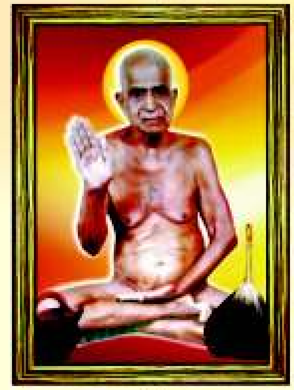

आचार्यश्री 108 सीमंधरसागरजी महाराज